विचार
चिंतन
शोध सृजन

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि
Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed
Research Journal of Humanities

वर्ष-5 | अंक-20 | अक्टूबर-दिसम्बर, 2020

प्रधान-संपादक
डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक
डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक
श्री सुधीर कुमार तिवारी

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan *Drishti*

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष-5	अंक-20	अक्टूबर-दिसम्बर, 2020
Year - 05	**Volome - 20**	**October-December, 2020**

प्रधान-संपादक

डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक

डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक

श्री सुधीर कुमार तिवारी

© **प्रकाशक :**

संपादकीय / प्रकाशकीय पता :–

आलोचन दृष्टि प्रकाशन,

आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,

उ0प्र0–212635

ई–मेल : aalochan.p@gmail.com

दूरभाष :

9580560498 / 9451949951 / 7376267327

मुद्रण :– जय ग्राफिक्स एण्ड कान्सट्रक्सन,
आई0टी0आई0 रोड़, फतेहपुर–212601।

सदस्यता शुल्क	एक अंक	वार्षिक	आजीवन
व्यक्तिगत	300	1200	10,000
संस्थागत	400	1500	15,000

संरक्षक एवं सलाहकार मंडल

- **प्रो0 गिरीश्वर मिश्र,** शिक्षाविद् एवं पूर्व कुलपति, म. गां. अं. हिं. वि., वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो0 रामसजन पाण्डेय,** कुलपति, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)।
- **प्रो0 चितरंजन मिश्र,** पूर्व प्रोफेसर, पं. दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय (उ0प्र0)।
- **प्रो0 नंदकिशोर आचार्य,** सुथारों की बड़ी गुवाड़, बीकानेर, राजस्थान–252028।
- **प्रो0 सदानंद गुप्त,** निदेशक, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, (उ0प्र0)।
- **प्रो0 कृपाशंकर चौबे,** महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो0 माधवेन्द्र पाण्डेय,** हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालयए शिलांग, मेघालय।
- **प्रो0 प्रेमशंकर त्रिपाठी,** आशीर्वाद अपार्टमेन्ट, सी. ए. 5/10, देशबन्धु नगर, कलकत्ता।
- **प्रो0 दिलीप सिंह,** इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)।
- **प्रो0 आर0 एस0 सर्राजू,** हैदराबाद विश्वविद्यालय, (तेलंगाना)।
- **प्रो0 उमापति दीक्षित,** केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा (उ0प्र0)।
- **प्रो0 एस0 वी0 एस0 एस0 नारायण राजू,** तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तमिलनाडु।
- **Shri. Tejendra Sharma,** Harrow & Weealdstone, Middlesex HA3 7AN (U.K.)
- **Mrs. Archana Painyuly,** Islevhusvej, 72 B, 2700, Bronshoj, Copenhagen, Denmark.

संपादक-मंडल

- **डॉ. उदयन मिश्र,** हरिश्चन्द्र पी. जी. कॉलेज, वाराणसी, (उ0प्र0)।
- **डॉ. बलराम शुक्ल,** संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. दण्डिभोट्ला नागेश्वर राव,** सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, श्री चंदशेखरेंद्र सरस्वती विश्वविद्यालय, एनात्तूर–कांचीपुरम्, तमिलनाडु।
- **डॉ. शशिभूषण भट्ट,** संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ0प्र0)।
- **डॉ. अमित दूबे,** आर्य महिला पी. जी. वाराणसी।
- **श्री राम कुमार मानिक,** शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ0प्र0)।

विधि-परामर्शदाता

श्री **उमाशंकर त्रिपाठी** (एडवोकेट), सिविल कोर्ट, फतेहपुर उ0प्र0–212601।

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित शोध–लेखों एवं उसमें दिये गये उद्धरणों के वाद–विवाद संबंधी किसी भी कार्यवाही का शोधकर्ता (लेखक) स्वयं जिम्मेदार होगा। इस तरह के किसी भी विवाद में संपादक, प्रकाशक एवं 'आलोचन दृष्टि' परिवार के किसी भी सदस्य की कोई जिम्मेंदारी नहीं होगी और किसी भी प्रकार के विवाद का समाधान फतेहपुर न्यायालय में होगा।

संपादकीय

हमारा समय और समाज लगभग पिछले नौ महीने से कोरोना की जिस महामारी से त्रस्त, व्यस्त एवं अभिशप्त रहा, उससे अब कुछ निज़ात मिल रही है। लग रहा है, जीवन में अब पुनः खुशियाँ लौटने वाली हैं। अच्छा भी लगने लगा है, पर हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि जिस महामारी ने सबको अपनी चपेट में लेकर हलाकान किया हो, वह जल्दी छोड़ने वाली नहीं। इसलिए हमें कोरोना के प्रति किसी भी प्रकार की कोई भी लापरवाही नहीं करनी चाहिए। जब तक पूरी तरह से करोना नहीं जाता, तब तक तो बिलकुल भी नहीं। शासन, प्रशासन एवं व्यवस्थापन को– इसके प्रति विशेष रूप से सचेत रहने की जरुरत है। जो लापरवाही, हमने फरवरी और मार्च में की थी वैसी लापरवाही अब नहीं होनी चाहिए क्योंकि महामारियों की केवल एक तरंग नहीं होती, बल्कि अनेक तरंगे, अनेक रूपों में, अनेक बार आती हैं। महामारी के समाप्त होने में दशकों लग जाते हैं। अस्तु इससे बचना, हमारी पहली प्राथमिकता होनी चाहिए।

'आलोचन दृष्टि' के इस अंक के साथ इसके पाँच वर्ष पूर्ण हो गये। इन पाँच वर्षों में प्रस्तुत पत्रिका की ओर से तीन विशेषांकों के साथ सत्रह समान्य अंक प्रकाशित हुए, जिसमें भारत के लगभग सभी राज्यों से और कुछ आलेख एवं शोध–लेख अन्य देशों के भी प्रकाशित हुए। चिंतन की दृष्टि से 'आलोचन दृष्टि' पत्रिका ने राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय वैचारिक–क्षितिज को, सामान्य–जन तक पहुँचाने की कोशिश की है। आने वाले समय में निश्चित रूप से पत्रिका ने जो अपने प्रारूप निर्धारित किये हैं, उसे पूरा करने का हर संभव प्रयास करेगी। कोरोना–काल से 'आलोचन दृष्टि' पत्रिका अपने भविष्य के विशेषांकों को निकालने में कुछ शिथिल–सी हो गई है। इसका मुख्य कारण– किसी बड़े विद्वान से न मिल पाना है, पर जैसे ही करोना–काल समाप्त होगा 'आलोचन दृष्टि' पत्रिका विद्वानों से मिलकर अपने उद्देश्यों को पूर्ण बनाने की हर संभव कोशिश करेगी और जितने भी प्रारूप निर्धारित हैं, उनमें कुछ सुधार करते हुए अपना काम आगे बढ़ायेगी। इसके अतिरिक्त भारतीय चिंतन दृष्टि के आधार पर अपने समय, समाज और संवेदना को केंद्र में रखते हुए आगामी भविष्य को वैचारिक दृष्टि से बेहतर बनाने के लिए संकल्पबद्ध रहेगी, जिसकी ओर वह लगातार प्रयासरत भी है। 'आलोचन दृष्टि' के 'संरक्षक एवं सलाहकार मंडल' की सदस्य **सुषम बेदी** का मार्च, 2020 को इस संसार से विदा हो जाना, 'आलोचन दृष्टि'–परिवार की बहुत बड़ी क्षति है। **सुषम बेदी** से मेरा साक्षात्कार 2014 में हुआ था। इसके बाद लगातार दूरभाष से बातचीत होती रही। उनके सुझावों के चलते 'आलोचन दृष्टि' पत्रिका अन्तरराष्ट्रीय क्षितिज में भी चर्चित रही। 'आलोचन दृष्टि' परिवार **सुषम बेदी** को सादर श्रद्धांजलि अर्पित करता है। 'हवन', 'कतरा–दर–कतरा', 'गाथा अमरबेल की' आदि उनकी रचनाएँ उनके उपस्थित होने का ऐहसास हमेशा दिलातीं रहेंगी। प्रवासी लेखन की इस साधिका ने अपनी रचनाओं के माध्यम से हमेशा वैचारिक चिंतन का प्रतिनिधित्व किया है।.... **सुषम बेदी** की जगह **अर्चना पैन्यूली,** डेनमार्क को 'आलोचन दृष्टि' के 'संरक्षक एवं सलाहकार मंडल' में शामिल किया गया है।

विशेषांक की जगह निकलने वाला यह सामान्य अंक भी, संग्रहणीय है। इसमें भारत के तमाम विश्वविद्यालयों से जुड़े प्रध्यापकों एवं शोधार्थियों के 127 शोध–लेखों में संपदक–मंडल के निर्णय के अनुरूप 33 शोध–लेख इस अंक में प्रकाशित हो रहे हैं, जो समाज–केंद्रित, साहित्य–केंद्रित, संस्कृति–केंद्रित एवं समय–केंद्रित होने के साथ–साथ विचार–केंद्रित भी हैं। इस अंक में हिंदी भाषा के तेईस शोध–लेख, अंग्रेजी के आठ और संस्कृत के दो लेख प्रकाशित हो रहे हैं। सभी शोध–लेख महत्वपूर्ण, उपयोगी और अपने समय, समाज और संवेदना से साक्षात्कार करने वाले हैं। एक प्रकार से ये शोध–लेख अपने समय का आईना प्रस्तुत करते हैं। मैं इस अंक के सभी लेखकों के प्रति, हमारे पाठकों, जो इस पत्रिका के लिए मेरुदंड हैं, के प्रति एवं 'आलोचन दृष्टि' परिवार के प्रति– हृदय से आभार प्रकट करता हूँ, जिनके सहयोग के चलते ही पत्रिका का यह कलेवर आपके समक्ष प्रस्तुत हो रहा है। आशा है, कि आप सबका यह सहयोग हमें हमेशा मिलता रहेगा...।

31 दिसम्बर, 2020।

विषयानुक्रमणिका

1. रामचरित मानस की लोकोन्मुखता और तुलसीदास 1-4
डॉ. मीनाक्षी मिश्रा

2. साहिर लुधियानवी के गीतों में चेतनात्मक-सृष्टि 5-9
डॉ. रतन लाल

3. फिल्मों और धारावाहिकों का बाजारू फ्यूजन : वेब-सीरीज 10-13
डॉ. प्रणु शुक्ला

4. 'रुकोगी नहीं राधिका' : स्त्री-स्वाधीनता की यात्रा 14-18
डॉ. बीना जैन

5. कालिदास विरचित त्रोटक विक्रमोर्वशीय में शृंगार-रस 19-22
डॉ. विक्रम

6. 'झूठा सच' उपन्यास में विभाजन की विभीषिका 23-29
डॉ. शालिनी माहेश्वरी

7. भारतेंदु हरिश्चन्द्र की आलोचनात्मक-दृष्टि 30-32
ऋतु

8. रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में जीवन-मूल्य 33-36
डॉ. बाबूलाल बैरवा एवं रजाक शाह कादरी

9. देव बनाम बिहारी : पक्षपात की साहित्यिक वृत्ति 37-42
डॉ. बीरेन्द्र सिंह

10. मन रे! जागत रहिए भाई (अलख जगाती कबीर की वाणी और उनकी सामाजिक चेतना) 43-47
अंकिता शाम्भवी वर्मा

11. 'आल्हखंड' की स्त्री-पात्रों का बहुआयामी रूप : एक अवलोकन 48-52
अभिनव

12. पंडित बस्तीराम के साहित्य में लोक-तत्त्व 53-56
पूनम

13. बद्री सिंह भाटिया के उपन्यासों में चित्रित नारी-जीवन 57-60
कुसुम देवी

14. हरियाणा के लोकगीतों में आध्यात्मिक-रस 61-65
सुमन

15. भारतीय साहित्य और अनुवाद 66-69
डॉ. सत्यवीर

16. दलित साहित्य की समाजशास्त्रीय दृष्टि का अनुशीलन 70-75
अमृत लाल जीनगर एवं डॉ. विदुषी आमेटा

17. नालन्दा का चुना गच निर्मित बौधिसत्व प्रतिमा 76-85
डॉ. संजय कुमार

18. भारत में आने वाले प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पर हुए कोरोना महामारी के परिणामों ... 86-90
डॉ. लक्ष्मीकांत शिवदास हुरणे

19. कोरोना काल और महिलाएँ 91-93
डॉ. चित्रा माली

20. माध्यमिक स्तरीय सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तकों में लैंगिक रूढ़िवादिता 94-101
जयंती एवं डॉ. ज्योति कुमारी

21. भारतीय समाज में हिन्दू महिला सम्पति अधिकार (मिथक व यथार्थ का ...) 102-105
आभा मिश्रा एवं डॉ. विजय कुमार वर्मा

22. सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा प्रणाली पर कोविड-19 का प्रभाव... 106-111
अब्दुल्लाह एवं डॉ. शैलजा सिंह

23. धान के न्यनूतम समर्थन मूल्य-निर्धारण का किसानों की आर्थिक-स्थिति पर प्रभाव 112-114
भावना ठक्कर

24. **Impact of Agitation of Gorkhas of Darjeeling in 2017 on School...** 115-119
Ms. Prerna Mukhia & Dr. Sweta Dvivedi

25. **The Spirit of India : Hindu Philosophy in the Select Novels of R. K. ...** 120-123
Dr. Anju K. N.

26. **CASHLESS ECONOMY IN INDIA** 124-128
Sukanta Mazumder

27. **Women's Economic Empowerment through Self-Help Groups: A Study ...** 129-135
Dr. Rahul Sarania

28. **AMITAV GHOSH AS A POST MODERN NOVELIST** 136-139
P. Malathi & Dr. N. Ramesh

29. **POST COLONIAL POLITICS IN ROHINTON MISTRY'S NOVELS** 140-143
K. Kannadasan & Dr. N. Ramesh

30. **Scenario of Municipal Solid Waste Disposal and Processing Practice ...** 144-151
Dr. Ashwani Kumar & Dhiraj Kumar Bharti

31. **Unracialized, shared victimhood of women in Toni Morrison's *A Mercy*** 152-157
Urfana Nabi

32. बृहच्छब्देन्दुशेखरदिशा षः प्रत्ययस्य इति सूत्रस्य पदकृत्यविमर्शः 158-162
सौमित्र आचार्यः

33. उपसर्गार्थचन्द्रिकानुसारं अपपूर्वकस्य ईक्ष दर्शने इति धातोः अर्थविमर्शः 163-166
नित्यानन्दमान्ना

ꕥ★ꕥ

रामचरित मानस की लोकोन्मुखता और तुलसीदास

डॉ. मीनाक्षी मिश्रा*

संत शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास भक्त हैं, कवि हैं, सहृदय संत हैं और अपने युग के लोकनायक हैं अपने प्रत्येक स्वरूप में सर्वश्रेष्ठ हैं तुलसीदास। तुलसीदास के प्रादुर्भाव का समय भारतीय इतिहास में धार्मिक सक्रांति का युग माना जाता है। विधर्मियों के आक्रमण और शासन–प्रशासन के बीच पराजित और निराश्रित जनता किसी शक्तिशाली अवलंबन की तलाश कर रही थी और उसकी यह तलाश पूरी हुई भक्त शिरोमणि तुलसीदास और उनकी रामभक्ति काव्यधारा में। रामभक्ति का ऐसा रसायन तुलसी ने प्रस्तुत किया जो भक्त प्रवण व धर्म प्रवण हिन्दू जनता के लिए कल्पतरु है। यहाँ रुद्र जी की ये काव्य पंक्तियाँ अवलोकनीय है–

न पूछो क्या किया संसार का उपकार तुलसी ने।
निराशा में भी आशा का किया संचार तुलसी ने।।
विषय–विषपान से जो सृष्टि मूर्छित थी उसी के हित।
रसायन रामरस का कर दिया तैयार तुलसी ने।।[1]

वैष्णव सम्प्रदाय के संत, महाकवि तुलसीदास का आविर्भाव श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि, संवत् 1589 में राजापुर ग्राम में हुआ। यद्यपि तुलसी के जन्म से सम्बंधित अनेक जनश्रुतियाँ व किवदंतियाँ व सन्, संवत् के संदर्भ में अनेक धारणाएं प्रचलित हैं। तुलसी के जन्म समय को लेकर जिन साक्ष्यों को प्रस्तुत किया गया है उस आधार पर 1589 की तिथि वास्तविक जन्मतिथि ज्ञात होती है। ब्राह्मण कुलोत्पन्न तुलसी के पिता आत्माराम दूबे और माता हुलसी थीं। इस संबंध में कविवर रहीम का अत्यंत प्रसिद्ध दोहा है–

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, अस चाहति सब कोय।
गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी सों सुत होय।।[2]

तुलसी के नाम को लेकर भी अनेक मत–मतान्तर जनश्रुतियों में प्रचलित हैं। कहा जाता है जन्म के समय इनके मुख से राम शब्द निकला और इनका नाम 'रामबोला' पड़ गया। कवितावली के 'उत्तरकाण्ड' के 100 वें छंद में 'रामबोला' का उल्लेख है तो वहीं 13 वें छंद में 'तुलसी' भी लिखा है। स्वयं को राम का गुलाम मानते हुए विनय पत्रिका में तुलसी ने लिखा है– 'राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम।' जन्म से संबंधित अनेक संदर्भो को तुलसी ने अपनी रचनाओं में अंकित किया है।

तुलसी का जीवन संघर्षों से भरा था। जन्म से ही मातृ–पितृ सुख से वंचित, उपेक्षित व तिरस्कृत थें। बाल्यकाल भी अनेक विषम परिस्थितियों में बीता। क्षुधापूर्ति के लिए दर–दर की ठोकरें खायीं, भिक्षाटन किया। फिर गुरु नरहरिदास की कृपा से उनका शिष्यत्व ग्रहण कर वेद, पुराण, शास्त्र, व्याकरण का गहन अध्ययन करते हुए उसमें पारंगत हुए तत्पश्चात गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया लेकिन वह भी कुछ समय के लिए। पत्नी रत्नावली के प्रति अतिशय प्रेम था और यही प्रेम उनकी भर्त्सना का कारण भी बना–

लाज न आवत आपको, दौरे आयहु साथ।
धिक्–धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहौं हौं नाथ।।
अस्थिचर्ममय देह मम, तामें ऐसी प्रीति।
होती जो कहुं राम में, होति न तौ भवभीति।।[3]

पत्नी की भर्त्सना ने न केवल तुलसी के व्यक्तित्व को बदला बल्कि उनके जीवन की दिशा ही बदल दी। उनका व्यक्तिगत प्रेम समष्टिगत हो गया, राममय हो गया। रुद्र जी ने तुलसी के प्रादुर्भाव को पूरी मानव जाति के लिए वरदान माना है उनके प्रसिद्ध ग्रंथ 'तुलसीदास'(लघुखण्ड काव्य) की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

*** अस्सिस्टेंट प्रोफेसर–हिंदी, आर्य महिला पी.जी.कॉलेज, वाराणसी।**

पूत पंद्रह सौ नवासी वर्ष था
सरस श्रावण मास का उत्कर्ष था
सप्तमी, तिथि समय उजले पाख का
देश ने पाया रतन नौ लाख का
काव्य–नभ में उदित रवि फिर से हुआ
कुटिल–कलि में आदिकवि फिर से हुआ
पर निपीड़ित जाति का उल्लास था
रुदन विकृत बदन का मृदुहास था
दीप्त, प्रतिभा का विराट विकास था
और उसका नाम तुलसीदास था

....
लुट रहा था देश का धन मान सब
मिट रही थी श्रेष्ठता की शान सब,
तव भरा नवभाव तुलसीदास ने
पार कर दी नाव तुलसीदास ने।।[4]

परतंत्रता की बेड़ी में जकड़ी हुई जनता को त्राण दिलाने के लिए, लोक का उद्धार करने के लिए, कलिकाल के त्रास से मुक्ति दिलाने, समन्वय का मार्ग प्रशस्त करने, देश के सांस्कृतिक मूल्यों के सरंक्षण के लिए व विश्व की गुत्थियों को सुलझाने के लिये तुलसी ने धरती पर अवतरण लिया। अपने प्रत्येक रूप में व्यापक और विराट तुलसी जैसा लोक–समन्वयक व लोक संग्राहक कोई दूसरा कवि न हुआ। उन्होंने शाश्वत मानव धर्म या लोक जीवन धर्म का निर्वहन किया। पराजित हताश जनजीवन में एक नवीन प्रेरणा का संचार किया। विकृत समाज के उद्धार के लिए जन–जन की आस्था को जगाने के लिए रामभक्ति का बीजारोपण किया। राम के बिना समाज का कल्याण संभव नहीं है राम के सहज व लोकमंगलकारी स्वरूप को जन–जन तक पहुँचाने का तुलसी ने बीड़ा उठाया और 'श्रीरामचरितमानस' के द्वारा लोकभूमि पर रामराज्य की प्रतिष्ठा की।

काव्यशास्त्रीय परम्परा और वेदपुराण सम्मत होते हुए भी तुलसी का समग्र साहित्य लोकोन्मुखी है। लोक की शक्ति से उपजाया साहित्य है जिसमें प्रशस्त मानवीय सरोकार, गहन मानवीय चिंता और मानवीय करुणा का उदात्त स्वर विद्यमान है। तुलसी ने रामचरितमानस के आरंभ में ही काव्य संबंधी मान्यताओं व स्वान्तः सुखाय भाव को व्यक्त करते हुए उसमें निहित वृहद् जन समुदाय के कल्याणार्थ उद्देश्य को प्रस्तुत किया–

नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषा निबंधमति मंजुल मातनोति।।[5]

तुलसी के समस्त काव्य– गीतावली, कृष्ण–गीतावली, रामलला नहछू, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामाज्ञा प्रश्नावली व रामचरित मानस में लोक संस्कृति के विविध उपादान गुम्फित हैं। संस्कारगत, आचार, शकुन, रीति–रिवाजों एवं लोक जीवन को व्यक्त करने वाली परम्परायें और मान्यताएँ रामचरितमानस में विशुद्ध रूप में मिलती हैं। तुलसी ने मानस में विवाह संबंधी शास्त्रीय और लौकिक परम्पराओं का जहाँ वर्णन किया है वही गौण रूप से जातकर्म संस्कार, नामकरण, चूड़ाकर्म और अंतिम संस्कार से सम्बंधित जन रीतियों का भी विवेचन किया है–

नंदीमुख सराध करी जातकरम सब कीन्ह
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह।।[6]

विवाह संबंधी संस्कारों में लोक सांस्कृतिक धरातल दर्शित है। रामचरितमानस में शिव–पार्वती विवाह हो या राम–सीता विवाह दोनों में शास्त्रीय तत्व की अपेक्षा लौकिक रूप ही प्रधान है। शिव विवाह के अवसर पर मंगलगान करती हुई स्त्रियों के मध्य पार्वती जी शिव जी का 'परिछन' करती हैं–

लै अगवान बरातहि आए, दिए सबहि जनवास सुहाए।
मैनाँ सुभ आरती सँवारी, संग सुमंगल गावहिं नारी।।[7]
कंचन थार सोह बर पानी, परिछन चलि हरहि हरषानी।[8]

राम–सीता के विवाह में भी अनेक लौकिक विधियों का वर्णन है। राम का विवाह के लिए घोड़े पर आना– जेहि बर बाजि रामु असवारा, तेहि सारदउ न बरनै पारा।[9]

सास द्वारा राम की आरती करना, न्यौछावर कर, नाउ, बारी और भाट को देने की प्रथा, जेवनार, भोजन आदि के समय गालीगान आदि की प्रथाएँ लोकपरक ही हैं। आज भी विवाहों में ये परम्परा मिलती हैं। मानस में विवाह की विभिन्न रीतियों, गौरी–गनेश की पूजा, कन्यादान, सिंदूर वंदन, विवाहोपरांत कोहबर, कंकन खोलने आदि की हास–परिहासमयी प्रकृति का तुलसी ने बखूबी चित्रण किया है–

लहकौरी गौरी सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं।
रनिवासु हास विलास रस बस जन्म को फलु सब लहैं।।
कोहबरहि आने कुँअर कुँअरि सुआसिनिन्ह सुख पाइकै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइकै।।[10]

तुलसी ने समाज में व्याप्त अन्धविश्वास, रुढ़ियों, तंत्र–मंत्र, अलौकिक शक्तियों का वर्णन किया है वहीं ज्योतिष, शकुन–अपशकुन संबंधी विश्वास को विभिन्न पात्रों और प्रसंगों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। ज्योतिष के प्रति प्रायः सभी आकृष्ट हैं। 'मानस' में पुत्री पार्वती के गुण–दोषों, ग्रह–नक्षत्र व भविष्य कथन के फलादेश की बात पार्वती के पिता नारद से करते हैं– 'कहहु सुता के दोष गुन, मुनिवर हृदय विचारि।'

मानस में लोक संस्कृति का निरूपण विभिन्न रीति–रिवाजों, देवी–देवताओं की आराधना, कुलदेवता, पितरों की पूजा, सामाजिक, आर्थिक जीवन के चित्रण, धार्मिक विश्वासों, लोक नीति के आख्यानों व विभिन्न जातियों उनकी जीवन प्रणाली के माध्यम से व्यक्त हुआ है। लोक संस्कृति के बहुमुखी तत्वों का समावेश तुलसी ने रामचरितमानस में किया है। तुलसी के लोक जीवन के विविध चित्रों को लक्षित करते हुए रमेश कुंतल मेघ का कथन है' 'अरण्यकांड तथा सुंदरकांड के अंतर्गत कबीलायी समाज और अयोध्याकांड तथा बालकाण्ड के अंतर्गत लोक समाज और ग्राम्य समाज का संयोजन हुआ है। इन तीनों समाजों का संयोजन ग्राम्यीकरण पर तुलसीदास अपनी छाप लगा देता है।' तुलसी के लोक में अभिजात्य, ग्रामीण, नगरी, निषाद, भील, वानर, कोल, किलात, सभी समाहित हैं। तुलसी का काव्य अपनी समग्रता में मूलतः मानवतावादी काव्य है। तुलसी ने राम में जिस मानव–धर्म, लोक–धर्म को संजोया वह समूचे रामकाव्य में चाहें वह वाल्मीकि कृत राम हो, आध्यात्म राम हो या पौराणिक राम में नहीं दिखता जो तुलसी के राम में है। तुलसी मानव धर्म को सर्वोच्च मानते हुए कहते हैं–

परहित सरिस धर्म नहिं भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।
नर शरीर धरि जे पर पीरा, करहिं ते सहहिं महा भवभीरा।

रामचरितमानस में राम लोकचित्त की पीड़ा से अभिभूत दिखाई पड़ते हैं। वन मार्ग में चलते हुए भोले–भाले ग्रामीण जन, कोल–किरात, निषाद, शबरी, अहिल्या, जटायु सब उनकी चेतना में समाहित हैं। इन सबसे आत्मीयता के साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं। राम सामान्य जन के बीच आत्मीय बनकर प्रतिष्ठित हैं। वे पूजा के पात्र बनकर पूजनीय ही नहीं रहते बल्कि कर्म क्षेत्र में लोगों को आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं, उन्हें लोकोन्मुख बनाते हैं।

तुलसी के राम जितने लोक–व्यापी हैं, उतने ही शास्त्रव्यापी। प्रत्येक जन–समुदाय राम के प्रति न केवल आस्था रखता है बल्कि अपने प्रत्येक सुख–दुःख का सहचर उन्हें मानता है। जिस राम का सानिध्य पाने के लिए तपस्वी–जन आजीवन साधना करते रहतें उन्हीं राम का परम सानिध्य सुख बड़े ही सहजता से वन–वासियों को, पशु–पक्षियों को, कोल–किरातों को प्राप्त होता है। राम का उदात्त व लोकग्राह्य चरित है। राम लोक और वेद के सेतु समुद्र हैं, 'श्रुति सेतु पालक राम तुम' उनके उत्तरीय का एक छोर लोक में फहराता है, तो दूसरा छोर वेद के विधानों में फबता है। ये जो राम का लोक स्पर्शी छोर है, इसी ने राम को

लोक–व्यापी बनाया है। जीवन के छोटे–छोटे हिस्सों, छोटे–छोटे दुःख–सुखों में सम्मिलित हमारे राम ही हैं।'[11]

हिन्दू जन जीवन में राम के आगमन के संबंध में आचार्य शुक्ल का यह कथन श्लाघनीय है– 'विवाहादि शुभ अवसरों पर तुलसी–रचित राम के मंगल गीत गाये जाते हैं, विमाताओं की कुटिलता के प्रसंग में कैकेयी की कहानी कही जाती है, दुःख के दिनों में राम का वनवास याद किया जाता है, वीरता के प्रसंग में उनके धनुष की टंकार सुनायी पड़ती है। सारांश यह है कि सारा हिन्दू जीवन राममय प्रतीत होता है। वेदांत का परमार्थ तत्व समझने की सामर्थ्य न रखने वाले साधारण लोगों को भी व्यवहार क्षेत्र में चारों और राम ही दिखायी देते हैं।' रामचरितमानस न केवल विशाल जन समूह के हृदय पर अंकित है अपितु अपनी सार्थकता व उपयोगिता को भलीं भाँति स्थापित करता है।

तुलसी के राम लोक धर्म, लोक मर्यादा, वेदमत की स्थापना करते हैं बालि का संहार करने पर मरणासन्न बालि राम को लांछित करते हुए कहता है–

'धर्म हेतु अवतरेउ गोसाई। मारेहु मोहि व्याध की नाई।'

राम उसका उत्तर देते हैं–

अनुज–बधू भगिनी सुत–नारी। सुनु सठ कन्या सम ये चारी।।
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई।।

तुलसी के लोकधर्म की पहचान इस बात से होती है कि उनके लिए धर्म, राजनीति और कविता सबकी एक ही कसौटी है– लोकहित। यही कारण है प्रजा को दुख देने वाले शासक को वह नरक का अधिकारी मानते हैं– 'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।'

राम का धवल यश 'रामचरितमानस' के रूप में लोक में व्याप्त है। इसमें शिष्ट लोक संस्कृति की प्रवाहमान धारा सन्निविष्ट है जो मानस के कथा–विधान, भील निरूपण, आदर्श–विमर्श एवं लोक जीवन को व्यक्त करने वाली परम्पराओं और मान्यताओं के रूप में विश्लेषित है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में– 'रामचरितमानस के सौंदर्य द्वारा तुलसी ने जनता को लोकधर्म की ओर फिर से आकर्षित किया।' मानस में राम के साथ अन्य पात्र भी मानव जीवन की विभिन्न स्थितियों में सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। यही कारण है कि 'मानस' धर्म ग्रंथ होते हुए भी धार्मिक मंडलियों की सीमा तोड़कर जन–जन का कंठहार बन गया।

तुलसी एक ऐसे राष्ट्रनायक एवं लोकनायक हैं जिनका सर्वधर्म समभाव के प्रति गहरी निष्ठा है, उन्होंने रामकथा के माध्यम से भक्ति को लोक–हित में प्रस्तुत किया। जन सामान्य की भूमि पर अवस्थित किया। इनकी मानवतावादी दृष्टि से प्रभावित होकर अकबर ने विश्वबंधुत्व का भाव ग्रहण किया। तुलसी का मानवतावादी आदर्श उन्हें वैश्विक पटल पर लोकप्रिय बनाता है। कविवर रहीम ने 'रामचरितमानस' को हिंदुओं और मुसलमानों दोनों के लिए श्रेष्ठ बताते हुए कहा है–

रामचरित मानस विमल संतन जीवन प्रान।
हिन्दुअन को वेद सम जवनहिं प्रगट कुरान।।[12]

सन्दर्भ–सूची :–

1. रुद्र रचनावली,प्रथम खंड–संपादक– डॉ. मीनाक्षी मिश्रा, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ. सं.– 66।
2. विश्व के महान साहित्यकार–डॉ सुरेशचंद्र गुप्त, प्रकाशक– प्रकाश बुक डिपो, बरेली, पृ.सं. –21।
3. विश्व के महान साहित्यकार –डॉ सुरेशचंद्र गुप्त, प्रकाशक– प्रकाश बुक डिपो, बरेली, पृ.सं.–21
4. 'तुलसीदास'–शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र', प्रकाशक–काशीस्थ प्रसाद परिषद, काशी, पृ.सं.–1–3।
5. श्री रामचरितमानस(बालकाण्ड), गीताप्रेस प्रकाशक गोरखपुर, श्लोक–7, पृ.सं. –2।
6. श्री रामचरितमानस(बालकाण्ड), गीताप्रेस प्रकाशक गोरखपुर, दोहा–193, पृ.सं.–156।
7. श्री रामचरितमानस(बालकाण्ड), दोहा–95, चौ.–1 पृ. सं.83।
8. वहीं से, चौ.2, पृ.सं.83।
9. वहीं से, दोहा–316,पृ.सं.246।
10. वहीं से ,दोहा–326,छंद–2, पृ.सं.260।
11. रामकथा वैश्विक परिदृश्य –संपादक –डॉ बृजबाला सिंह, प्रकाशक –यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ.सं,–108।
12. तुलसीदास एक पुनर्मूल्यांकन –संपादक, डॉ.अजय तिवारी, आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, पंचकूला (हरियाणा), पृ.सं.–50।

साहिर लुधियानवी के गीतों में चेतनात्मक-सृष्टि

डॉ. रतन लाल*

'कितने घर हैं आज जिनमें रोशनी नहीं
कितने तन–बदन हैं जिनमें जिंदगी नहीं
मुल्क और कौम के मिजाज को बदल डालो
सैकड़ों की मेहनतों पर एक क्यों पले
ऊंच–नीच से भरा निजाम क्यों चले
आज है यही तो ऐसे आज को बदल डालो
समाज को बदल डालो।'[1]

उपर्युक्त तहरीरों के माध्यम से आम आदमी के जीवन की जिल्लतभरी जिंदगी को अपनी कलम से इजहार करने वाली शख्सियत को फिल्मी और अदबी दुनिया में साहिर लुधियानवी के नाम से पुकारा जाता है। वर्ष 2021 इनकी जन्मशती है। इनकी पैदाइश 8 मार्च 1921 को लुधियाना में हुई। इसे संयोग ही कहा जाएगा कि नारी जीवन की व्यथा को अपनी लेखनी से उकेरने वाले इस गीतकार के जन्मदिन पर ही अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस मनाया जाता है। जमीदार घराने में पैदा हुए इस इकलौते वारिस का वास्तविक नाम अब्दुल हई था।

1943 में साहिर लुधियानवी की 'तल्खियाँ' पुस्तक प्रकाशित हो चुकी थी, जिसमें उनकी अनेक गजलें और नज्में थीं। रोजी–रोटी के लिए उन्होंने फिल्मों में गीत लिखने का रास्ता चुना था। उन्होंने अपनी शर्तों पर फिल्मों में गीत लिखे। चांदी के टुकड़ों के लिए उन्होंने अपने सिद्धांतों को बलिदान नहीं किया। फिल्मी गीतों के जरिए उन्होंने आम आदमी के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक मुद्दों को अपनी लेखनी का विषय बनाया।" साहिर के संदर्भ में यह याद रखना जरूरी है कि अदब की दुनिया में प्रतिष्ठा कायम करने के बाद ही वे फिल्मों में गीतकार की हैसियत से गए थे।"[2] उन्होंने अपने उसूलों को ताक पर रखकर बाजारवाद से कभी समझौता नहीं किया। उनके लिए फिल्मी गीत अपने नजरिए को इजहार करने का जरिया था–

'मेरे सरकश तराना की हकीकत है तो इतनी है
कि जब मैं देखता हूँ भूख के मारे किसानों को
गरीबों, मुफलिसों को बेकसूर बेकसों, बेसहारों को
सिसकती नाजनीनों को, तड़पते नौजवानों को
हुकूमत के ताशद्दुद अमारत के तकब्बुर को
किसी के चीथड़ों को और शहंशाही खजानो को
तो दिल ताबे–नशाते–बज़्मे–इशरत ला नहीं सकता।'[3]

साहिर फिरकापरस्ती को इंसानियत के दामन पर दाग समझते थे। उनके गीतों का जब गहनता से अध्ययन किया जाता है तो पता चलता है कि उन्होंने जातिवाद और सांप्रदायिकता को मानवता के लिए हानिकारक माना है। नया रास्ता(1970)फिल्म के गीत के द्वारा उन्होंने इस तथ्य को उजागर किया है–

"तेरे धर्मों ने जातों की तक्सीम की
तेरी रस्मों ने नफरत की तालीम दी
वहशतों का चलन तुझमें जारी रहा" [4]

*** सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, श्री कृष्ण राजकीय महाविद्यालय, कंवाली(रेवाड़ी) हरियाणा।**

1947 में भारत का विभाजन सांप्रदायिकता का परिणाम ही था जिसके कारण लाखों शांतिप्रिय लोग बेघर हो गए तथा लाखों अमनपसन्द लोग कत्ल कर दिए गए–

किस काम के हैं ये दीन धर्म जो शर्म का दामन चाक करें
किस तरह के हैं ये देश भगत जो बसते घरों को खाक करें
ये रूहें कैसी रूहें हैं जो धरती को नापाक करें।[5]

तारीख गवाह है कि मजहब का वास्ता देकर गरीब और मजलूम का शोषण होता रहा है। साहिर लुधियानवी इस तथ्य से बखूबी वाकिफ थे–

निर्धन को दिया परलोक का सुख अपने लिए जग का राज रखा
पंडित और मुल्ला इनके लिए मजहब के सहीफे लाते रहे।[6]

पूंजीपति और अमीर लोग सत्ता और धर्म को अनुसार संचालित करते हैं ताकि अपने स्वार्थों की पूर्ति कर सके। धर्म और सत्ता के आवरण में वे मजलूमों का खून चूसते हैं। साहिर ने 'नया रास्ता'(1970) फिल्म के गीत के जरिए अमीरों की संवेदनशून्यता को दर्शाया है–

रीति और रिवाज सब तुम्हारे साथ, धर्म और समाज सब तुम्हारे साथ
अपने साथ किया धूल और धुआं, आज चाहे तुम चलो जुबां।[7]

चित्रलेखा(1964) के माध्यम से साहिर ने उन लोगों पर व्यंग किया जो अपने स्वार्थ के लिए धर्म के मायने ही बदल देते हैं। ऐसे छद्म लोग परंपराओं पर धर्म का लेबल लगाकर हर बात को अपने अनुसार प्रकट करते हैं–

यह पाप है क्या पुण्य है क्या, रीत पर धर्म की मोहरे हैं
हर युग में बदलते धर्मों को कैसे आदर्श बनाओगे।[8]

जातिप्रथा हमारे समाज के दामन पर एक बदनुमा दाग है क्योंकि यह समाज में ऊंच–नीच की व्यवस्था को जन्म देती है। इस कुप्रथा के कारण व्यक्ति की क्षमता का आधार केवल उसके खानदान को ही माना जाता है। इस व्यवस्था के कारण तथाकथित निम्न जातियों के लोगों का जीवन नरक बन जाता है। साहिर ने दीदी(1959) फिल्म के गीत के द्वारा जातिप्रथा पर करारी चोट की है–

कुछ इंसान ब्राह्मण क्यों हैं, कुछ इंसान हरिजन क्यों हैं
एक की इतनी इज्जत क्यों है? एक की इतनी जिल्लत क्यों है?[9]

सभी मजहब इंसान को अच्छे कर्म करने की तालीम देते हैं। परमात्मा ने सभी इंसानों को बराबर बनाया है। जातिप्रथा मानव निर्मित है। हमें मानवता की भलाई करनी चाहिए। हम दोनों(1961) फिल्म के गीत के माध्यम से साहिर लुधियानवी ने दिखलाया है कि सबका परमात्मा एक है। उसे हम किसी भी नाम से पुकार सकते हैं–

ईश्वर अल्लाह तेरो नाम सबको सन्मति दे भगवान
जातो नस्लों के बंटवारे झूठ कहाए तेरे द्वारे
इस धरती पर बसने वाले सब है तेरी गोद के पाले
कोई नीच न कोई महान, तेरे लिए सब एक समान।[10]

साहिर की परवरिश ऐसे माहौल में हुई थी जहां मुख्तलिफ मजहब से तालुकात रखना कोई मायने नहीं रखता था। बचपन से ही सभी धर्मों के लोग उनके मित्र रहे हैं। वे मित्रों पर अपनी जान से छिड़कते थे। इसलिए उनके गीतों में धर्मनिरपेक्षता बेशुमार झलकती है–

तू हिंदू बनेगा न मुसलमान बनेगा, इंसान की औलाद है इंसान बनेगा
नफरत जो सिखाए वह धर्म तेरा नहीं है, इंसान को रौंदे वह कदम तेरा नहीं है
मालिक ने हर इंसान को इंसान बनाया, हमने उसे हिंदू या मुसलमान बनाया।[11]

साहिर ने बचपन से ही बाप के हाथों अपनी माँ को जलील होते हुए देखा था। कहते हैं बचपन के कटु अनुभवों के नक्श दिल पर गहरे असर करते हैं। बहुत छोटी उम्र में उन्होंने अदालत में तलाक के वक्त अपने अमीर जागीरदार बाप के साथ रहने के बजाय अपनी माँ के साथ मुफलिसी में रहना चुना था। मां ने

जेवर तक बेच कर बेटे को तालीम दिलाई। बाप ने उसे मारने की धमकी दी थी। डर के साए में रहकर साहिर जवान हुआ। अपनी मां की व्यक्तिगत पीड़ा के माध्यम से साहिर ने सदियों से चली आ रही औरतों की जिल्लतभरी जिंदगी का इजहार किया–

औरत ने जनम दिया मर्दों को, मर्दों ने उसे बाजार दिया
जब जी चाहा मसला कुचला, जब जी चाहा दुत्कार दिया
औरत संसार की किस्मत है, फिर भी तकदीर की हेटी है
अवतार पयंबर जनती है, फिर भी शैतान की बेटी है।[12]

यह सच है कि साहिर ने अपने चारों ओर जिन विसंगतियों तथा विषमताओं को देखा था, उनको अपनी साहित्य में तब्दील कर नया रूप दिया। उन्होंने समाज में फैली कुरीतियों को उजागर किया। औरत को मनोरंजन का साधन मानने वालों का चित्रण किया–

इस बस्ती में जहर घुले, हर बोटी रोटी में तुले
इन गलियों की आंख खुले, जब धरती पर छाए शाम
सोने न गया तो देखेगा, मां बहनों के लगते दाम
ए! मेरे नन्हे गुलफाम।[13]

हजारों सालों से औरत पुरुषों के जुल्मों को सहती आ रही है। साहिर बड़ी शिद्दत से मिथक के सहारे इस अत्याचार को करते हैं–

सीता भी जहां सुख पा न सकी, तू उस धरती की नारी है
जो जुल्म तेरी तकदीर बना वह जुल्म युगों से जारी है।[14]

लक्ष्मी(1982) फिल्म के गीत के माध्यम से साहिर ने औरत की मजबूरी और मर्द की वासना को बड़ी शिद्दत के साथ प्रकट किया है–

मैका छूटा ससुराल छुट्टा जाएगी मगर जाएगी कहां
अब वाल्मीकि सा कोई ऋषि, इस धरती पर पाएगी कहां
अब तू एक भटकती हिरनी है
और मर्द की आंख शिकारी है।[15]

सृष्टि को चलाने के लिए स्त्री और पुरुष का बने रहना बहुत जरूरी है। इनके बगैर यह दुनिया नहीं बढ़ सकती। औरत को नरक का द्वार कहने वालों पर साहिर ने गृहस्थ जीवन में औरत के पर प्रकाश डालते हुए चित्रलेखा(1964) फिल्म की नायिका के द्वारा अपनी बात का इजहार किया है–

संसार से भागे फिरते हो, भगवान को क्या तुम पाओगे
इस लोक को भी अपना न सके, उस लोक में भी पछताओगे
यह भोग भी एक तपस्या है, तुम त्याग के मारे क्या जानो
अपमान रचयिता का होगा, रचना को अगर ठुकराओगे।[16]

तारीख इस बात की साक्षी है कि मर्द ने औरत को झूठी शानो शौकत की भूल भुलैया में उलझा कर उसके वजूद से खेला है। इज्जत, संस्कार, त्याग, तपस्या, बलिदान और समर्पण के गहने पहनाकर उसे हमेशा ही पुरुष ने कैद किया है। अपने अधिकार की रक्षा के लिए और सम्मान के साथ जीवन व्यतीत करने के लिए साहिर ने औरत को चेतावनी देते हुए लिखा है–

नारी को इस देश ने देवी कहकर देसी जाना है
जिसको कुछ अधिकार न हो, उसे घर की रानी माना है
तुम ऐसा आदर मत लेना, आड़ हो जो अपमान की।[17]

साहिर का नजरिया अपने समकालीन अन्य साहित्यकारों से जुदा था। उन्होंने ताजमहल को अलग ही दृष्टिकोण से देखा था। अक्सर कवि ताजमहल को प्रेम का प्रतीक मानते हैं। लेकिन साहिर ताजमहल को शोषण का प्रतीक के रूप में लेते हैं–

एक शहंशाह ने दौलत का सहारा लेकर
हम गरीबों की मोहब्बत का उड़ाया है मजाक
मेरे महबूब कहीं और मिला कर मुझसे।[18]

कुछ व्यक्ति किस्मत में विश्वास करते हैं। वे भाग्य की दुहाई देकर अपनी वर्तमान दशा से संतुष्ट रहते हैं। ऐसे लोग जीवन में तरक्की करने का प्रयास नहीं करते। उनका मानना है कि यदि उनके जीवन में कुछ बेहतर होना होगा तो होकर ही रहेगा। साहिर ऐसे लोगों को प्रयास के द्वारा अपनी तकदीर को सँवारने का पैगाम देते हैं। साथ ही अपने अंदर आत्मविश्वास का भी संदेश देते हैं–

तदबीर से बिगड़ी हुई तकदीर बना ले
अपने पे भरोसा है तो एक दाव लगा ले।[19]

आदमी की जिंदगी में लाभ–हानि, सुख–दुःख, यश अपयश, और सफलता–असफलता तो आते ही रहते हैं। प्रगतिशील व्यक्ति इन बातों से घबराता नहीं है। वह हर हाल में अपने जीवन–पथ पर बढ़ता ही जाता है। वह कभी निराश नहीं होता। साहिर ने मानव को जीवन में हर परिस्थितियों में आगे बढ़ने को प्रेरित किया है–

घटा में छिपके सितारे फना नहीं होते
अंधेरी रात के दिल में दीये जला के जियो
यह जिंदगी किसी मंजिल पे रुक नहीं सकती
हर मकान से आगे कदम बढ़ा के जियो।[20]

साहिर लुधियानवी मानवतावाद के प्रबल समर्थक हैं। मानवता के बल पर ही हमारा समाज आगे बढ़ रहा है। सब प्रकार के भेदभाव को त्याग कर और इंसानियत की भलाई के कार्य करके ही हमारा समाज आगे बढ़ सकता है। साहिर का मानना है कि प्यार के बल पर ही हम दुनिया में तरक्की कर सकते हैं–

रंग और नस्ल जात और मजहब जो भी है आदमी से कमतर है
इस हकीकत को तुम भी मेरी तरह मान जाओ तो कोई बात बने
नफरतों के जहान में हमको प्यार की बस्तियां बसानी है
दूर रहना कोई कमाल नहीं पास आओ तो कोई बात बने।[21]

बहुत से लोगो के साथ रहने से ही समाज अस्तित्व में रहता है। भीड़ का नाम समाज नहीं है। समाज अनुशासन में रहकर अपने उद्देश्यों की पूर्ति करता है। समाज के लोग एक दूसरे का हाथ बंटा कर समाज की तरक्की में सहायता करते हैं। सामूहिक प्रयास से ही समाज अपने विकास के पथ पर आगे बढ़ता है। साहिर ने सामूहिकता की अहमियत पर प्रकाश डाला है–

साथी हाथ बढ़ाना
एक अकेला थक जाएगा, मिलकर बोझ उठाना।[22]

लोकतंत्र में आवाम को अपने नुमाइंदे चुनने का अधिकार होता है। चुने हुए प्रतिनिधि ही जनता की सेवा करते हैं। लोकतंत्र को सभी शासन व्यवस्थाओं में सबसे अच्छा माना गया है। इसमें लोगों को अपनी तरक्की मौका मिलता है। यह शासन व्यवस्था पूंजीपतियों को अवाम का शोषण करने से रोकती है। साहिर ने लोकतंत्र के महत्व पर अपनी लेखनी चलाई–

जनता का फरमान चलेगा, जनता की सरकार बनेगी
धरती की बेहद आबादी धरती की हकदार बनेगी
सामंती सरकार ना होगी पूंजीवाद समाज ना होगा।[23]

इस प्रकार साहिर लुधियानवी ने अपने गीतों के माध्यम से समाज को नई दिशा देने का कार्य किया। उन्होंने समाज के हर पहलू को अपनी लेखनी से छुआ। मानव जीवन की कोई भी संवेदना और जज्बात उनकी कलम से बच नहीं पाई। हिंदुस्तान के किसी भी हिस्से में बेटी की शादी साहिर के इस गीत के बगैर संपन्न नहीं होती–

बाबुल की दुआएं लेती जा, जा तुझको सुखी संसार मिले
मैके की कभी न याद आए, ससुराल में इतना प्यार मिले।[24]

सन्दर्भ–सूची :–

1. www-Hindigeetmala-com-Samaj ko Badal Dalo(1970)।
2. जाग उठी ख्वाब कई, (सं)मुरलीमनोहर प्रसाद सिंह, पेंगुइन बुक्स दिल्ली, संस्करण 2012, पृष्ठ–10।
3. साहिर लुधियानवी, (सं)प्रकाश पण्डित, हिंदी पॉकेट बुक्स, दिल्ली, संस्करण1981, पृष्ठ61।
4. www-Hindigeetmala-com-film(Naya Raasta 1970)
5. www-Hindigeetmal-com-film(Dharmaputr 1961)
6. www-Hindigeetmala-com-film (Girl Friend 1960)
7. Film Naya Raasta(1970)
8. गाता जाए बंजारा, साहिर लुधियानवी, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, संस्करण 2002, (पृष्ठ89)
9. फिल्म दीदी, 1959।
10. फिल्म हम दोनों, 1961।
11. गाता जाए बंजारा, साहिर लुधियानवी, हिंदी बुक्स सेंटर दिल्ली, संस्करण2002, (पृष्ठ101)
12. साहिर लुधियानवी : मेरे गीत तुम्हारे, सुनील भट्ट, स्टार पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, संस्करण2016, (पृष्ठ86)।
13. साहिर,जाग उठी ख्वाब कई, (पृष्ठ25)।
14. फिल्म लक्ष्मी, 1982।
15. वही।
16. फिल्म चित्रलेखा, 1964।
17. साहिर, गाता जाए बंजारा, पृष्ठ66।
18. निदा फाजली, तमाशा मेरे आगे, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2006, पृष्ठ–69।
19. साहिर लुधियानवी, गाता जाए बंजारा, पृष्ठ–3।
20. फिल्म 'हमराज' 1967।
21. साहिर लुधियानवी, गाता जाए बनजारा, पृष्ठ18।
22. वही, पृष्ठ–30।
23. फिल्म 'आज और कल'(1963)।
24. साहिर लुधियानवी, गाता जाए बंजारा, पृष्ठ120।

ꕤ★ꕤ

फिल्मों और धारावाहिकों का बाजारू फ्यूजन : वेब-सीरीज

डॉ. प्रणु शुक्ला*

हिंदी साहित्य के साथ–साथ सिनेमा भी सामाजिक गतिविधियों, जागरुकता को वहन करने के साथ–साथ प्रतिबोध करने का माध्यम है, यदि साहित्य समाज का दर्पण है तो सिनेमा साहित्य का दर्पण है। प्रसिद्ध सिने समीक्षक प्रह्लाद अग्रवाल के अनुसार "देखते देखते सामाजिक जिंदगी में सिनेमा की उपस्थिति अनिवार्य हो गई है। छोटे पर्दे की पहुंच गांव गांव तक है, इसलिए अब सिनेमा देखने शहर नहीं भागना पड़ता। फिल्मी सितारों का नाम बच्चों की जुबान पर है। जनमानस को इस कला रूप ने जितने गहरे से स्पर्श किया है उतना और किसी माध्यम ने नहीं। कला परंपरा में यह दृश्य काव्य का विकसित रूप तो है ही साथ ही विज्ञान की मदद से इसने चतुर्दिक विस्तार किया है।"[1] सिनेमा की विवेचनात्मक पृष्ठभूमि में जितना हाथ साहित्य का है, कमोबेश उतना ही हाथ समाज का भी क्योंकि सिनेमा का प्रदर्शन समाज में ही किया जाता है। सिनेमा संचार के साधनों में सबसे सशक्त माध्यम है, इसके द्वारा लिखी गई पटकथा को आंखों के रास्ते दर्शक मन तक भली प्रकार से उतारा जा सकता है क्योंकि सिनेमा इस सिद्धांत पर कार्य करता है कि देखा गया ज्ञान सर्वाधिक स्थायी होता है। आजकल का सिनेमा जिस तरीके से निर्मित हो रहा है या यूं कहें जिस तरीके से विकसित हो रहा है उसमें सर्वाधिक प्रमुख स्थान युवा पीढ़ी का है क्योंकि फिल्में बनाने वाले भी प्रमुखतः युवा है और उन्हें देखने वाले भी, उनके दर्शकों का एक बहुत बड़ा वर्ग भी युवा पीढ़ी से आता है। इस दौर में वे तरह–तरह के प्रयोग करते हैं। वर्तमान समय का सबसे बड़ा प्रयोग हिंदी फिल्मों और धारावाहिकों तुलना में वेब सीरीज का प्राकट्य है। वेब सीरीज में समय की भी कोई पाबंदी नही होती है। एक वेब सीरीज में 10 से 12 एपिसोड हो सकते है, इसके अलावा वेब सीरीज के एक से ज्यादा 'सीजंस' भी आते है। नेट फेलिक्स, अमेजन प्राइम विडियो, यू–ट्यूब, जी–5, डिजनी हॉट स्टार, ए एल टी बालाजी, वूट, मेक्स प्लेयर और इस तरह के बहुत से ओ.टी.टी प्लेटफॉर्म वेब सीरीज के लिए लोकप्रिय है। आज के समय भारत मे इस तरह की कई स्ट्रामिंग सर्विसेज उपलब्ध है। इन प्लेटफॉर्म पर कई सारी वेब सीरीज हिंदी में ऑनलाइन देखी जा सकती है। इंटरनेट और सोशल मीडिया का उपयोग बढ़ने के साथ वेब सीरीज को भी काफी उभरते हुए देखा जा सकता है। वेब सीरीज के द्वारा मनोरंजन का तरीका धीरे धीरे बदल रहा है।

संभवत या पहले वेब सीरीज या तो बनती नहीं थी या फिर उस पैमाने पर नहीं बनती थी जिस पैमाने पर आज बनती है दरअसल आज की पीढ़ी 'टू मिनट' वाली थ्योरी पर विश्वास करती है। यह वेब सीरीज फिल्मों और धारावाहिकों का एक तरीके से 'फ्यूजन' है। जैसा कि हम जानते हैं यह सभी वेब सीरीजें सिनेमा हॉल की बजाय ओटीटी माध्यम पर रिलीज होती है। इन ओटीटी प्लेटफॉर्म का अभिप्राय प्लेटफॉर्म 'ओवर–द–टॉप' प्लेटफॉर्म हैं, जोकि इन्टरनेट के माध्यम से वीडियो या अन्य मीडिया से संबंधित विषयवस्तु को प्रदर्शित करता है। यह एक तरह के एप्प होते हैं जिसमें ये टेलीविज़न कंटेंट एवं फ़िल्में दिखाई जाती हैं। इसके लिए ग्राहकों को इन ओटीटी प्लेटफॉर्म का सब्सक्रिप्शन लेना होता हैं।और फिर उसमें वे जिस कंटेंट को देखना चाहते हैं वह देख सकते हैं। ओटीटी प्लेटफॉर्म की लोकप्रियता सबसे पहले 'अमेरिका' में बढ़ी थी, इसके बाद यह धीरे–धीरे सभी जगह फ़ैल गई हैं। और आने वाले कुछ समय में इसका बहुत ज्यादा उपयोग होने लगेगा।"[2]

'सेक्रेड गेम्स' नेटफ्लिक्स पर आई पहली हिन्दी वेब सीरीज है। सैफ अली खान और नवाजुद्दीन सिद्दीकी अभिनीत यह वेब सीरीज 6 जुलाई 2018 को रिलीज हुई थी। फिल्म में कुब्रा सैत ने एक किन्नर की भूमिका निभाई है। यह सीरीज विक्रम चंद्रा के 2006 के उपन्यास 'सैक्रेड गेम्स' पर आधारित है। इस थ्रिलर सीरीज को अनुराग कश्यप और विक्रामादित्य मोटवाणे ने डायरेक्ट किया है।"[3]

---

* सहायक आचार्य, हिंदी, राजकीय कन्या महाविद्यालय, चौमूँ–जयपुर।

इसके बाद तो फिर वेब सीरीज आने का तांता लग गया। भारत में हिंदी भाषा में देखी जाने वाली प्रमुख वेब सीरीज पाताल लोक, आर्या, स्पेशल आप्स, द फैमिली मैन, पंचायत, मिर्जापुर, मेड इन हेवन, चाचा विधायक है हमारे, आश्रम, मनफूलगंज की बिन्नी, द गोन गेम्स, असुर, बोर्ड ऑफ ब्लड, कूकू, कोड एम, ब्रीद, लैला, बाम्बे बेगम्स, फोर मोर शॉट सीजन, अपहरण, डेल्हीक्राइम, क्रिमिनलजस्टिस, पॉयजन, स्मोक, अभय, अभय–2, रसभरी, द फाइनल काल, कोशिका, रंगबाज, बंदिश बेंडिट्स, तांडव, द सिम्पल मर्डर, व्हाट योर स्टेटस, चॉपस्टिक, कोटा फैक्ट्री, गुल्लक, हे प्रभु, टी॰वी॰एन्टटेरमेन्ट, परमानेन्ट रूममेट्स, बैंग बाजा बारात, इंजीनियरिंग गर्ल्स, हंसमुख, स्कैम, ट्रिपलिंग, पिचर, द ट्रिप, गर्ल इन द सिटी, बेक्ड, अलीशा, हैप्पी टू बी सिंगल, नॉट फिट, लेडीज रूम, मैन्स वर्ल्ड, आईशा–ए वर्चुअल गर्लफ्रेंड, लव शॉट्स, तन्हाइयां आदि आदि हैं। दरअसल वेब सीरीज को बनाने में निर्माता–निर्देशक को भी यह आसानी होती है कि उसे बहुत अधिक सेंसर बोर्ड को सहन नहीं करना पड़ता तथा जो कुछ रियल है वैसा का वैसा वह दर्शकों को परोस देता है। आजकल की युवा पीढ़ी इन वेब सीरीजों को बहुत अधिक पसंद कर रही है क्योंकि उनके पास पूरी फिल्म देखने के लिए 3 घंटे नहीं होते तथा न ही धारावाहिकों की कड़ियों का इंतजार कर सकते हैं, इसके विपरीत किसी भी वेब सीरीज के सेशंस में हाथों–हाथ कथा विस्तार ले लेती है और एक समय तक आते–आते कथा अपने गंतव्य तक पहुंच जाती है हालांकि कोरोनावायरस की व्यापक महामारी के चलते तथा समय की कमी के कारण अनेकानेक हिंदी फिल्में भी बहुत सारे ओटीटी माध्यमों पर प्रदर्शित की जा रही हैं लेकिन वेब सीरीज में ने इन सब को मात दे दी है। समस्त आधुनिक उपकरणों तथा भावानुरूप भाषा से लैस यह वेब सीरीजें दर्शकों की पहली पसंद बनती जा रही है।

अमर उजाला में हुए एक शोध के अनुसार "सिनेमा बड़े परदे की तो मांग करता है तो सीरियल्स के लिए महज 32 से 52 इंच के घर की दीवार पर टंगे टीवी की दरकार होती है। वेब इससे भी छोटा उपकरण चाहता है। इसे कम्प्युटर, लैपटाप, टैब या स्मार्ट फोन पर भी देखा जा सकता है। 'एनी टाईम एनी व्हेयर' यही वेबसीरीज की सबसे बड़ी ताकत है।"[4] बाहर हाल प्रसिद्ध टीवी एक्टर शांतनु अनम ने वेब सीरीजों का महत्व प्रतिपादित करते हुए कहा है कि "सबसे अच्छी बात तो ये है कि फोन में ही आप इसे घर में कहीं भी बैठकर, रेस्तरां में, अपने दोस्तों को इंतजार करते हुए या मेट्रो में आते–जाते कहीं भी देख सकते हैं। ये सीरीज टीवीएफ प्ले, नेटफ्लिक्स, हॉट स्टार और ज्यादातर यू–ट्यूब पर आराम से मिल जाती हैं.जैसे–जैसे टेक्नोलॉजी बढ़ेगी और हमारे स्मार्टफोन अपडेट होंगे। मोबाइल पर कहीं भी वेब सीरीज देखने का अनुभव और बढ़िया होगा। ऐसा नहीं है कि इन वेब सीरीजों में छोटे मोटे लोक कलाकार ही भाग ले रहे हैं बल्कि हॉलीवुड और बॉलीवुड के कई बड़े कलाकार और निर्माता निर्देशक इन में सक्रिय हैं।

आजकल कुछ चेहरे तो वेब सीरीजचं के माध्यम से इतने प्रसिद्ध हो गए हैं कि हम उन्हें उनके नाम से नहीं वरन वेब सीरीज के नाम से जानते हैं जैसे चाचा विधायक है हमारे में जाकिर खान या पंचायत के जीतेन्द्र कुमार। हालांकि यह कहना गलत नहीं होगा कि 100 में से 80 वेब सीरीज है सिर्फ सस्पेंस और हॉरर कथानकों पर बनती है जिनके संवाद अदायगी बहुत ही गाली गलौज भरी होती हैं जो आज के युवाओं की पहली पसंद बनते जा रहे हैं। इनकी भाषा भी बहुत अधिक परिष्कृत नहीं होती बल्कि युवाओं को पसंद आने वाली बाजारू और चलताऊ भाषा का प्रयोग इसमें बहुत अधिक किया जाता है। कुल मिलाकर इनमें उन सभी मसालों को डाला जाता है जिन से एक बहुत बड़ा दर्शक वर्ग प्रभावित हो सके क्योंकि आज की जनता की डिमांड यही है। हालिया ताजा उदाहरण 'तांडव' नामक वेब सीरीज का लिया जा सकता है जिसमें इतना वाद विवाद उत्पन्न हुआ कि वेब सीरीज को बंद करने की और उसे समस्त ओटीटी माध्यमों से हटाने की नौबत तक आ गई थी लेकिन उसका यह मसाला ही उसे हिट बना गया। वेब सीरीज के निर्माण में 'जितनी गालियां उतनी तालियां' वाला फार्मूला बेहद हिट है। ठीक इसी तरह 'आश्रम' नामक वेबसीरीज, जिसमें संत निराला की भूमिका बॉबी देओल ने निभाई थी, पर एससी एसटी एक्ट के तहत मुकदमा चला किंतु फिर भी इस वेब सीरीज के दर्शकों की संख्या में कोई कमी नहीं आई और प्रकाश झा की यह वेब सीरीज बेहद हिट रही। हिंदी धारावाहिकों में जहां कथा बहुत धीमी गति से चलती है और

उसमें भूमिका निर्वहन करने वाले सामान्य कलाकार होते हैं वही वेब सीरीज में अपने अलग चेहरे होते हैं तथा तथा शीघ्रता से विस्तार ले लेती है वेब सीरीज का ध्येय वाक्य है– "जब मर्जी हो तब देखिए" वेब सीरीज में धारावाहिक जैसा यथार्थ बोध भी है तो फिल्मों जैसा हर तरह का मसाला भी।

प्रसिद्ध दैनिक जागरण में 'अनंत विजय' लिखते हैं– कुछ दिनों पहले इसी तरह की एक वेब सीरीज आई थी 'लैला'। इस पूरी सीरीज में हिंदू धर्म को लेकर एक भयावह तस्वीर पेश की गई थी। जिस तरह से हिंदू लड़कियों के मुसलमान लड़के से शादी करने के परिणामों की बेहद आपत्तिजनक तस्वीर पेश की गई थी वो निश्चित तौर पर समाज को बांटनेवाले या एक समुदाय के खिलाफ दूसरे समुदाय के मन में शंका के बीज बोने जैसा था। मुस्लिम लड़कों से शादी करनेवाली हिंदू लड़कियों के शुद्धिकरण को लेकर जिस तरह के संवाद और दृश्य पेश किए गए थे, उसको देखने के बाद स्वाभाविक तौर पर मन में यह प्रश्न उठते हैं कि इसके पीछे का एजेंडा क्या है। इसके पीछे एक खास विचारधारा का पोषण और एक दूसरी विचारधारा को पुष्ट करने की मंशा को रेखांकित किया जा सकता है। इस तरह की एजेंडा सीरीज की पहचान इसके निर्देशकों के नाम और उनके पूर्व के काम को देखकर साफतौर पर किया जा सकता है।"[5] इसी तरह एक अन्य वेब सीरीज में भारतीय वायु सेना को कश्मीरी घरों के ऊपर बम डालते हुए दिखाया गया जो सरासर गलत था लेकिन प्रसिद्धि पाने के माध्यम से इन के निर्माता निर्देशक कुछ भी परोसने में हिचकिचाते नहीं है क्योंकि यह व्यवस्थित सेंसर बोर्ड के प्रमाणीकरण से दूर हैं। एक बात का जिक्र यहां विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि इन वेब सीरीजों में वासना और अश्लीलता का इतना भयंकर प्रयोग किया जाता है कि कहीं ना कहीं यह वेब सीरीजें रोड पर बिकने वाले लुगदी साहित्य की तरह लगती हैं। अश्लीलता और वासना ही वे कारण है जिसे जिसके कारण से लोग इन वेब सीरीजों को बेतहाशा पर पसंद करते हैं। इसमें हीरो हीरोइन के गोपनीय प्रसंगों का फिल्मांकन इस तरीके से किया जाता है कि दर्शक उन कामुक प्रसंगों को देखने के लिए मजबूर हो जाए और इससे निर्माता निर्देशकों की वेब सीरीज हिट हो जाती है। कहना न होगा कि यह निर्माता–निर्देशक अपनी सीरीज को हिट बनाने के लिए आइटम सॉन्ग तक का तड़का लगाने तक को तैयार हो जाते हैं। जो जैसा है उसे उसी तरीके का दिखाने की होड़ में फिल्म के निर्माता निर्देशक यह भूल जाते हैं कि लोग ओटीटी माध्यम पर जो भी वेब सीरीज देखेंगे वह उनके घर के बीच हो सकती है उनके पारिवारिक सदस्यों के साथ हो सकती है। 'जनता की डिमांड है' का बहाना बनाकर निर्माता–निर्देशक इन से बच निकलते हैं। धारावाहिकों और फिल्मों में अभी इस पर रोक लगी हुई है क्योंकि फिल्म में तो सेंसर बोर्ड से प्रमाणित होती हैं यदि उसमें कुछ ऐसी वैसी बात हो तो उसे सर्टिफिकेट या प्रमाणन लेना पड़ता है। इसके विपरीत धारावाहिकों में यह माना जाता है कि इसे दर्शक वर्ग परिवार के बीच बैठकर देखेगा। वेब सीरीजों की यह सबसे बुरी बात है कि भाषा और विषय वस्तु के दौरान परोसी गई अश्लीलता और असंयमितता उसे एक बड़ा दर्शक वर्ग तो दे देती है लेकिन उस दर्शक वर्ग की संस्कृति, सभ्यता का बेड़ा गर्क हो जाता है। दूसरी और इन वेब सीरीजों में कथा कहने का तरीका इतना प्रभावशाली और तारतम्य पूर्ण होता है कि अंत तक दर्शक वर्ग इसमें बना रहता है इसमें इतनी रोचकता होती है कि कभी–कभी सारे एपिसोड भी एक साथ देखने पड़ जाते हैं। 6 घंटे की वेब सीरीज आपको यह बता देती है कि उसके कथा कहन का तरीका कितना धारावाहिक और फिल्मों से कितना अलग था और जो उसने परोसा वह आप तक कितना पहुंचा।

बहरहाल, फिल्म के निर्माता निर्देशक हीरो नायक और नायिका दर्शक वर्ग यह सभी समझ गए हैं कि आने वाला जमाना ना तो फिल्मों का है और ना धारावाहिकों का बल्कि आने वाला जमाना इन्हीं वेब सीरीजों का है। कोरोना जैसी महामारी के कारण विकसित हुआ यह माध्यम जन जन का कंठहार बन रहा है जब हर व्यक्ति धारावाहिक और फिल्म देखने की तुलना में वेब सीरीजों को देखना ज्यादा पसंद करता है क्योंकि इनमें वह सभी मसाला होता है जिसके कारण दर्शक वर्ग अपनी मानसिक क्षुधा की पूर्ति इनके माध्यम से हो सके। यह उसके मनोरंजन का भी उतना ही ध्यान रखती है जितना कि रोचकता का। आज जिधर देखो उधर बड़े से बड़ा निर्देशक निर्माता वेब सीरीज के मैदान में उतरने के लिए तैयार खड़ा है तथा

बड़े से बड़ा नायक और नायिका भी वेब सीरीज के महत्व को समझ चुके हैं। वे जानते हैं कि दर्शक वर्ग की जेब में रखा हुआ यह छोटा सा यंत्र जिसे मोबाइल कहते हैं अब उसके बिना दर्शक वर्ग का गुजारा मुश्किल है। जब भी समय मिले जैसे भी समय मिले वह अपनी मानसिक क्षुधा को शांत करना चाहता है, अपना मनोरंजन करना चाहता है। इसके कारण से वेब सीरीजों को लोकप्रियता मिली है। हालांकि इसके लिए जो भी ओटीटी माध्यम थे उनके चार्ज अब काफी महंगे पहले की तुलना में अब काफी महंगे हो गए हैं लेकिन फिर भी दर्शक वर्ग उससे एडिक्ट हो गया है। कोई भी वेब सीरीज आती है तो उसका प्रचार प्रचार जबरदस्त किया जाता है तथा जिस ओटीटी माध्यम पर जितनी वेब सीरीजें प्रचारित प्रसारित होंगी, जितनी देखी जाएगी उस ओटीटी माध्यम का विस्तार भी उतना ही अधिक होगा इसलिए कैसे भी करके ओटीटी माध्यम उन वेब सीरीजों को खरीदते हैं ताकि ताकि अन्य ओटीटी माध्यमों की भीड़ में वह अपने आप को श्रेष्ठ सिद्ध कर सके। यदि नए जमाने से कदमताल करनी है तो इन वेब सीरीजों की को स्वीकार करना पड़ेगा लेकिन फिर भी कहीं ना कहीं इन्हें एक दायरे के भीतर आना चाहिए तथा गंदी भाषा अश्लील संवाद और अश्लील वासना युक्त चित्रण से बचना चाहिए। निर्माता निर्देशकों को सोचना चाहिए कि हम जो भी चित्रण कर रहे हैं वह उसका प्रदर्शन आज नहीं तो कल संपूर्ण समाज के माध्यम सामने होगा ऐसे में हम समाज को क्या सीख दे पाएंगे।

संदर्भ–सूची :–

1. हिन्दी सिनेमा– बीसवीं से इक्कीसवीं सदी तक, सम्पादन प्रह्लाद अग्रवाल, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2009, पृष्ठ–12।
2. डिजिटल इंडिया, अजय कुमार, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली; संस्करण 2018, पृष्ठ–73।
3. डिजिटल इंडिया और भारत, चिराग गुप्ता, अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2017।(किंडल एडिशन), पृष्ठ–123।
4. अमर उजाला का एन्टटेरमेन्ट डेस्क से उद्घृत, दिनाँक 9 अप्रैल, 2019।
5. विजय अनंत, दैनिक जागरण में आलेख से उद्घृत, दिनांक 8 सितम्बर 2019, रविवार।

ଈ★ଓ

‘रुकोगी नहीं राधिका’ : स्त्री-स्वाधीनता की यात्रा

डॉ. बीना जैन*

"बीसवीं शताब्दी के आखिरी तीन दशकों के बीच कथा कारों की जो कई पीढ़ियां एक साथ सक्रिय रही हैं उनमें पुरुषों के साथ महिलाओं ने भी बड़ी संख्या में हिस्सेदारी की है। समाज में स्त्री की स्थिति, उसकी पीड़ा, यंत्रणा, बेबसी, असमंजस, विद्रोह, संघर्ष, महत्त्वाकांक्षा, शक्ति, और कहीं–कहीं सिर्फ उसके होने को, तरह–तरह से अभिव्यक्ति देने वाले उपन्यासों की बड़ी भरी–पूरी दुनिया मिलती है जिसकी रचना महिलाओं की कलम से हुई है।"[1] उषा प्रियंवदा भी उसी पांत में अपनी हिस्सेदारी दर्ज करती हैं। ‘रुकोगी नहीं राधिका’ उनका दूसरा उपन्यास है जो उनके प्रथम उपन्यास ‘पचपन खंभे लाल दीवारें’ की नायिका सुषमा के, व्यक्तिगत इच्छाओं, आकांक्षाओं का गला घोंट कर जीवन जीने वाली नारी की परंपरागत छवि को खारिज करते हुए अपना जीवन स्वयं के अनुरूप गढ़ने की आकांक्षाओं से भरी नारी की एक नई छवि निर्मित करता है। बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक के उत्तरार्ध में छपने वाला यह उपन्यास एक बड़ा बदलाव इंगित करता है।

राधिका इसकी मुख्य किरदार है जिसे अक्सरहां प्रवासी भारतीय की समस्याओं या आस्तित्ववादी मुहावरे तले विश्लेषित किया जाता है लेकिन वस्तुतः यह उपन्यास नारी मुक्ति के प्रश्नों को केंद्र में रखते हुए आधुनिक समाज में होने वाले परिवर्तनों, बदलते रिश्तों, टूटते जीवन मूल्यों, स्वार्थपरता के मध्य परिवार के बनते–बिगड़ते संबंधों और ताल–मेल न बिठा सकने के कारण अकेले होते हुए सदस्यों की पीड़ा की बारीकी से पड़ताल करता है।

उपन्यास का कथानक राधिका के इर्द–गिर्द घूमता है। राधिका एक संभ्रांत प्रतिष्ठित कला आलोचक की पढ़ी–लिखी, साहसी, अपनी मर्जी से जीवन जीने वाली पुत्री है। राधिका के पिता ने उसे जीवन में बहुत छूट दी हुई है। वह एक व्यक्तित्व के पूरे विकास में दृढ़ विश्वास रखते हैं। इसीलिए राधिका पूरे नगर में स्वच्छंद वायु के झोंकों की तरह डोलती फिरती है। वह जो ठान लेती है वही करती है। कोई उस पर दबाव नहीं डाल सकता। माँ की मृत्यु के पश्चात अधिकांश समय पापा के साथ बिताने के कारण वह अपने पिता से गहरे–से जुड़ी हुई है और पिता के अध्ययन–अनुशीलन में हाथ भी बंटाती है। राधिका एक समझदार लड़की है लेकिन मां की मृत्यु के अठारह वर्ष बाद पिता के पुनर्विवाह की घटना उसके जीवन को विश्रृंखलित कर देती है। सकते में आई राधिका को एक झटका लगता है। उसके मन में स्थापित आदर्श पिता की छवि खंडित हो जाती है वह बिखर जाती है। अपने पिता को क्षमा करना उसके लिए असंभव है। ‘पिता के खाली क्षणों की संगिनी पूरे जीवन की धुरी, अचानक से वह स्थान राधिका को उनकी नई पत्नी के लिए खाली करना पड़ा। उसे स्थान देने के लिए राधिका को हटना पड़ा था और यह बात वह कभी नहीं भूलती।’[2] "पापा केवल पिता, लेखक, वकील बनकर ही संतुष्ट नहीं थे, यह उसके सामने स्पष्ट था। वह जीवन में परिपूर्णता चाहते थे. एक युवा शरीर का साथ, और इसी बोध से राधिका के मन में घोर वितृष्णा भर उठी। यह उन्हें सूझी क्या ?"[3] नई माँ विद्या के साथ उस घर में रहना असहनीय है। पिता पर पराश्रिता बेटी कहीं नहीं जा सकती, पिता उसकी इस मजबूरी से अवगत हैं, "और यदि राधिका घर से चली भी जाएगी, तो शायद वे रोकेंगे नहीं, क्योंकि वे जानते हैं कि राधिका कहीं भी नहीं जा सकती।"[4] राधिका इस मजबूरी को तोड़कर कोई भी नौकरी करके आत्मनिर्भर होना चाहती है। भाई के घर आई स्वाभिमानी, आहत राधिका पिता के साथ घर वापिस जाने से जाने से इंकार कर देती है। ‘बस बहुत हो चुका आपने अपनी इच्छाओं के सामने कभी मेरी खुशी का ख्याल नहीं किया। बस अब आप सब लोग मुझे अकेला छोड़ दें।"[5] वह विवाह का विकल्प भी ठुकरा देती है– ‘मैं अभी विवाह नहीं करना चाहती, राधिका ने दृढ़ स्वर में कहा,

---

* एसोसिएट प्रोफेसर, किरोड़ीमल महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

जो आप चाहते हैं वही हमेशा क्यों हो? क्या मेरी इच्छा कुछ भी नहीं है? मैं आपकी बेटी हूं, यह ठीक है, पर अब मैं बड़ी हो चुकी हूं और मैं जो चाहूंगी वही करूंगी।.... राधिका के मन में रह–रहकर यही आता है कि जब पापा ने अपने जीवन की राह चुन ली तो वह क्यों नहीं स्वतंत्र, निर्मम हो अपने लिए राह खोज लेती।"[6] घर की असहनीय हो आई स्थिति से उबरने का निमित्त बना शिकागो के एक समाचारपत्र का संवाददाता डैनियल पीटरसन– डैन, जो भारत आकर विदेशियों के लिए भारत–दर्शन नाम की एक गाइड बुक लिख रहा था। पिता के काम से राधिका को जब–तब लाइब्रेरी जाना पड़ता था जहां वह डैन के संपर्क में आती है। उसकी सहायता से राधिका शिकागो विश्वविद्यालय में प्रवेश लेती है और आंशिक छात्रवृत्ति की कसर पूरी करने के लिए डेनियल पीटरसन की सहायिका के रूप में काम करना चाहती है। यह बात पिता के लिए विस्फोट से कम साबित नहीं हुई। 'राधिका मूर्खता और अज्ञान में अपना जीवन नष्ट कर लेगी पापा ने कई बार कहा। राधिका से यह सब सुना नहीं गया। एक ऐसी तिलमिला हट और विद्रोह उसके मन में भर उठा था कि पापा की कोई बात, कोई सेंटीमेंट उसको छू नहीं पाया। वह सोचती रही और हैरत करती रही कि पापा की इस पीड़ा से वह रंच मात्र भी द्रवित क्यों नहीं हो रही है।'[7] महत्त्वाकांक्षा और विद्रोह, उसमें सामाजिक–पारम्परिक, नैतिक प्रतिमानों एवं आचार– संहिता के प्रतिपक्ष में अपना विधान स्वयं रचने का साहस उत्पन्न करता है। लिहाजा पिता के मना करने के बावजूद भी वह अपना निर्णय नहीं बदलती और थोड़ा–सा सामान लेकर भारत छोड़ देती है।

राधिका स्त्री की आधुनिक सोच अवश्य प्रतिपादित करती है पर शीघ्र ही वह उसके दुष्परिणाम और वास्तविकता का सामना करती है। मनीष राधिका के लिए कमरा नहीं ढूँढता। राधिका को संशय है कि "कहीं डैन ने ही तो उसे बिना बताए मनीष को राधिका के लिए अलग जगह ढूँढने से मना तो नहीं कर दिया ?" राधिका विदेश में डैन की पराश्रिता है। पितृसत्ता हजारों साल से चली आ रही ऐसी व्यवस्था है जिसमें पुरुष स्त्री को अपने अधीन रख नियंत्रित करता है, उसे उपभोग की वस्तु बनाता है। डैन भी राधिका को एक साधन के रूप में प्रयुक्त करता है। वह राधिका में अपना खोया यौवन ढूँढता है और एक वर्ष पूरा होते न होते राधिका से दूर जाने की अनुमति मांगता है। उसके अनुसार राधिका तब स्वतंत्र हो जाएगी और जैसे चाहेगी रह सकेगी। 'तुम्हें नई तरह से एडजस्ट करने में समय लगेगा। मैं जानता हूं मुझसे छूटने पर दुख भी; मैं तुम्हें रिजेक्ट नहीं कर रहा हूं, मुक्त कर रहा हूं।'[8] वस्तु की प्रयुक्त राधिका डैन द्वारा बड़े ही सहज भाव से मुक्त कर दी जाती है।भारत में पितृसत्तात्मक व्यवस्था में छटपटाती राधिका का निर्णय अपने जीवन को एक दिशा देने का प्रयास था लेकिन विदेश में इसी व्यवस्था द्वारा वह छली जाती है। वस्तुतः देश छोड़ते समय राधिका के मन में भविष्य का यह प्रारूप नहीं था। पढ़ाई के साथ साथ डेन की सहायिका के रूप में काम करने के प्रस्ताव से राधिका तो डैन की कृतज्ञ थी। एक अल्हड़, अनजान और बड़ी गंभीरता से जीवन को लेने वाली राधिका अचानक से जीवन के दोराहे पर ला खड़ी कर दी जाती है।

विदेशों में युवा संबंधों की आकस्मिक समाप्ति आम घटना होटी है। भारतीय संस्कारों और वातावरण में पली राधिका के लिए डैन और अपने संबंध की ऐसी अप्रत्याशित परिणति नितांत असहज, कटु अनुभव था। उसकी पूर्वनिर्मित आस्थाएं और मान्यताएं चकनाचूर होती हैं। न उसके पास घर है, न ही कोई आर्थिक आधार। पढ़ाई भी अभी अधूरी है। दैहिक शोषण, सामाजिक अपकर्ष, भावात्मक आघात से पत्थर की मूर्ति बनी राधिका "दुःख, खेद, क्षोभ, खीज, रुलाई, आत्म–भर्त्सना का एक भारी ढेर हृदय पर रखे हुए और होंठ भींचे हुए डैन के घर से निकल जाती है।डैन की दया पर निर्भरता उसे स्वीकार्य नहीं। उसके होठों पर बार–बार एक ही प्रश्न आ रहा था, मेरा क्या होगा लेकिन वह चुप रहती है।"[9] भारतीय समाज, पितृसत्ता के खिलाफ मुखर, अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की पहचान कर पाने में सक्षम राधिका में जैसे कई वर्षों का अनुभव पकापन एकाएक आ गया था। पर राधिका संघर्ष का रास्ता चुनती है। हालांकि इस राह में उसे अनेक असुविधाओं और अनिश्चितताओं का सामना भी करना पड़ता है।

जीवन का अकेलापन– 'राधिका ने अब जाना था कि अकेलापन कितना भयावह होता है। तब राधिका को लगता कि उसने पापा के साथ बड़ा अन्याय किया है।'[10] आजीविका के लिए किया जाने वाला कठिन श्रम, थकान, देश और अपनों की याद.... जो कुछ पीछे छोड़ आई है, उसी ओर अब मन रह–रहकर जाता है। जो कि अपना है। अपने सारे जीवन का संदर्भ, उससे अलग हटकर कोई कितने दिन संतुष्ट रह सकता है?'[11] उसके मन में बार–बार उमड़ता है कि वह जल्द से जल्द अपनी शिक्षा समाप्त करें और पापा के पास लौट जाए और फिर से बिखरे सूत्र समेटने का प्रयत्न करे... उसे रहना तो अपने ही देश में है और वह उस पर अडिग रही थी।

तीन वर्ष बाद एयरपोर्ट पर खड़ी है राधिका। अपने देश की धरती और चिर परिचित माहौल को बदला न पाकर पुलक उठती है। उसकी आँखें अपने आत्मीयों को तलाशती हैं। राधिका के भरे–पूरे परिवार में पिता, विमाता, भाई–भाभी, बच्चे सब के होते हुए भी उसे लेने कोई नहीं आता। कुछ ही देर में उसके अंदर एक हताशा रेंगने लगती है। हृदय में अंदर कुछ डूबने लगता है और खेद का नन्हा–सा आभास भी होने लगता है। यह भारत में वापसी का पहला अनुभव है, जो उसे अपने विदेश जाने के निर्णय के फलस्वरूप हुआ है। अपनों के स्नेह और संबंध–सूत्र को संवेदनहीनता और निर्ममता से तोड़ने के बावजूद राधिका को पापा से अपेक्षा है कि पापा उसे अवश्य ही लेने आएंगे। "ठीक है पापा से वह भयंकर झगड़ा करके विदेश चली गई थी पर उस बात को तीन वर्ष से ऊपर हो गए। उसने तो क्षमा भी मांग ली और लौट भी आई। राधिका अपने व्यक्तिगत स्वातंर्न्य के लिए लड़ी थी। लीक पकड़कर न चलना उसे पापा ने ही तो सिखाया था।"[12] घर नामक जिस इकाई से, परिवार नामक जिस संस्था से मुंह मोड़कर राधिका गई थी, उसके अस्तित्व का आज उसे प्रबल एहसास होता है। 'घर, यदि कहीं घर है! पापा का घर? बड़े भाई का घर? दोनों में से किसी ने यह जरूरत अनुभव नहीं की कि राधिका से मिलकर कोई उसे साथ ले आए।'[13] उसने सोचा भी न था कि 'कहाँ जाना है ?' समस्या का भी सामना करना पड़ेगा। यह अपनेपन की तलाश से मोहभंग है जो आधुनिक समाज की देन है जहां आत्मकेंद्रिकता मूल्य के रूप में स्वीकृत होती जा रही है। जहां दूसरों के मामलों में हस्तक्षेप असभ्यता का परिचायक है।

राधिका के सामने उसका संपूर्ण भविष्य मुँह खोले पड़ा है। जीवन में वह क्या करेगी उसे कुछ नहीं पता। कहां रहेगी यह भी नहीं सोचा। मामा लखनऊ स्टेशन पर उसे ले जाने आए हैं। लखनऊ में ही रहने वाला भाई नहीं आता। मामा राधिका के प्रति अपनी चिंता व्यक्त करते हैं। नानी भी उसके विवाह की इच्छा व्यक्त करती हैं। मामा के प्रश्न का कि 'अब क्या करने का इरादा है ? 'राधिका कोई उत्तर नहीं दे पाती। मामा के अनुसार राधिका को विवाह कर लेना चाहिए तो राधिका के मन के भीतर एक ही प्रश्न गूंजता है, पर उसे अब स्वीकारेगा भी कौन?[14] रूढ़िबद्ध समाज के लिए मर्यादाओं का उल्लंघन अक्षम्य अपराध की श्रेणी में आता है राधिका की अन्तश्चेतना से यह तथ्य नहीं छिपा। बिना विवाह किए ही राधिका पर परित्यक्ता का लेबिल चिपक गया है। उससे मिलने आने वाले तमाम लोगों के प्रश्न उसे परेशान करते हैं। मोहल्ले–पड़ोस के लोग, दूर के संबंधी– सबसे मिलना उसे टीडियस लगता है। राधिका के चरित्र पर तरह–तरह की बातें करने और उंगली उठाने वाले अपने भी कम नहीं हैं। परंपरागत विचारों वाली ताई के अनुसार सिगरेट, शराब तो राधिका पीने लगी होगी। उसकी खास सहेली रमा के अनुसार राधिका जाने किस–किस घाट का पानी पीकर आई है। सबकी बातें उसको भीतर से खरोंच देती हैं। राधिका के अनुसार वह न वहां सुखी थी न यहाँ। उसके मन में एक विचित्र अनिश्चितता और सारहीनता की भावना छाई रहती है। अब वह अपने देश में स्वयं को अजनबी पा रही थी। यह उसका अपना देश था। पर कहां था ? राधिका को वैचारिक, भावनात्मक, परिवेशगत, यहां तक कि अपने निजी संबंधों में अलगाव की अनुभूति होती है। उसे लगता है उसका जीवन निरुद्देश्य यात्रा है एक लंबी अंधकार पूर्ण सुरंग... जैसे उसके भीतर से भावनाएं ही समाप्त हो जा रही हैं। वह कहती है मुझे सब कुछ परेशान करता है– मेरा परिवार, मेरा परिवेश, मेरे जीवन की अर्थहीनता। प्रोफेसर निर्मला जैन के अनुसार 'राधिका की सारी जद्दोजहद अकेलेपन से मुक्ति पाने की है।

स्वदेश में उसके जीवन की विडंबना यह है कि संबंधी, पिता, परिवार वापसी के बाद उसके भीतर की रिक्तता को भर नहीं पाते।'[15]

दो दिन बाद राधिका घर वापस आकर खड़ी है। घर का परिदृश्य उसे भीतर तक आहत कर रहा है। घर की क्यारियां खाली पड़ी है। मेहंदी की बाढ़ काफी छिन्न हो गई है और बोगनवेलिया की रंगारंग लतरों को शायद भैंस–बकरियां खा गई हैं। बीते समय का बोध तेज बहते पानी की तरह उसे कंपा रहा है। पापा से क्षमा याचना के लिए उसे शब्द नहीं मिल रहे हैं। पापा के स्वर में दूरी और औपचारिकता है, जिससे राधिका के पूरे शरीर में हताश कंपन दौड़ जाता है। पिता की सूखी आत्मीयता से सम्बन्धों में संवाद की स्थिति समाप्त प्रायः है। मौन और पसरते सन्नाटे के मध्य बस कुछ आंगिक क्रियाएं हैं। राधिका के मन की उथल–पुथल के बीच "वह निर्विकार से बैठे रहे। कभी–कभी दाहिना पंजा फैलाकर उंगलियों के नाखून देखने लगते। दोनों के बीच जो सन्नाटा छा गया था उससे राधिका के अंदर रुलाई घुटने लगी है जिसे रोकने के प्रयत्न में भींचे हुए जबड़े दुखने शुरू हो गए हैं।"[16] पिता और विद्या के साथ रहने का मन बनाकर आई राधिका स्वयं अपनी इच्छा व्यक्त नहीं कर पाती लेकिन उसे पिता से उम्मीद है, "उसके जाने की बात सुनकर शायद रुकने को कहे। शायद यह कहे कि राधिका उन्हीं के पास रहे और उनकी मदद करे। उसने यह भी सोच लिया कि यहां अकेले रहना उसे प्रीतिकर ही लगेगा पर पापा ने कहा जैसा तुम ठीक समझो। अब तो तुम समझदार हो गई हो और कुर्सी खिसका कर उठ गए"[17] पापा को राधिका के जीवन से कोई कन्सर्न नहीं। उनकी इच्छा के विरुद्ध ,समाज के नीति–नियमों को ठुकराकर, घर की दहलीज लांघ कर एक विदेशी के साथ चली जो गई थी। चाहे भारत कितना ही उन्नत क्यों न हो गया हो, सामाजिक परिवेश अभी उतना नहीं बदला, बदलने में अभी अर्द्धशती तो बीतेगी ही, राधिका के पीठ–पीछे खुस–पुस तो होती ही रहेगी... पिता के स्वर का 'समझदार' शब्द अर्थ की कई परतें व्यंजित करता है और राधिका को जता देता है कि स्वतंत्र, उच्छृंखल, अपयश को आमंत्रित करने वाली राधिका के लिए इस घर में कोई स्थान नहीं हो सकता। विवशतः राधिका को दिल्ली लौटना पड़ता है। "भारत और परिवार का जो लगाव उसे खींच लाया था, एक सप्ताह के अंदर ही मुख में एक कड़वा–कड़वा–सा स्वाद छोड़ गया था।"[18]

राधिका ने डैन से अलग होने के बाद यह निश्चित किया था कि वह स्वयं के होने को प्रवाह में बहने नहीं देगी। अपने स्वत्व को समाप्त नहीं होने देगी। रेत बनकर बहने नहीं देगी। चाहे पुरुष का साथ मिले या न मिले। लेकिन यह विडंबना ही है कि अकेलापन झेलती राधिका अपने प्रति अक्षय और मनीष के आकर्षण को दरकिनार नहीं कर पाती। खाली वक्त बिताने के लिए उसके पास यही दो साथी हैं। लेकिन वह अपने जीवन में प्ले बॉय नहीं चाहती। "मैं संगी चाहती हूं जिसमें स्थिरता और औदार्य हो जो मुझे मेरे सारे अवगुणों सहित स्वीकार कर ले। मेरे अतीत को झेल ले... और डैन के बाद, राधिका किसी पुरुष के लिए श्रृंखला में एक कड़ी नहीं रह जाना चाहती थी।"[19] इस स्थिति का हल न उसे अक्षय के साहचर्य में दिखाई देता है न ही मनीष के प्रस्ताव में। अक्षय के मन में चलने वाले परंपरागत संस्कारों से राधिका अवगत है। मनीष पर वह पूर्णतया विश्वास नहीं कर सकती क्योंकि किसी एक के साथ बंध कर रहना उसकी प्रकृति में नहीं है। लगातार असमंजस की मानसिकता उसे निर्णय नहीं लेने देती। लेकिन उपन्यास के अंत में विद्या की मृत्यु के पश्चात अकेले हुए पिता जब उसके समक्ष साथ रहने का प्रस्ताव रखते हैं तो वह यकायक मनीष के साथ रहने का निर्णय ले लेती है। संभवतः पिता का ठंडा, रूखा, अपनत्वहीन, संवेदनहीन व्यवहार उसकी अन्तश्चेतना को पिता के साथ रहने की इजाजत नहीं देता। प्रोफेसर निर्मला जैन के अनुसार "उपन्यास के अंत में पिता के प्रस्ताव को अस्वीकार करने के प्रसंग में मनीष का उल्लेख महज पलायन मार्ग के अलावा कुछ नहीं... 'पचपन खंभे लाल दीवारें' से 'रुकोगी नहीं राधिका' तक की यह यात्रा परिवार की पारंपरिक संरचना और मूल्य–चेतना से मुक्ति के लिए छटपटाती सामाजिक स्त्री से सर्वतंत्र, स्वतंत्र, आत्मकेंद्रित 'व्यक्ति' स्त्री तक की यात्रा है। इतना तय है कि 'पचपन खंभे लाल दीवारें' और 'रुकोगी नहीं राधिका' के स्त्री पात्रों की मानसिकता में आधुनिक स्त्री की उत्तर आधुनिक परिणति स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।"[20] लेकिन मेरे विचार में यह राधिका का पलायन नहीं पुनर्विद्रोह है। पारिवारिक विघटन,

भाई–भाभी की स्वार्थपरता और पिता की उपेक्षा राधिका के इस निर्णय के जिम्मेदार हैं। भारतीय पिता पुत्री को संस्कारों से युक्त देखना चाहते हैं तो उस कर्तव्य का निर्वहण उनके लिए भी अपेक्षित है। पुत्री के लिए पिता का स्वार्थी, स्नेहहीन रूप अस्वीकार्य है, जो बेटी के दुख में साथ खड़ा न हो सके। ऐसा सम्बन्ध अर्थहीन है, लेकिन यह तय है कि "पहली बार शायद नारी की अस्मिता–संहार करने वाली भारतीय विचार पद्धति पर मुखर होकर इस उपन्यास ने प्रश्नचिह्न खड़ा किया।"[21]

सन्दर्भ–सूची :–

1. संचयिता– प्रोफेसर निर्मला जैन–वाणी प्रकाशन, 2013 – पृ –180।
2. रुकोगी नहीं राधिका –उषा प्रियंवदा –हिन्द पॉकेट बुक्स, 2019, पृ– 15।
3. वही– पृ– 44।
4. वही–पृ –42।
5. वही –पृ –49।
6. वही–पृ–63।
7. वही – पृ 31
8. वही – पृ 33।
9. वही –पृ –34।
10. वही – पृ –15।
11. वही –पृ –13।
12. वही –पृ –10।
13. वही – पृ –5।
14. वही –पृ – 34।
15. कथा–समय में तीन हमसफर– प्रोफेसर निर्मला जैन –राजकमल प्रकाशन, 2013, पृ –142।
16. वही –पृ –51 –52।
17. वही –पृ –54।
18. वही –पृ –57।
19. वही –पृ 78।
20. कथा–समय में तीन हमसफर– प्रोफेसर निर्मला जैन–राजकमल प्रकाशन, पृ. 143–144।
21. कुछ जीवंत कुछ ज्वलंत–कात्यायिनी, परिकल्पना प्रकाशन –पृ 164।

कालिदास विरचित त्रोटक विक्रमोर्वशीय में शृंगार-रस

डॉ. विक्रम*

संस्कृत साहित्य जगत् में आदिकाव्य रामायण लौकिक एवं वैदिक संस्कृत की सीमारेखा पर स्थित है। इसलिए लौकिक साहित्य में किसी तथ्य की पुष्टि हेतु रामायण का अन्वेषण करना आवश्यक है। रामायण में प्रायः सभी रसों की अनुभूति होती है, परन्तु उनका शास्त्रीय विवेचन वहाँ अप्राप्य है। बालकाण्ड में किये गये रस वर्णन को कतिपय विद्वानों ने प्रक्षिप्त माना है–

पाठ्ये गेये च मधुरं प्रमाणैस्त्रिभिरन्वितम्। जातिभिः सप्तभिर्बद्धम् तन्त्रीलय समन्वितम्।।
रसैः शृंगार करुणहास्यरोद्रभयानकैः। वीरादिभिश्च संयुक्तं काव्यमेतदगायताम्।।

सर्वप्रथम रसनिष्पत्ति पर विचार करने का श्रेय नाट्यशास्त्रकार भरतमुनि को जाता है। उन्होंने कहा है कि विभावानुभाव–व्यभिचारी भावों के एकत्रित होने से रस की निष्पत्ति होती है। जिस प्रकार गुडादि द्रव्यों नाना प्रकार के व्यञ्जनों एवं औषध से प्रपाणक जैसा स्वादिष्ट रस उत्पन्न होता है, उसी प्रकार आलम्बन विभाव, उद्दीपन विभाव, अनुभाव व सञ्चारी भावों के संयोग से सहृदयों के हृदय में स्थित स्थायी भाव रस के रूप में परिणत होता है।

नाट्यशास्त्रीय आचार्यों ने त्रोटक का मुख्य रस शृंगार माना है। शृंगार रस रति नामक स्थायी भाव से उत्पन्न होता है तथा उज्ज्वल वेष–भूषा वाला है। इसे सभी रसों का राजा कहा गया है तथा इस रस में रचित रचना उत्तम श्रेणी की मानी जाती है। शृंगार रस की दो अवस्थाएं सम्भोग शृंगार एवं विप्रलंभ शृंगार मानी गई हैं। आचार्य धनञ्जय ने इसके तीन भेद अयोग, विप्रयोग तथा संभोग माने हैं एवं आचार्य शारदातनय ने शृंगार रस के तीन प्रकार वाचिक, नैपथ्यज तथा क्रियात्मक माने हैं। शृंगार रस की प्रथमावस्था सम्भोग शृंगार में एक–दूसरे के अनुकूल पड़ने वाले और एक दूसरे को प्रेम करने वाले दो विलासियों का परस्पर स्पर्श एवं दर्शन आदि होता है। शृंगार रस की दूसरी अवस्था में परस्पर अनुरक्त होने पर भी परतन्त्रता आदि के कारण दोनों विलासियों का परस्पर मिलन न होना अथवा चित्त का विलग हो जाना अर्थात् विप्रलम्भ में प्रियासमागम नहीं होता है। नाट्यदर्पणकार ने विप्रलम्भ शृंगार के पांच भेद कहे हैं– मान, प्रवास, शाप, ईर्ष्या तथा वियोग। विप्रलम्भ शृंगार औत्सुक्य, चिन्ता, शंका एवं ग्लानि आदि भावों से उत्पन्न होता है व इसमें रति रूप की अपेक्षा बनी रहती है। करुण और विप्रलम्भ के भेद को स्पष्ट करते हुए भरतमुनि कहते हैं– **करुणस्तु शापक्लेशविनिपतितेष्टजनविभवनाशवधबन्धसमुत्थो निरपेक्षभावः। औत्सुक्यचिन्तासमुत्थः सापेक्षभावो विप्रलम्भकृतः।**

अर्थात् शाप के कारण अथवा इष्टजन से वियोग विभव के नाश, मृत्यु अथवा बन्धन के कारण करुण रस होता है। इसमें निरपेक्षभाव प्रधान होता है अर्थात् करुण में पूर्ण नैराश्य की अवस्था रहती है किन्तु विप्रलम्भ सापेक्ष होता है अर्थात् अभिलाषा विप्रलम्भ में निरन्तर बनी रहती है। अतः करुण और विप्रलम्भ दोनों में अन्तर है। भरत के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि विप्रलम्भ की निराशा में आशा का अस्तित्व बराबर बना रहता है और क्षणमात्र के लिए भी वह आशा वियोगी से पृथक् नहीं होती। इस तरह विप्रलम्भ करुण के बहुत निकट होते हुए भी उससे पृथक् है। भरत के पश्चात् रुद्रट ने विप्रलम्भ की चर्चा करते हुए बतलाया है कि वियुक्त पुरुष और नारी के रति व्यवहार को विप्रलम्भ शृंगार कहते हैं–

व्यवहारः पुंनार्योरन्योन्यं रक्तयो रतिप्रकृतिः।
शृंगार : स द्वेधा सम्भोगो विप्रलम्भश्च।।
सम्भोग–संगत्योर्वियुक्तयोर्यश्च विप्रलम्भोऽसौ।।

---

* संस्कृत व्याख्याता, गुरु विरजानन्द गुरुकुल महाविद्यालय, करतारपुर, जालन्धर, पञ्जाब (144801)

रुद्रट का अभिप्राय यह है कि पुरुष और नारी की पारस्परिक रति जब उनके एक–दूसरे से पृथक् रहने पर भी स्थित रहती है तो उसे विप्रलम्भ श्रृंगार कहते हैं। विप्रलम्भ के सम्बन्ध में भोज ने सरस्वतीकण्ठाभरण में बतलाया है कि रति नामक भाव जब प्रकर्ष को प्राप्त होकर भी अपने अभीष्ट तक नहीं पहुँचता तब विप्रलम्भ श्रृंगार होता है–

भावो यदा रतिर्नाम प्रकर्षमधिगच्छति।
नाधिगच्छति चाभीष्टं विप्रलम्भस्तदोच्यते।।

यहाँ अभीष्ट का अर्थ केवल प्रिय व्यक्ति ही नहीं अपितु अभीष्ट भाव भी है। श्रृंगार प्रकाश के चौबीसवें अध्याय में विप्रलम्भ शब्द की व्युत्पत्ति की व्याख्या करते हुए भोज ने बतलाया है कि विप्रलम्भ शब्द लभ् धातु में वि और प्र उपसर्ग जोड़ने से बना है। लभ् धातु का अर्थ है प्राप्ति, प्र का अर्थ है प्रकर्ष और वि का अर्थ है वञ्चना। जहाँ प्राप्ति की इच्छा प्रकर्षरूपेण होती है फिर भी वञ्चना अर्थात् अप्राप्ति होती है वहाँ विप्रलम्भ होता है। शारदातनय ने विप्रलम्भ का लक्षण न देकर उसके दो भेदों– अयोग और वियोग की चर्चा की है। अयोग का लक्षण इस प्रकार है–

परस्परं विभावाद्यर्यूनोरद्भुतरागयोः।
असङ्गतिरयोगोऽस्मिन्दशावस्था द्वयोरपि।।

जो कभी मिले नहीं हों ऐसे अद्भुत रागवाले युवक व युवती की परस्पर विभावादि से उत्पन्न असङ्गति अयोग है। यहाँ विभावादि के रहने पर भी मिलन नहीं होता। विरह में सम्भोगमग्न युवक और युवती का विप्रकर्ष होता है–

वियोगो विप्रकर्षः स्याद्यूनोः सम्भोगमग्नयोः।
वियोगोऽपि द्विधा मानप्रवासकृतभेदतः।।

इन दोनों भेदों से करुण का साम्य देखते हुए वे कहते हैं कि अयोग और वियोग में सामान्य विभावादि करुण के अनुरूप ही होते हैं फिर भी रति स्थायिभाव की अनुवृत्ति होने से ये श्रृंगार के ही भेद है–

साधारण्याद्विभावादेरत्रायोगवियोगयोः।
करुणस्यानुरूप्येऽपि रतिस्थाय्यनुवृत्तितः।।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के अनुसार अनुराग के अत्यन्त उत्कट होने पर भी जब प्रिय समागम नहीं हो तो इसे विप्रलम्भ कहते हैं।

विक्रमोर्वशीय त्रोटक का अङ्गी रस श्रृंगार है। यह संभोग तथा विप्रलम्भ दोनों अवस्थाओं में प्रयुक्त हुआ है। विक्रमोर्वशीय के प्रथमाङ्क से ही श्रृंगार रस दृष्टिगोचर होता है। प्रथमाङ्क में राजा पुरूरवा उर्वशी को देखकर मन ही मन सोचता है कि नारायणमुनि को मोहित करने के उद्योग में लगी हुई अप्सरायें उनकी उरू से उत्पन्न उर्वशी को देखकर ठीक ही लज्जा से भर गई थी क्योंकि यह किसी तपस्वी की सृष्टि नहीं हो सकती, इसकी सृष्टि में कान्ति प्रदान करने वाला चन्द्रमा या श्रृंगार के अवतार कामदेव ही स्रष्टा रहे होंगे या फिर यह कार्य ऋतुराज वसंत द्वारा किया होगा क्योंकि वेदाभ्यास से जड़ हृदयवाला एवं विलासकलाओं से उदासीन, वे प्राचीन ऋषि नारायण चित्त को हरण करने वाला ऐसा सुन्दर रूप भला कैसे बना सकते हैं। तदुपरान्त राजा पुरूरवा के हृदय में उर्वशी के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है। प्रथमाङ्क में राजा पुरूरवा उर्वशी को मुक्त करके हेमकूट पर्वत पर पहुंचते ही अपने मन में सोचता है–

यदिदं रथसंक्षोभादङ्गेनाङ्गं ममायतेक्षणया
स्पृष्टं सरोमकण्टकमङ्कुरितं मनसिजेनेव।।

रथ के आघात से इस विशालनेत्रों वाली ने मानों कामदेव द्वारा अंकुरित किए गए रोमराजि से युक्त मेरे शरीर को अपने अङ्गो से स्पर्श कर लिया है। यहां आलम्बन विभाव–नायिका (उर्वशी), उद्दीपन विभाव–रथजन्य आघात, अनुभाव–रोम से युक्त शरीर एवं व्यभिचारी भाव–हर्ष तथा स्थायी भाव रति है। इस प्रकार राजा पुरूरवा इस उबड़–खाबड़ स्थान पर उतरना सफल मानता है। चित्ररथ के साथ इन्द्रलोक जाते समय उर्वशी के कथनानुसार चित्रलेखा राजा को आमन्त्रित करती है तब राजा पुरूरवा कहता है– 'गम्यतां पुनदर्शनाय' तदुपरान्त सभी अप्सरायें एवं गन्धर्व आकाश में उड़ते हैं, किन्तु उर्वशी झाड़ियों में वैजयन्तिका

माला के फंस जाने के बहाने से घूमकर राजा को देखती हुई चित्रलेखा को माला छुड़ाने के लिए कहती है। यह देखकर राजा पूरूरवा अपने मन में सोचता है– हे लता तुमने इसके जाने में विघ्न पैदा करके हमारा उपकार ही किया है क्योंकि इस दीर्घनयनी उर्वशी को, जो आधा मुंह घुमाये हुए है, उसे फिर से देखने का अवसर मिल गया। यहां पर आलम्बन विभाव–नायिका, उद्दीपन विभाव लता द्वारा विघ्न करने पर दीर्घ नयनी उर्वशी का आधा मुंह घुमाना, अनुभाव–राजा को पुनः देखने का अवसर प्राप्त होना, तथा हर्ष व्याभिचारी भाव। इन सबसे अभिव्यक्त होकर रति नामक स्थायी भाव श्रृंगार रस में परिणित हो गया है। इसी प्रकार उर्वशी जब अभिसारिका बनकर प्रमदवन में पुरूरवा के पास मिलने को आती है तब वह अपराजिता नामक शिलाबन्धनीविद्या के प्रभाव से अदृश्य होकर अपने सम्बन्ध में राजा की सारी बातें सुनती है। वह अपने प्रति उसके प्रगाढ़ प्रेम को जानकर सन्तुष्ट होती है एवं भुर्जपत्र पर अपनी हार्दिक मनोव्यथा एवं कामपीड़ा गीतबद्ध लिखकर वहीं गिरा देती है। तब राजा पुरूरवा ने कहा –

तुल्यानुरागपिशुनं ललितार्थबन्धं पत्रे निवेशितमुदाहरणं प्रियायाः।
उत्पक्ष्मणा मम सखे मदिरेक्षणायाः तस्याः समागतमिवाननमाननेन।।

समान प्रणय की सूचना देने वाली, मनोहर अर्थ से युक्त प्रियतमा की वचनावली इस पत्र में अंकित है, मानो हमारा मुख उठी हुई बरौनियों से युक्त उस नशीली दृष्टिवाली के मुख से मिल गया हो। यहाँ नायिका उर्वशी आलम्बन विभाव, प्रियार्थ से गुम्फित वचन वाला पत्र (भुर्जपत्र) उद्दीपन भाव, मुख का उठी हुई बिरौनियों से युक्त होना अनुभाव, तथा हर्ष आवेश संचारी भाव है एवं रति स्थायी भाव है। अतः यहां श्रृंगार रस की प्रतीति होती है। इसी प्रकार तृतीयाङ्क में उर्वशी द्वारा लक्ष्मीस्वयंवर नाटक में पुरुषोत्तम की जगह पुरूरवा कहने से भरतमुनि द्वारा अभिशिप्त होकर उर्वशी स्वर्गच्युत होती है। तब वह वहां से आकर राजा पुरूरवा के निवास स्थान पर रहते हुए मनोविनोद हेतु राजा पुरूरवा की आंखें बन्द कर देती है। तब राजा उर्वशी के हाथ पकड़कर कहता है–

पादास्तएव शशिनः सुखयन्ति गात्रं बाणास्त एव मदनस्य मनोऽनुकूलाः
संरम्भरूक्षमिव सुन्दरि। यद् यदासीत् त्वत्सङ्गमेन मम तत् तदिवानुनीतम्।।

आज वही चन्द्रकिरणें मेरे शरीर को आनन्दित कर रही है, वे ही कामबाण मेरे अनुकूल सिद्ध हो रहे हैं। प्रिये तुम्हारे वियोगकाल में जो मेरे प्रतिकूल थे, वे सभी अनुनीत से हो रहे हैं। यहां पर नायिका–आलम्बन विभाव, चन्द्रकिरणें–उद्दीपन विभाव, शरीर का आनन्दित होना अनुभाव, हर्ष, धृति आदि व्यभिचारी भाव तथा रति स्थायी भाव है। अतः यहाँ श्रृंगार रस की प्रतीति होती है। इसके बाद सांयकालिक चन्द्रमा का उपभोग कर राजा उर्वशी के साथ निवासगृह में जाता है। पुनः वे दोनों संभोग योग्य स्थान गंधमादन पर्वत में जाते हैं। वहां पर उर्वशी कार्तिकेय के शापवश लता बन जाती है। पुनः सङ्गमनीय मणि के माध्यम से राजा के स्पर्श से ही लता उर्वशी रूप में प्रकट हो जाती है। राजा पुरूरवा आंखें बन्द किये ही स्पर्श सुख का अनुभव करता हुआ कहता है 'ओह ! मुझे मालूम पड़ता है कि उर्वशी के शरीर का सम्पर्क हो गया है, मुझे बहुत शान्ति मिल रही है। रस की दूसरी अवस्था विप्रलम्भ श्रृंगार है। इसके बिना सम्भोग श्रृंगार की पुष्टि नहीं होती। महाकवि कालिदास ने विक्रमोर्वशीय में विप्रलम्भ श्रृंगार रस का भी सुन्दर परिपाक किया है। विक्रमोर्वशीय में इन्द्र के पास उर्वशी के जाने पर पुरूरवा की विकल दशा का वर्णन किया है। इसमें काम की सारी अवस्थाओं का सम्यक प्रतिपादन हुआ है। अभिनय के लिये स्वर्ग जाते समय उर्वशी राजा से अनुमति लेकर दुःख प्रकट करती हुई जाती है। पुरूरवा उर्वशी के जाने पर कहता है कि अब आंखें व्यर्थ हैं।

द्वितीयांङ्क में कामपीड़ित राजा पुरूरवा विदूषक से कहता है, उर्वशी के मिलन हेतु कोई उपाय सोचो तो विदूषक उत्तर देता है आप स्वप्न में मिलन कराने वाली निद्रा देवी का सेवन कीजिए। तब राजा पुनः कहता है–

हृदयमिषुभिः कामस्यान्तः सशल्यमिदं सदा
कथमुपलभे निद्रां स्वपने समागमकारिणीम्।
न च सुवदनामालेख्येऽपि प्रियामसमाप्य तां

मम नयनोरुद्वाष्यत्वं सखे न भविष्यति।।

यह हृदय काम के वाणों द्वारा भीतर ही भीतर घायल कर दिया गया है, अतएव स्वप्न में मिलन कराने वाली नींद कैसे आएगी ? उसी प्रकार चित्राङ्कन में उस सुमुखी प्रियतमा का चित्र पूरा बनाते ही, मेरे नेत्रों में आंसू नहीं भर आएंगे। यहां पर राजा पुरूरवा द्वारा उर्वशी के मिलन हेतु उपाय करने पर चिन्ता नामक कामावस्था से विप्रलम्भ शृंगार की पुष्टि होती है। पुनः द्वितीयाङ्क में जब राजा पुरूरवा को मिलन का कोई उपाय न दिखाई देता है तब राजा पुरूरवा श्वास लेकर विदूषक से कहते हैं–

नितान्तकठिनां रुजं मम न वेद सा मानसी
प्रभावविदितानुरागमवमन्यते वापि माम्।
अलब्धफलनीरसं मम विधाय तस्मिञ्जने
समागम–मनोरथं भवतु पञ्चबाणः कृती।।

अत्यन्त कष्टदायक मेरी मानसिक पीड़ा को वह उर्वशी नहीं समझती या अलौकिक शक्ति के द्वारा जानकर भी मेरा अपमान कर रही है। सफलता को प्राप्त न होने वाली रसविहीन उस जन से समागम रूप इस मेरी मनोकामना की सृष्टि कर कामदेव भी कृतार्थ हो जायेगा। यहाँ राजा पुरूरवा उर्वशी से नितान्त प्रेम होने पर भी उसके प्रति अपनी विरूद्ध मनोव्यथा वर्णित कर रहे हैं। अतः यहां पर राजा द्वारा चित के बहकने से उत्पन्न अटपटी बातों से प्रलाप नामक कामावस्था से विप्रलम्भ शृंगार की पुष्टि होती है। इसी प्रकार तृतीयाङ्क में राजा पुरूरवा कामपीड़ित हुई उर्वशी की पूर्व चष्टाओं को याद करता हुआ कहता है कि– रथ के हिलने–डुलने से हमारे कन्धे से उसका कन्धा सट गया अतः हमारे अंगों में सिर्फ कन्धा ही कृति है, शेष अंग तो पृथिवी के भारभूत हैं। यहाँ पर राजा पुरूरवा की कामपीड़ित अवस्था से विप्रलम्भ शृंगार रस की पुष्टि होती है। चतुर्थ अंक में शापज विप्रलम्भ का उदाहरण प्राप्त होता है। राजा पुरूरवा जब उदयवती को बहुत देर तक निहारता है तब उसे देखकर उर्वशी क्रुद्ध हो उठती हैं। बहुत मनाने पर भी नहीं मानती और कुमारवन में प्रवेश करती है। वहां प्रवेश करते ही शापवश तथा देवता के नियम भूल जाने के कारण लता रूप में परिणत हो जाती है। अतः यहां शापज विप्रलम्भ है क्योंकि शापज विप्रलम्भ शृंगार में समीपस्थ रहने वाले को अन्य रूप प्राप्त होता है। इस प्रकार से महाकवि कालिदास ने पुरूरवा की कामदशा का हृदयावर्जक चित्र उपस्थित कर विक्रमोर्वशीय में शृंगार रस के दोनों भेदों की अनुपम सृष्टि की है।

★

'झूठा सच' उपन्यास में विभाजन की विभीषिका

डॉ. शालिनी माहेश्वरी*

जून के पहले सप्ताह में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की स्थापना के लिए बंगाल और पंजाब को हिंदू–बहुल और मुस्लिम–बहुल भागों में बाँट देने की शर्त स्वीकार कर ली। इस प्रकार समझौते ने और भी विकट संघर्ष को जन्म दे दिया। साधारणतः पश्चिमी पंजाब के मुस्लिम–बहुल और पूर्वी पंजाब के हिंदू–बहुल होने पर भी पश्चिमी पंजाब में लायलपुर, मिंटगुमरी, शेखूपुरा के नहरी उपनिवेशों में सिक्ख किसानों की बहुसंख्या थी और पूर्वी पंजाब के जालंधर, लुधियाना, अमृतसर आदि नगरों में मजदूरों और कारीगरों के मुसलमान होने के कारण, मुसलमानों की संख्या अधिक थी। मुस्लिम लीग लाहौर से पूर्व में बहुत दूर तक का भाग पाकिस्तान में चाहती थी और कांग्रेस अथवा हिंदू आधे पंजाब में बहुत दूर पश्चिम की ओर हिन्दुस्तान की सीमा बनाना चाहते थे। लाहौर के बीचों–बीच होने के कारण उस पर दोनों का दावा था। सरकार, मुस्लिम लीग और कांग्रेस ने निश्चय किया कि पंजाब असेम्बली के भिन्न–भिन्न चुनाव क्षेत्रों के हिन्दू–सिक्ख और मुस्लिम सदस्य अलग–अलग बैठकर निर्णय लें कि उनके क्षेत्र की जनता हिंदुस्तान के साथ रहेगी या पाकिस्तान के साथ। सरकार ने इसके लिए 20 जून की तारीख निश्चित कर दी थी। अंतिम निर्णय में लाहौर पाकिस्तान में चला गया और वहाँ से हिन्दू जनता को भारत भेज दिया था 14 अगस्त को लार्ड माउंटबेटन कराँची जाकर दस बजे पाकिस्तान सरकार को शासन–सत्ता सौंप देंगे। पाकिस्तान के गर्वनर जनरल कायदे आज़म जिन्ना हो जायेंगे। दिल्ली में रात के बारह बजने पर डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में भारत की कांस्टीच्यूएंट असेम्बली शासन–सत्ता सँभाल लेगी। 14 अगस्त बहुत सवेरे ही लोग दुकानें और मकान सजाते जा रहे थे। आते–जाते लोगों के हाथों में केसरिया–सफेद–हरे रंग के तिरंगे, बीच में चक्र बने झंडे नजर आ रहे थे। सभी लोग उस दिन आधी रात के समय या कुछ पहले ही अपने मकानों और दुकानों पर स्वतंत्र भारत की राष्ट्रीय पताकाएँ फहरा देना चाहते थे। कुछ लोगों ने तो राष्ट्रीय पताकाएँ फहरा भी दी थीं।[1] देश की अखंडता के खंडित होने की पीड़ा सीमावर्ती नगरों में होने वाले नरमेघ के कारण और भी बढ़ गई। हिंसा के स्थान पर अहिंसा, प्रेम के स्थान पर घृणा अर्थात् जिन मूल्यों के साथ आजादी की लड़ाई लड़ी गई वह सारी आस्थायें खंडित हो गईं। इस आजादी की नींव में दो जातियों की पारस्परिक घृणा और द्वेष की दुर्भावनायें थीं। देश का प्रबुद्ध वर्ग जानता था इसके परिणाम अच्छे नहीं होंगे। नफ़रत की बुनियाद पर खड़ी इस आजादी के दुष्परिणाम ये हिंसा, आगजनी, लूटमार, औरतों के साथ बद्सलूकी, लाखों इंसानों का कत्ल। इतने भीषण रक्तपात के उदाहरण भारतीय इतिहास में नहीं हैं। "उसने अपनी आँखों से देखा था गाफिले में जीवित मुसलमान का मनुष्यत्व भी समाप्त हो गया था। वे मुसलमान जो कभी धरती के निवासी थे धरती पर एक लकीर बना दी गई थी। लकीर के दूसरी तरफ यही अवस्था थी हिन्दुओं की भी। हिन्दु–मुसलमान जो वंश परम्परा से एक जाति के थे।"[2]

भीषण मारकाट :– विभाजन से दोनों देश आजाद हो गये परन्तु अंधी सांप्रदायिकता में कैद ही रहे "उसके मुल्क आजाद हो रहे थे। साथ ही उसके अंदरवाली हैवानियत भी आजाद हो रही थी।"[3] हिन्दी उपन्यासों में विभाजन की घोषणा के पूर्व एवं पश्चात् होने वाली भीषण मारकाट का लोमहर्षक चित्रण हुआ है। यशपाल तो दृष्ट एवं भोक्ता दोनों रहे हैं उनकी कृति में उसका अत्यन्त प्रामाणिक चित्रण हुआ है। विभाजन पश्चात् होने वाली भयंकर मारकाट ने मानव का मानव पर से सहज विश्वास समाप्त कर दिया था। उस समय समस्त काली शक्तियाँ मानवता को पराजित करने में लग गई थीं एक ओर जो दशा हिन्दुओं की थी तो दूसरी ओर प्रतिकार की अग्नि में जलते हिन्दुओं के हाथों मुसलमानों की थी। सांप्रदायिक आत्मघाती उन्माद

*** गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन (मथुरा)।**

के उस दौर में अराजकता, अमानुषिकता और पाशविक बर्बरता का ही बोलबाला था। "न्याय, अधिकार और औचित्य का कोई प्रश्न नहीं था केवल बल का प्रश्न था।"[4] व्यक्ति–व्यक्ति न रहकर कौन हो गया था और रस संकीर्ण मानसिकता का परिणाम निरीह इंसानों को भोगना पड़ रहा था। "सड़क के दोनों ओर टूटी हुई बैलगाड़ियाँ, जली हुई बसें और ट्रक, टूटे हुए बेबस ताँगे, टमटम, लाशों के ढेर या एक दो लाशें मारे मनुष्य के छिन्न–भिन्न अंग।"[5] अराजकता की इस स्थिति में शासन प्रायः समाप्त हो चुका था। झूठा सच का एक भुक्तभोगी पात्र आपबीती सुनाता है– "10 अगस्त की सुबह सब हिन्दुओं को एकदम मकान खाली कर देने का हुक्म दे दिया। कोई सामान, जेवर, कपड़ा कुछ भी नहीं उठाने दिया।"[6]

सांप्रदायिक संस्थाएँ एवं उनकी भूमिका :– विभाजन के पूर्व एवं पश्चात् अनेक सांप्रदायिक संस्थाओं का, संगठनों का भी जन्म हो गया था। इनमें महासभा एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ प्रमुख हैं। जिनका विकास मुस्लिम लीग की कट्टर साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों के समानांतर हिन्दू धर्म की रक्षक संस्थाओं के रूप में हुआ। यह सही है पंजाब भिन्न–भिन्न नगरों में इनके स्वयं सेवकों ने पीड़ित हिन्दू परिवारों की आततातियों से रक्षा कर उन्हें सुरक्षित बचाने का सराहनीय कार्य किया था। जबकि पुलिस भी गुंडों का साथ दे रही थी किन्तु इन संस्थाओं का घोर हिन्दुत्ववादी दृष्टिकोण तत्कालीन स्थितियों को ओर भी विस्फोटक बना रहा था। नेताओं की आक्रामक वाणी सुन–सुनकर जनता के मन में तूफान लहरा उठता था। सूद जी के शरीर पर दिनभर धूप में घूमने की मजबूरी से घाम निकल आई थी। ठंडी हवा का स्पर्श घाम को शांति दे रहा था। वे अँधेरे में अपने कंधों और जाँघों पर घाम की ओर पुराने एक्जीमा को सहलाते हुए पुरी से गंभीर बात करने लगे– "पंजाब में कांग्रेस मिनिस्ट्री बनाने का अवसर आया है तो यह लोग फिर सब कुछ अपने गुट्ट के हाथ में समेट लेना चाहते हैं। हाई कमाण्ड ने तो क्या नाम सब कुछ दो आदमियों के हाथ में दे दिया है। यह लोग क्या नाम सब जिम्मेदारी तो हमारे पूर्वी जिलों से चुने गये मेम्बरों पर डाल देना चाहते हैं और पावर सब अपने हाथ में ले ली है। हम भी देख लेंगे, कैसे गवर्नमेंट चला लेते हैं। यहाँ की हालत हम जानते हैं कि क्या नाम यह बाहर से आये हुए लोग.... ।"

सूद जी अपने प्रति अन्याय अनुभव कर उत्तेजना से बोले– "जानते हो...डॉक्टर तो पुराना गुट्टबाज है। क्या नाम अपने आपको लाला लाजपत राय का वारिस समझ बैठा है। तुम्हें याद है सन् 45 दिसम्बर में तुम मुझे उसके यहाँ मिले थे। मैनें तभी तुम्हें सब बातें बता दी थीं। अब तो क्या नाम अपने आपको मालिक समझ बैठा है।"

सूद जी की निःस्वार्थ सेवा और प्रभाव का ही परिणाम था कि सन् 1946 में, जब पंजाब में कांग्रेस के विरूद्ध अंग्रेज सरकार का प्रबल आतंक था, जालंधर क्षेत्र से चुनाव में पंजाब असेम्बली के हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सदस्य कांग्रेसी चुने गये थे। हिन्दू क्षेत्र से स्वयं सूद जी निर्वाचित हुए थे और मुस्लिम क्षेत्र से भी उनकी सहायता से कांग्रेस का उम्मीदवार। जालंधर में विभाजन के समय की विकट स्थिति को कांग्रेस की ओर से सूद जी संभाल रहे थे। शरणार्थियों के लिए कैम्पों और राशन बाँटने की व्यवस्था का बोझ उन्हीं के कंधों पर था। सरकारी अफसर प्रायः सभी बातों में उनसे परामर्श ले रहे थे। पूर्वी पंजाब में नया मंत्रिमण्डल बनाने का प्रश्न था। मंत्रियों की नियुक्ति में अनेक प्रभावों का समन्वय आवश्यक था– कांग्रेस के पुराने प्रतिष्ठित नेताओं की स्थिति और अधिकार, कांग्रेस हाई कमांड की सम्पत्ति, स्थानीय कांग्रेस के प्रभाव। सूद जी इस विषय में बहुत चिन्तित और चौकस रहते। हाई कमाण्ड ने पंजाब की शासन व्यवस्था कायम करने का काम 15 अगस्त से पूर्व ही डॉक्टर साहब और एक सिक्ख नेता को सौंप दिया था। यह निश्चय था कि मुख्यमंत्री डॉक्टर साहब ही होंगे। सूद जी स्वयं डॉक्टर साहब के सम्मुख कोई प्रस्ताव नहीं रखना चाहते थे परन्तु कांग्रेस के क्षेत्र और असेम्बली के मेम्बरों में भी सूद जी का दल, सिद्धान्त और व्यावहारिक नीति दोनों के ही आधार पर मजबूत था। उनकी उपेक्षा करना कठिन था। इस संघर्ष में सूद जी कभी दिन भर और रात भर भी घर से बाहर घूमते रह जाते थे।

दो दिन बाद एक स्टेशन वैगन अमृतसर भेजा गया, पुरी को उसमें जगह मिल गई। गाड़ी सरकारी काम से अमृतसर जा रही थी। गाड़ी पर अशोक चक्र की छाप का राष्ट्रीय तिरंगा फहरा रहा था।

गाड़ी में सशक्त पुलिस के दो आदमी थे। गाड़ी के लिए मोटर की साधारण चाल से चल सकना सम्भव ही न था। सड़क के दोनों ओर टूटी हुई बैल–गाड़ियाँ, जली हुई बसें और ट्रक, टूटे हुए बक्से, टूटे हुए टाँगे, टमटम, लाशों के ढेर या एक एक–दो लाशें और मनुष्य शरीर के छिन्न–भिन्न अंग, जहाँ–तहाँ दिखाई दे जाते थे। पैदल काफिले सड़क के नीचे कच्ची धरती पर चल रहे थे। काफिले में कुछ लोग, अपने पीछे–पीछे चर्म से ढँके, कंकाल–मात्र रह गये, गर्दन लटकाये पशुओं को भी खींचे लिये जा रहे थे। अब पुरी सड़क के दोनों ओर बिखरी लाशें, मुस्लिम स्त्रियों की नंगी अपमानित लाशें, मुसलमानों के कटे हुए अंग देख रहा था। उसने अपनी आँखों से देखा था– काफिले में जाते जीवित मुसलमानों का मनुष्यत्व भी समाप्त हो गया था। वे मुसलमान जो उसी भूमि के स्वाभाविक निवासी थे। धरती पर एक लकीर बना दी गई थी। लकीर की दूसरी तरफ वही अवस्था हिन्दुओं की थी। हिन्दू और मुसलमान, जो वंश–परम्परा से एक जाति थे। पुरी सोचकर सिहर उठता था। जैसी अवस्था वह अपने सामने हजारों–लाखों की देख रहा था, उसके परिवार की भी होगी....।[7] वहीं दूसरी तरफ कैंप से लौटी महिलाओं को उनके घरवालों ने अपनाने से मना कर दिया तो उसमें से बंती ने आत्महत्या कर ली।

नारी दुर्दशा :– विभाजन का सबसे करुण पहलू यह है कि नारी दोनों ही ओर पुरुष बर्बरता का शिकार हुई विभाजन की विभीषिका के इस करुण पहलू के संदर्भ में व्यापक स्तर पर घटित बलात्कार, अपहरण एवं नारी निर्वसन की जुगप्साकारी शर्मनाक घटनाओं का, उनसे उत्पन्न करुणागत युगीन उपन्यासों में बड़ा भयानक चित्रण हुआ है। 'झूठा–सच' में यह पहलू बड़ी शिद्दत के साथ उद्घाटित हुआ है। तारा, अमरो, सतवंत, विशनी, दुर्गा, वंती आदि नारियाँ बड़ी ही अमानवीय यातनाओं से गुजरी। उपन्यास के प्रथम खंड 'वतन और देश' के अंतिम पृष्ठों में इनकी दुर्दशा का वर्णन पराकाष्ठा तक पहुँच गया है। "सुहागरात के वीभत्स अनुभवों के बाद से तारा की नींद विक्षिप्त रहती थी। हाफ़िज जी के यहाँ उसे विचित्र और भयंकर स्वप्न आते रहते थे। हाथ–पाँव से पकड़कर खींचा जाना, आत्मरक्षा के लिए हाथापाई करते हुए चीखना और चिल्लाना। ऐसे स्वप्नों में चौंक कर उसकी नींद टूट भी जाती थी।

तारा ने आँखे खोली तो धुँधला–धुँधला सा और अपरिचित बड़ा–सा आँगन दिखाई दिया। मुख पर जलन और सिर में दर्द और चक्कर जान पड़े। उसे लगा कोई भयंकर स्वप्न देखकर नींद टूट गई है। पलकें खोलने पर तीन स्त्रियाँ आपस में लड़ती हुई दिखाई दीं। एक के शरीर पर कोई भी कपड़ा नहीं था, एक के शरीर पर केवल सलवार थी और तीसरी के शरीर पर केवल लंबा कुरता था। दो और भी स्त्रियाँ थीं। उनके शरीरों पर कमीजें और सलवारें थीं। दुपट्टा किसी के सिर पर नहीं था। तारा सुध सँभालने के लिए अपना सिर झटककर सोच रही थी, कहाँ हूँ, यह कैसा स्वप्न है?

बंती घुटने पर ठोढ़ी टिकाकर कहने लगी– "कहने से क्या होता है तुझे बताऊँ, हमने पड़ौस के गाँव डब्बोकी से हिन्दुओं के भागने की खबर सुनी तभी हम लोग भी जाने के लिए तैयार हो गये थे। हमारे पड़ौसी शेखों ने ही हमें रोक लिया था। हमें तो पड़ोसियों ने ही मरवाया। कछेरियाँ और डब्बोकी के पठानों ने हमारे चिम्मोकी के हिन्दुओं के पाँच घरों का आँगन घेर लिया। उन लोगों ने एतबार दिलाया, अपने हथियार खुद ही हमें सौंप दो सिर्फ जरूरत के कपड़े, बदन का जेवर और सफर का खर्च लेकर गाँव के नीचे पीपल वाले कुएँ के पास इकट्ठे हो जाओ। हम सबको सलामत स्टेशन पहुँचा देंगे। स्टेशन पर पहुँच गये तो पुलिस के मुसलमान सिपाहियों ने हमारे मर्दों से बन्दूकें रखवा ली और हमें लुटवा दिया।" वह ऊँचे स्वर में रो पड़ी। बंती ने आँखे पौंछी, "इतनी भीड़ ने हमें घेर लिया। बाकर ने हाथ का फर्सा उठाकर चाचा पालीशाह की गर्दन पर मारा। खून ही खून। पाली शाह के मुँह से आवाज भी नहीं निकली। सब लोग थर–थर काँपने लगे।

"बाकर मेरी छोटी ननद काशो को बाँह पकड़कर खींचने लगा। काशो मुझसे चिपट गई। मैनें उसे बाँह में ले लिया। लियाकत ने मुझे भी उसके साथ धक्का दे दिया। बोला तू भी चल। मेरा जग्गी गोद में था। बच्चा डरकर चिल्ला उठा। मेरी सास ने लड़के को गोद से खींच लिया।"

सतवंत ने आँखों से हाथ हटाकर टोक दिया– "मैं तो मिहिन्दर को गोद में लेकर बक्सों के पीछे छिप गई थी। जालिमों ने मुझे पकड़कर खींचा तो कसाईयों ने लड़के को छीनकर परे फेंक दिया।" सतवंत ने सिर पीट लिया और बच्चे की याद में ढाहें मार–मारकर रोने लगी।

हम लोग काँपती हुई, रोती हुई देखती रह गयीं। हमारे लोग आँख से परे हो गये। बाकर ने कहा – इन तीनों क्वारी मटियारों को अलग कर लो। कहने लगा, ये गनीमत का माल (धर्मयुद्ध की लूट) है। जो दीनदार बहादुर इनसे निकाह करना चाहे, ले जाये। उसने सत्तों की बाँह पकड़कर कहा – ये एक मेरी है। लड़की ने बाँह झटककर छुड़ा ली। साथ ही कुँआ था। वह दौड़कर कुएँ में कूद पड़ी। फूलां भी दौड़ी। अनवर ने लाठी मारकर लड़की को गिरा दिया। वे लोग चीखती–चिल्लाती फूलां और काशों को खींचकर ले चले तो मैनें हाथ जोड़कर बाकर से कहा, वीरा (भाई) यह तो तेरी बहिनें हैं।

"बाकर ने मुझे गाली दी....यह बड़ी मुकदम है। इसकी खबर लो। उसने मेरी छाती पर फर्से की मूठ का जोर से धक्का मारकर मुझे गिरा दिया। लियाकत मेरे बदन के कपड़े फाड़ने लगा तो मैनें बचने के लिए उसकी जुल्फें पकड़कर खींचीं। सब लोगों ने मुझ पकड़ लिया। जानती हो, बस चलते हाथ–पाँव चलाये जाने पर इतने मुस्टंडों के सामने मैं औरत जात अकेली क्या करती? जालिमों ने मेरे हाथ–पाँव बाँधकर कपड़े फाड़ दिए। क्या कहूँ, उसने सब लोगों के सामने लकड़ी और लाठियों से मेरी दुर्गति की। मैं बेहोश हो गई।" बंती गालों पर बहते आँसू हथेलियों से पौंछकर कहने लगी – मुझे आधी रात अँधेरे में होश आया तो हाथ–पाँव बँधे थे, कुएँ के पास पड़ी थी। पानी–2 चिल्लाती रही। रोयी, चिल्लायी, जापे–स्यापे में दिन रात का साथ था। रोटी–बेटी का नाता छोड़कर सब नाता, साथ का उठना बैठना था। जाने लोगों के दिल कैसे फिर गए? करीमो मुँह अंधेरे पानी लेने आयी। मैं पानी–2 चिल्लाती रही। वह चुपचाप घड़ा भरकर लौट आयी। उसके बाद बाकर की माँ आयी तो चुपके ये यह कुरता मेरे बदन पर डाल गई। अपने साथ ही घर से लोटे में पानी लेती आई। मेरा सिर उठाकर लोटे की टोंटी मेरे मुँह में लगा दी। कोई कह दे कि मेरा धर्म–ईमान गया। मैं तो कहती हूँ कि धर्म ईमान तो होशाहवास से होता है। बेचारी मेरे कान में कह गई, किसी से कहना मत। मेरे हाथ–पाँव दर्द से कटे जा रहे थे। मैं हाय–2 कर रही थी। पानी लेने और भी औरतें आयीं, मेरी तरफ किसी ने नहीं देखा। सबके दिल पत्थर हो गये थे। सूरज चढ़े पर यही तीखी मूँछों वाला आदमी आया जो तुझे उठाकर लाया था, तन्दूरी रोटियाँ भी दे जाता है। कल तो बेईमान कुछ भी नहीं दे गया। कल वह बूढ़ी कंजरी (वेश्या) भी नहीं आई। इसी मर्द ने मेरे हाथ–पाँव खोले थे। खून रूक जाने से हाथ–पाँव हिले ही नहीं। उस वक्त शरम क्या करती? इसने बाँह पकड़कर मुझे उठाने के लिए खींचा। खड़ी नहीं हो पा रही थी। उसने धमकाया कुरता पहन ले। जैसे–तैसे कुरता पहना। बल्कि उसी ने बाँहों में फँसा दिया। मुझसे चला नहीं गया तो मुझे कँधे पर उठाकर एक बम्बूकाट (इक्के) में डालकर यहाँ ले आया। तब से यहीं हूँ।" बंती ने अपना पेट दबाकर कहा, ऐसी चोटें आ गई हैं क्या कहूँ। अभी तक पाँव सीधे नहीं पड़ते।" फिर वह रोने लगी।

स्त्रियाँ पास–2 बैठ गई और सुनाई हुई बातों को फिर सुनाने लगीं। रात बढ़ जाने पर स्त्रियाँ इधर–उधर लुढ़ककर सो गईं। नींद खुलने पर कोई दो फिर बैठकर बतियाने लगतीं। पिछली रात तारा के अर्द्ध–मूर्च्छित अवस्था में होने के कारण जैसे–तैसे बीत गई थी पर यह रात अधिक कठिन मालूम पड़ रही थी। तारा कभी लेट जाती, कभी बैठकर सोचने लगती। उसे गत जीवन की बातें याद आने लगतीं। वह केवल कष्ट उठाने के लिए ही पैदा हुई थी। गरीब घर में पैदा ही क्यों हुई? गरीबी को पिछले जन्मों का कर्म–फल मानकर संतोष क्यों न कर सकी? गरीबी से मुक्ति की इच्छा क्यों हुई? अपनी इच्छा से ही विवाह करने का विचार क्यों आया? वह भी शीलो की तरह सुख–दुख मिलाकर जीवन नहीं बिता सकती थी? ससुराल की रात। नब्बू का अत्याचार। हाफिज जी का स्नेह भरा छल। मुसलमान बन जाने में ही क्या हरज था? हाफिज की बात अस्वीकार करके उसने क्या बचा लिया? उसके हिन्दुत्व ने उसे क्या दे दिया? उसकी क्या सहायता कर दी? बंती, सतवंती, दुर्गा अब भी हिन्दुत्व को लिए थीं। यह सब तो हुआ, अब क्या होगा..?

प्रत्येक दिन बीतने पर तारा को अनुभव होता था कि वह निराशा और अंधकूप में गहरी उतरती जा रही थी। सोचती, अगर वह अकेली होती तो कुछ न कुछ कर बैठती। उसे अन्य स्त्रियों की संगति असह्य जान पड़ने लगी थी। सोचती यह सब तो भगवान की कृपा से उद्धार की आशा किये बैठी रह सकती हैं, कभी उससे निराश न होंगी। इनके देखते दुर्गा चली गई। यह सोचती हैं, भगवान दुर्गा की नहीं, इनकी ही चिन्ता करेगा। मैं कैसे बैठी रहूँ? भगवान तो हमारी अपेक्षा हमें यहाँ कैद करने वाले जालिम गफूर और उस बूढ़ी कंजरी के ही पक्ष में जान पड़ता है।

तारा को जान पड़ा था कि भूख और कैद से वह पशु बनती जा रही थी। उसका आत्मसम्मान और व्यक्तित्व समाप्त होता जा रहा था। निराशा में सोचने लगती, इस कैद से छूटने के लिए इन मूर्ख स्त्रियों से पिंड छुड़ाने के लिए बूढ़ी कंजरी (वेश्या) की बात मानकर यहाँ से तो किसी तरह निकले। किसी प्रकार मर सकने का तो अवसर मिले। यह जीवन तो मृत्यु से भी बुरा है। सोचा, यदि आज भी बुढ़िया आकर स्नेह दिखाए तो हाँ कर दे।

भारतीय सरकार की प्रतिनिधि :– श्रीमती कौशल्या देवी, परिवारों से छीनकर पाकिस्तान में रोक ली गई हिन्दू स्त्रियों का उद्धार करने के लिए सुरक्षा के पूरे प्रबन्ध से शेखूपुरा गयी थीं। सबसे आगे जीप पर पाकिस्तानी पुलिस का सब–इंस्पेक्टर सशक्त पुलिस सिपाहियों के साथ था। दूसरी जीप में भारतीय सशक्त सैनिक थे। दो जीपों के पीछे एक छोटी बस उद्धार की हुई स्त्रियों के लिए थी। बस के पीछे रक्षा के लिए भारतीय सशक्त सैनिकों से भरी सैनिक गाड़ी थी। बस में ड्राईवर के साथ भी एक भारतीय सैनिक छोटी मशीनगन लिये बैठा था। बस में सबसे आगे कौशल्या देवी जुबेर के साथ बैठ गयीं। असद ने तारा को सबसे पीछे की सीट पर बुला लिया था, स्त्रियों को बैठाकर खाली स्थान में कराहती हुई लक्खी का स्ट्रेचर रख दिया गया था।

"हाय–हाय! आ गये! आ गये! आ गये!" अमरो, सतवंत और विशनी भय से चिल्ला उठी।

"चुप रहो! चुप रहो! डरो मत!" ड्राइवर और कौशल्या देवी ने स्त्रियों को डाँटकर आश्वासन दिया, "यह क्या मारेंगे, खुद मरे हुए हैं। देखती नहीं हो, कमर टूटे हुए कुत्तों की तरह कढ़िल रहे हैं।"

मोटरों के दोनों ओर लँगड़ाती–लड़खड़ाती भीड़ बढती आ रही थी। कतरा हुई और उलझी हुई दाढ़ियों, दबी हुई टोपियों, रस्सी की तरह लपेटी हुई मैली पगड़ियों में से झाँकते मुडें हुए सिर, काले, नीले, चीथड़े कपड़े, स्त्री–पुरुषों के चेहरे आँसुओं और पसीने से जमी मर्द से ढँके हुए, कमरें झुकी हुई, घिसटते–लँगड़ाते हुए कदम। भीड़ फटककर मोटरों के दाहिने–बाँये, दस–दस, पन्द्रह–पन्द्रह आदमियों की लहरों में आती जा रही थी। भीड़ के ऊपर मँडराते मक्खियों के बादल ने मोटर गाड़ियों पर आक्रमण कर दिया। इतनी मक्खियाँ कि मक्खियों को साँस के साथ नाक में घुसने से रोकने के लिए उन्हें दोनों हाथों से निरंतर हटाते रहना आवश्यक था। उबकाई पैदा करने वाली भयंकर दुर्गन्ध....मानो वे शरीर चलते–फिरते भी सड़ते–गलते नजर आ रहे थे। भीड़ के घिसटते कदमों से उड़ती धूल से साँस लेना और भी दुष्कर हो रहा था। "लो बहिनों पहुँच गये।" कौशल्या देवी ने सांत्वना की आह भर स्त्रियों को सम्बोधन किया, उतरो। तुम्हारा वतन तो छूटा पर अपने देश में, अपने लोगों में पहुँच गई। परमेश्वर को धन्यवाद दो। ड्राईवर अपने स्थान से उतरकर सामने खड़ा हो गया था। तारा गाड़ी से उतरी। ड्राईवर कह रहा था –

"वह काफिला कभी वतन छोड़कर अपने देश को जा रहा है। मनुखों के देश धर्मों के देश बन गये, रब्ब ने जिन्हें एक बनाया था, रब्ब के बंदो ने अपने बहम और जुल्म से उन्हें दो कर दिया।"[8]

विवश देशान्तरण :– विभाजन की विभीषका लाखों अभागे लोगों के विवश देशान्तरण की समस्या से जुड़कर और भी दारुण हो गई। पश्चिमी पंजाब एवं पूर्वी पंजाब से व्यापक स्तर पर आबादी का परिवर्तन हुआ। समुचित व्यवस्था के अभाव में स्थानान्तरण की समस्या अत्यन्त विकट हो गयी। स्थिति नेताओं और केन्द्रीय सरकार के आश्वासनों से ठीक विपरीत सिद्ध हो रही थी। दोनों ओर से जनसंहार हो रहा था तो दोनां ओर

से विवश निष्क्रमण भी। वतन से विवश जुदा किये गये, अपने परिवेश से कटे इन व्यक्तियों की अन्तर्वेदना और करुणा अकथनीय है– महान राष्ट्र भारत के विभाजन की यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है, अभागे देशवासियों की दारुण नियति है कि वे पलभर में अपनी ही जन्म–भूमि पर बेगाने हो गये। उनकी जन्मधात्री धरती उनके रक्त की प्यासी हो गई। विस्थापितों का विशाल जनसमूह "इधर आकर शरणार्थी हो गया और उधर वाले उधर जाकर महाजरीन बन गये।"[9] यह सामूहिक देशांतरण नर हत्या के परिणाम वाला था।" हिन्दुओं को मुसलमानों से और मुसलमानों को हिन्दू सिक्खों से लोगों को अपनी पुश्तैनी जगहों से अलग करना ऐसा है जैसे जिस्म से माँस को हड्डियों से अलग करना।"[10] निम्न पंक्तियों में बँटवारे की पीड़ा की चरम अभिव्यक्ति दिखाई देती हे – रब्ब ने जिन्हें एक बनाया था, रब्ब के बंदों ने अपने वहम और जुल्म से उसे दो कर दिया।"[11]

विभाजन परवर्ती स्थितियाँ और समस्याएँ :– विभाजन के समय घटित नृशंस हत्या, अमानुषिक एवं मानव विरोध कुकृत्यों की लोमहर्षक कहानियाँ, शरणार्थी के काफिलों के साथ स्वतंत्र भारत के नगरों में फैलकर वातावरण को प्रतिहिंसक बनाने में सहायक हुई। अकथनीय बर्बरता और क्रूरता के शिकार शरणार्थियों की प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी। देश में सांप्रदायिक दंगों का भीषण दौर प्रारम्भ हो गया था। शांति स्थापना के सरकारी–गैर सरकारी सभी प्रयत्न विफल हो रहे थे। 'झूठा सच' के अनुसार– "कांग्रेस सरकार ने पूरे नगर में बहुत बड़ा सैनिक नियंत्रण लागू कर दिया था। उपद्रव की आशंका होते ही उपद्रवियों को गोली चलाकर मारने का हुक्म दे दिया गया था। गढ़वाली और सिक्ख पलटनों को बदलकर दूर दक्षिण की पलटनें दिल्ली में तैनात कर दी गई थीं।" किन्तु रोष, प्रतिहिंसा, घृणा एवं प्रतिघृणा का ऐसा वातावरण व्याप्त हो रहा था जिसमें असामाजिक तत्व पूरी तरह सक्रिय हो गये थे। आतंकित मुस्लिम समाज भयाक्रांत हो देश छोड़ने को विवश हो गये थे। सरकार द्वारा सुरक्षा के बार–बार आश्वासन दिये जा रहे थे। मुसलमानों की सम्पत्ति पर दंगों के दौरान कब्जा कर लेने की बातों पर दमनात्मक कार्यवाहियाँ भी चल रही थीं। दमनात्मक कार्यवाहियों से जन विनाश का दौर तो समाप्त हो गया किन्तु विस्थापितों के हृदय के अन्दर ही अन्दर पीड़ा के कारण विस्फोटक भाव उबलते रहे। प्रतिदिन सीमापार से आते शरणार्थियों के कारण अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गईं। आवासीय संकट उत्पन्न हो गया। यू.पी. सरकार ने शरणार्थियों पर रोक लगा दी पर दिल्ली में उन पर कोई रोक नहीं थी। सरकार ने अनेक ऐसे अधिकारियों की नियुक्ति की जो शरणार्थियों के लिए आवास–राशन की व्यवस्था कर रहे थे। निम्न एवं मध्यवित्त लोगों को आवासीय सहायता के लिए नगर से मील भर के अंतर पर छोटे बंगलेनुमा मकानों की नई बस्ती 'माडल टाउन' का निर्माण आरम्भ करा दिया था।"[12] आवास के अतिरिक्त आजीविका की समस्या जोर पर थी। 'झूठा–सच' के अनुसार "दिल्ली में ऐसे नये–2 रोजगार दिखाई देने लगे थे जो पहले कभी सुने नहीं गये थे। जहाँ कहीं दस आदमियों के आने–जाने की संभावना थी एक दुकान बन गई थी।"[13] "रोजगार–आवास की समस्या कि साथ–साथ मँहगाई की समस्या अत्यन्त विकट रूप लेती जा रही थी। आम व्यवहार की चीजों की कीमतें बेहताशा बढ़ गई थीं। अराजकता और शिथिल शासन व्यवस्था के कारण विदेशी समय की धाँधली, मँहगाई और कुनबापरस्ती समाप्त न होकर बढ़ती जा रही थी।"[14]

वास्तव में विभाजन केवल राजनैतिक स्तर का ही विघटन नहीं था। सामाजिक एवं मानवीय स्तर पर भी इसके व्यापक प्रभाव पड़े। 'झूठा–सच' में, "विभाजन जैसी सर्वग्राही घटना को उसकी आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और वैयक्तिक समग्रता में साथ ही साथ उसकी गतिमानता में देखने का प्रयास किया गया है।"[15]

संदर्भ–सूची

1. यशपाल रचनावली – विप्लव कार्यालय की ओर से लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, नई दिल्ली, पटना, प्रथम संस्करण 2007, झूठा सच, वतन और देश पृ0 232, 304।
2. शन्नो देवी – झूठा सच, भाग–1, यशपाल।
3. बीज – अमृतराय इलाहाबाद,1967, पृ0 260।

4. झूठा सच – भाग–2, पृ0 20।
5. झूठा सच – भाग–2, पृ0 20।
6. झूठा सच – भाग–1, पृ0 429।
7. यशपाल रचनावली – विप्लव कार्यालय की ओर से लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, नई दिल्ली, पटना, प्रथम संस्करण 2007, झूठा सच, देश का भविष्य, पृ0 6,8,9,10,11।
8. यशपाल रचनावली – विप्लव कार्यालय की ओर से लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, नई दिल्ली, पटना, प्रथम संस्करण 2007, झूठा सच, वतन और देश, पृ0 381, 384, 385, 386, 387, 392, 393, 403, 405, 415।
9. यशपाल रचनावली – विप्लव कार्यालय की ओर से लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, नई दिल्ली, पटना, प्रथम संस्करण 2007, झूठा सच, वतन और देश, पृ0 275।
10. यशपाल रचनावली –विप्लव कार्यालय की ओर से लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, नई दिल्ली, पटना, प्रथम संस्करण 2007, झूठा सच, वतन और देश, पृ0 482।
11. यशपाल रचनावली –विप्लव कार्यालय की ओर से लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, नई दिल्ली, पटना, प्रथम संस्करण 2007, झूठा सच, देश का भविष्य, पृ0 75।
12. यशपाल रचनावली –विप्लव कार्यालय की ओर से लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, नई दिल्ली, पटना, प्रथम संस्करण 2007, झूठा सच, भाग–2, पृ0 386।
13. यशपाल रचनावली –विप्लव कार्यालय की ओर से लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, नई दिल्ली, पटना, प्रथम संस्करण 2007, झूठा सच, भाग–2, पृ0 155।
14. यशपाल रचनावली –विप्लव कार्यालय की ओर से लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, नई दिल्ली, पटना, प्रथम संस्करण 2007, झूठा सच, भाग–2, पृ0 226।
15. अधूरे साक्षात्कार – नेमिचन्द जैन, दिल्ली, पृ0 61

★

भारतेंदु हरिश्चन्द्र की आलोचनात्मक-दृष्टि

ऋतु*

हिन्दी आलोचना को हमेशा से रीतिकाल तक और कभी–कभी उससे भी पीछे खींचकर ले जाने का प्रयास किया जाता है। यह करने के पीछे एकमात्र विश्वास होता है कि परंपरा का बल हमेशा गरिमा और महत्व प्रदान करता है, यह बात अलग है कि परंपरा के नाम पर बैठाये गए ये संबंध–सूत्र अक्सर दुराग्रहपूर्ण होते हैं, लेकिन तब भी हम एक मोह से उनके साथ चिपके रहना चाहते हैं। आलोचना के संदर्भ में यह बात केवल रचनात्मक साहित्य हेतु ही उचित ठहरती है, साहित्य की जरूरतों से काटकर किसी स्वायत विचार के रूप में आलोचना को प्रतिष्ठित करने हेतु नहीं, क्योंकि जीवंत आलोचना साहित्य के हर मोड़ के साथ नए संदर्भों में ढलती और अपनी सार्थकता को सिद्ध करती है। 'आधुनिक काल की हिंदी आलोचना को रीतिकालीन लक्षण पदार्थों की परिपाटी विरासत में मिली परंतु शिक्षा उस परिपाटी को छोड़ गए आलोचना मार्ग की आवश्यकता का अनुभव आधुनिक युग ने किया उसका एक बहुत बड़ा कारण साहित्य के पाठक समुदाय का बदल जाना था।'[1]

भारतेंदु जी का हिंदी साहित्य में प्रादुर्भाव एक अविस्मरणीय घटना है उस काल में 1857 की क्रांति की ज्वाला की लपटें धू–धू करके भस्म हो चुकी थी तथा स्वतंत्रता की लड़ाई से अक्रांत होने के स्थान पर अंग्रेजी हुकूमत की जड़ें और अधिक धस चुकी थी। सामाजिक कुरीतियां देश को रसातल में पहुंचाने का काम कर रही थी नारियों की दशा अत्यंत दयनीय थी संपूर्ण समाज आर्थिक विपन्नता विदेशी शोषण सांस्कृतिक संक्रमण और शैक्षणिक पंगुता से ग्रस्त था। वहीं दूसरी तरफ नवजागरण की किरणें अपने आलोक से समाज सुधार का कार्य कर रही थी। ऐसे युग में भारतेंदु जी युग प्रवर्तक के रूप में सामने आते हैं। अपने साहित्य साधना में जनजीवन के उत्थान को अभीष्ट विषय के रूप में अपनाया तथा दूरदर्शिता का जो परिचय दिया वह अद्‌भुत है। भारतेंदु का व्यक्तित्व भारतीय पुनर्जागरण का साहित्यिक प्रतीक है और हिंदी साहित्य में आधुनिक युग के परिवर्तन का सूचक भी भारतेंदु को ही माना जाता है। 'उन्होंने हिंदी साहित्य को एक नए मार्ग पर खड़ा किया वह साहित्य के नए युग के प्रवर्तक हुए।[2]

भारतेंदु युग में आलोचना की जो प्रणाली थी उसमें सभी लेखक भारतीय सामाजिक स्थिति की भी आलोचना कर रहे थे। उनके जीवन दर्शन और विचार तदयुगीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, भाषिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि समग्र क्षेत्रों पर दृष्टिपात कर रहा था, जिसके प्रतिध्वनी उस युग के नाटकों निबंधों, कविताओं मुकरीयों, समीक्षा पत्रों आदि में सुनाई देती है।

गौरतलब है कि भारतेंदु पहले से चली आ रही काव्य परंपरा को नए संदर्भों और अर्थों से परिपूर्ण किया। इसके लिए उन्होंने सबसे पहले पद्य की भाषा का परित्याग कर गद्य की भाषा को रचना और आलोचना के लिए अपनाया। भाषा की इसी शक्ति की ओर संकेत करते हुए डॉ रामदरश मिश्र ने लिखा है कि 'भारतेंदु ने हिंदी की खड़ी बोली के प्राप्त हो जाने से तर्क खंडन मंडन और शास्त्रीय चिंतन के लिए अनुकूल माध्यम प्राप्त हो गया गद्य में हम अपने विचारों को चाहे जिस रूप में कह सकते हैं पद्य में यह सुविधा नहीं होती खड़ी बोली कि आविर्भाव के नाते ही भारतेंदु काल में अनेक पत्र पत्रिकाएं निकलने लगी अतः समीक्षा के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ।[3] जिस कालखंड को आचार्य शुक्ल ने गद्य काल की संज्ञा दी है वह काल में साहित्य की अन्य विधाओं के प्रवर्तन के साथ आधुनिक हिंदी साहित्य आलोचना का भी प्रवर्तन काल है। 'भारतेंदुकालीन साहित्य सांस्कृतिक जागरण का साहित्य है। इस युग में रचित गद्य साहित्य की प्रत्येक विधा नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना के समीक्षात्मक परिचय से विशेषतः इस सांस्कृतिक जागरण का स्वरूप ही स्पष्ट होता है।'[4]

*** शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।**

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस व्यक्ति की रचनाओं से हिंदी साहित्य में आधुनिक युग का उदय हुआ वह केवल साहित्यकार नहीं था, अपने आसपास के जीवन को देखने के लिए उसकी आंखें खुली हुई थी। भारतेंदू पुनर्जागरण के प्रतीक थे। जागरण का पहला लक्षण आंखों का खुलना है आंखें खोलकर जागृत व्यक्ति अपने आस–पास को देखता है, अपनी स्थिति का परिचय करता है। यानी यथार्थ बोध जागृत व्यक्ति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण है। यही यथार्थ बोध साहित्य की विशेषता है, जिसे हम आधुनिक कहते हैं। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी जी कहते हैं 'भारतेंदु के समय तक स्थिति में काफी परिवर्तन हो चुका था। और छंद एवं लक्षण निरूपण की जगह मानव संवेदना और अनुभूति की गहराई ने ले ली थी।[5] भारतेंदु साहित्य को सामाजिक उत्तरदायित्व की चेतना से युक्त किया ऐसा करने में वह समर्थ हो पाए क्योंकि वह सामाजिक समस्याओं के प्रति सचेत थे और उनके प्रति अपनी जिम्मेदारी महसूस करते थे इस शिव का साहित्य केवल मनोविनोद और विलास की सामग्री नहीं प्रस्तुत करता अपितु समाज का चित्रण करता है और इसके विकास की प्रेरणा देता है।

एक आलोचक के रूप में भारतेंदु जी की आलोचना दृष्टि नवजागरण से काफी प्रभावित थी। उन्होंने अपनी लेखनी तत्कालीन समाज की सुप्त मानसिकता को जगाने में लगाया। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, भाषिक, साहित्यिक सभी क्षेत्रों में उन्होंने अपने मौलिक दृष्टिकोण से सबको प्रभावित किया है। साथ ही अपनी दूरदर्शिता का परिचय देते हुए आलोचना के साहित्यिक और आधार के रूप में सामाजिक स्थिति को ग्रहण किया। भारतेंदु जी के 'नाटक' नामक निबंध से व्यवस्थित हिंदी आलोचना की शुरुआत होती है। नाटक की संस्कृत परंपरा के साथ पश्चिमी नाटकों की समझ का मेल करते हुए तत्कालीन नाटकों को वर्गीकृत, व्यवस्थित और व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है। विश्वनाथ त्रिपाठी इस संदर्भ में लिखते हैं ष्भारतेंदु के नाटक पर विचार करते समय उसकी प्रकृति, समसामयिक जन–रुचि एवं प्राचीन नाट्यशास्त्र की उपयोगिता पर विचार किया गया है। उन्होंने बदली जन रुचि के अनुसार नाट्य रचना में परिवर्तन करने पर विशेष बल दिया है। भारतेंदु के नाटक विषयक लेख में आलोचना के गुण मिल जाते हैं। ऐसी दशा में उन्हें आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रथम आलोचक कहना अनुचित न होगा।[6] भारतेंदु नाटकों के माध्यम से जहां एक ओर जनसाधारण की पीड़ा एवं शोषक चरित्र को उभार रहे थे वहीं दूसरी ओर लोक भाषा तथा लोक नाट्य परंपरा को भी विकसित कर रहे थे।

'वैदकी हिंसा हिंसा न भवति' मैं उन्होंने धार्मिक पाखंड एवं ढोंग का पर्दाफाश करते हुए धर्मांधता पर आलोचना की है। उनके अनुदित नाटक 'विद्यासुंदर' में स्त्री शिक्षा एवं स्त्री के गंधर्व विवाह को वैधता प्रदान की है। इसी प्रकार नील देवी गीति रूपक का आरंभ नाटककार दुर्गा वंदना से करते हैं। संपूर्ण नाटक नील देवी की वीरता एवं विवेक पर आधारित है। भारतेंदु भारतीय संस्कृति के मूल तत्व के समीक्षक हैं। उनका विश्वास है कि स्त्रियों की शिक्षा एवं आत्मनिर्भरता का मतलब लज्जा को त्यागना नहीं है। स्त्रियां कुल मर्यादा का ध्यान रखते हुए भी अपना विकास कर सकती हैं। भारत दुर्दशा नाटक राष्ट्रीय चेतना एवं नवजागरण की दृष्टि से पूरी तरह सफल नाटक है। इस नाटक में भारतेंदु की आलोचनात्मक दृष्टि में भारत के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक समस्याओं एवं देश की दुर्दशा के पीछे छुपी हुई मानसिकता एवं स्थितियों का हवाला अत्यंत रचनात्मक तरीके से दिया है। अपनी निबंध शैली, जीवनी, यात्रा वृतांत में भारतेंदु ने लोक में फैली सामाजिक धार्मिक राजनीतिक और सांस्कृतिक बुराइयों एवं संकीर्णताओं का खंडन किया है। ऐतिहासिक निबंध के अंतर्गत 'महाराष्ट्र देश का इतिहास', 'बूंदी का राजवंश', 'कश्मीर कुसुम', 'रामायण का समय' निबंध पुरातत्व एवं पौराणिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। साथ ही भारतेंदु 'बालविवाह' 'जन्मपत्री की विधि' 'अंग्रेजी फैशन' 'भ्रूणहत्या' 'शिशु हत्या' 'फूट और बैर' जन्मभूमि, आलस्य, संतोष, आदि के माध्यम से सामाजिक बुराइयों एवं संस्कारों को दूर करने की कोशिश करते हैं।

भारतेंदु युग में हिंदी उर्दू का विवाद भी प्रारंभ हो चुका था। भारतेंदु ने खड़ी बोली हिंदी का जो आंदोलन चलाया उसका अर्थ यह नहीं है कि वे उर्दू के विरोधी थे। अगर ऐसा होता तो वे उर्दू में गजलों की रचना नहीं करते। मुख्य रूप से भारतेंदु का विरोध अंग्रेजी से था। वह अंग्रेजी के विरोध में हिंदी का

समर्थन करते हैं। हिंदी के साथ स्वदेश का भी प्रश्न जुड़ा है। देश का उद्योगिकरण उसका विकास यहां की भाषाओं के द्वारा ही संभव है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के लिए शुरू से ही हिंदी का प्रश्न स्वदेशी आंदोलन से जुड़ गया था। उन्होंने 'हिंदी भाषा' शीर्षक समालोचनात्मक निबंध इसी आशय से लिखा कि उसके द्वारा भाषा को एक स्थिर गति प्राप्त हो सके।

सांस्कृतिक समस्याएं और भारतेंदु जी की आलोचनात्मक दृष्टि :– आधुनिक काल का भारत जितना सामाजिक जटिलताओं से जूझ रहा था उतना ही सांस्कृतिक संकट से भी जूझ रहा था। अंग्रेज अपनी साम्राज्यवादी नीति के तहत भारतीय संस्कृति और इतिहास की व्याख्या प्रस्तुत कर रहे थे, जिनमें भारतीय संस्कृति को हीन किया जा रहा था। भारतेंदु ने अपनी रचनात्मकता और सुधारवादी कार्यों के द्वारा हिंदी भाषा,हिंदू धर्म, हिंदी संस्कृति को प्रतिष्ठित किया। भारतेंदु जब हिंदू की बात करते हैं तो उसका अर्थ सांप्रदायिक नहीं है। हिंदू से उनका तात्पर्य हिंदुस्तान की जनता से है। 'बकरी विलाप' कविता में भारतेंदु दुर्गा पूजा के अवसर पर परंपरागत बनी प्रथा जैसी कुरीतियों के प्रति लोगों को सचेत करते हैं। वे बकरी की दारुण व्यथा का चित्रण करते हुए लिखते हैं–

'बंगालिन के हूँ भयो घर–घर महा उछाह।
देवी पूजा की बड़ी चित्त चौगुनी चाह।
नाच लखन मद–पान मिल्यो आई शुभ जोग
दुर्गा के प्रसाद सो मिलिहै सब ही भोग
ऐसे आनंद के समय बकरी अति अकुलाय।'[7]

इसी प्रकार भारतेंदु ने गौ हत्या के प्रति भी सशक्त विरोध प्रकट किया है। बलि प्रथा, गौ हत्या आदि धार्मिक हिंसा के खिलाफ भारतेंदु अपने पत्र–पत्रिकाओं, नाटकों, निबंधों में लगातार अपने विचारों से जनता को अवगत कराते रहे हैं।

स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र एक आलोचक के रूप में अपनी दूरदर्शिता और देशहित तथा मौलिक चिंतन के बल पर अपना अविस्मरणीय योगदान साहित्य के स्वर्णिम पन्नों पर छोड़ गए। वे युग प्रवर्तक के रूप में चलती फिरती संस्था के समान काम करते थे। उन्होंने दरबारी साहित्य के स्थान पर नवीन जनवादी साहित्य का प्रवर्तन किया। कविता के नए आदर्श में जनवादी मूल्यों की स्थापना की। उन्होंने अनेक गोष्ठी और सभाओं का आयोजन कर पत्र–पत्रिकाओं में लेखों के माध्यम से सहयोग इन लेखकों को भी प्रभावित किया। देशभक्ति, सामाजिक दुर्व्यवहार के प्रति आक्रोश, कुरीतियों का खंडन, आर्थिक अवनति पर क्षोभ, बाल विवाह, स्त्री परतंत्रता आदि विषयों पर अपने आलोचनात्मक निबंधों तथा रचनात्मक साहित्यिक विधाओं के माध्यम से अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया। डॉ रामविलास शर्मा लिखते हैं "भारतेन्दु ने जिस संस्कृति का निर्माण किया,वह जनवादी थी। उन्होने धर्म संस्कृति साहित्य, शिष्टाचार पर पुरोहितों–मौलवियों का इजारा तोड़ने के उपाय बताए।[8] अंततः हम कह सकते हैं कि एक आलोचक के रूप में भारतेंदु जी साहित्यिक क्षेत्र के साथ–साथ तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, भाषिक आदि स्थितियों को भी समेटने में कामयाब रहे हैं जिस की प्रासंगिकता सदैव बनी रहेगी।

संदर्भ सूची :–

1. हिन्दी आलोचना का दूसरा पाठ–निर्मला जैन, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2014, पृष्ठ–13।
2. चिंतामणिरूभाग–1, रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण–2012, पृष्ठ–191।
3. हिन्दी आलोचना स्वरूप और विकास–डॉ रामदारश मिश्र, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2016, पृष्ठ–03।
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, संपादक–डॉ नगेंद्र, नागरी प्रचारिणि सभा, वाराणसी, संवत–2030 वि०।
5. हिन्दी साहित्य बीसंवी सताब्दी–आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–1970, पृष्ठ–56।
6. हिन्दी आलोचना, डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–1992, पृष्ठ–22।
7. भारतेन्दु समग्र, संपादक–हेमंत शर्मा, प्रचारक ग्रंथावली परियोजना, हिन्दी प्रचारक संस्थान–वाराणसी, संस्करण–1989 पृष्ठ–213।
8. भारतेन्दु युग, रामविलास शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर–हॉस्पिटल रोड आगरा, संस्करण–1943, पृष्ठ–59।

रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में जीवन-मूल्य

डॉ. बाबूलाल बैरवा*
रजाक शाह कादरी**

मानव अन्य जीव प्राणियों की अपेक्षा प्रकृति की उदारता का विशेष कृपा पात्र रहा है और उसने बौद्रिक और भावात्मक रूप से श्रेष्ठ सुविधापूर्वक जीवन यापन करने के लिए कुछ नियमों का निर्धारण किया जो देशकाल की सापेक्षिता से लेकर सार्वभौमिक और सार्वकालिक रहे हैं। भौतिक क्षेत्र में विकास करने की दिशा में भी मनुष्य ने अपनी चिन्तन शक्ति द्वारा भौतिक विकास के साथ–साथ आत्मोपलब्धि के लिए सूक्ष्म–भाव जगत् और आध्यात्म की खोज में स्वयं को नियोजित किया। इस प्रकिया में आत्मचिंतन द्वारा कुछ अनुभूतियों का उदय हुआ। कालान्तर में इन्ही आत्म–चिन्तनगत उपलब्धियों को मूल्य नाम दिया गया। इन्हीं मूल्यों का विकास विभिन्न परिस्थितियों और युगीन परिवेश के अनुसार देशकाल की सीमाओं में होने लगा।

मूल्य व्यक्ति के जीवन सम्बन्धी व्यापक दृष्टिकोण हैं जिनका विकास मानव समाज के साथ मिलकर होता है। मूल्य व्यक्ति के आचरण, व्यक्तित्व और कार्यों को प्रभावित करते हैं। जीवन मूल्य ही मानव समाज की परम्पराओं, रीति–रिवाजों, लोक–विश्वासों, लोक–मान्यताओं, लोक–प्रथाओं तथा लोक संस्कृति आदि को जीवन्त बनाये रखते हैं और जीवन के नये आयामों को विकसित करते हैं। इनके बिना व्यक्ति और समाज एक आधे–अधूरे ढांचे के समान प्रतीत होते हैं। जीवन मूल्यों की धारणा व्यक्ति के जीवन से ही पनपती हैं, जो मानव समाज के आचरण, व्यवहार सम्बन्धी मान्यताओं, संस्कारों, आदर्शों, विश्वासों और आकांक्षाओं को नियमित, नियंत्रित और निश्चित करते हैं। जीवन मूल्यों से ही व्यक्ति और समाज का वास्तविक स्वरूप दिखाई देता है।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री वुड्स के अनुसार– ''मूल्य दैनिक जीवन में व्यवहार को नियंत्रित करने के सामान्य सिद्वान्त हैं। मूल्य न केवल मानव व्यवहार को दिशा प्रदान करते हैं बल्कि वे अपने आप में आदर्श और उद्देश्य भी हैं।''[1] समाज में स्थापित मूल्य न केवल मानव का विकास ही करते हैं अपितु उसकी मनोवृत्तियों पर भी अंकुश रखते हैं, जिनके परिप्रक्ष्य में मानव मानवीय कल्याण की भावना से समाज में शिष्ट आचरण करता है। जीवन मूल्यों से ही समाज को गति, प्रेरणा और नई दिशा मिलती है तथा समाज का चहूँमुखी विकास होता है।

शिक्षा का प्रचार–प्रसार, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, वैश्वीकरण तथा अन्तरराष्ट्रीय कम्पनियों के आगमन से लोग गांवों से शहरों की पलायन कर रहे हैं। जिससे लोगों की जीवन–शैली बदल रही है। यही बदलती नवीन जीवन शैली व्यक्ति के जीवन मूल्यों में काफी हद तक बदलाव ला रही है। जिसके परिणामस्वरूप हम अपनों से ही अलग हो रहे हैं। एकाकीपन बढ़ा है। संयुक्त परिवारों का विघटन हुआ है, तथा जीवन मूल्यों का संक्रमण हो रहा है।

आज वैश्वीकरण के इस दौर में ग्रमीण जीवन के चितेरे कहानीकार रत्नकुमार सांभरिया ने कथा, लघुकथा, नाटक, निबंध, आलोचना तथा पत्र –पत्रिका आदि अनेक विधाओं का सृजन किया है। वे स्वयं ग्रमीण पृष्ठभूमि से आते हैं। इसलिए उन्होंने गांव के दयनीय जीवन को काफी करीब से देखा, सहा और अनुभव किया है तथा अपने द्वारा भोगे हुए दुःख दर्द, पीडा, कसक, आह, वेदना को अपनी कहानियों में चित्रित किया है। समय के बदलाव के साथ आज हमारे समाज में भी अनेक परिवर्तन आये हैं। हमारे प्राचीन और परम्परागत मूल्य सारहीन तथा निष्क्रिय होते जा रहे हैं और उनकी जगह अर्थहीन मूल्यों की सत्ता

*** शोध निर्देशक, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, दौसा (राजस्थान)**
**** शोधार्थी राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर (राजस्थान)**

स्थापित हो रही है। हमारे समाज का वैचारिक दृष्टिकोण भी विषमय हो रहा है। आज के इस बदलते दौर से रत्नकुमार सांभरिया भी अछूते नहीं रह सके। उनकी कहानियों में जीवन मूल्य, व्यक्ति, वर्ग, समुदाय तथा सामाजिक स्तर पर पूर्ण रूप से दिखाई देते हैं।

'आखेट' कहानी जीवन मूल्यों को प्रतिष्ठित करती एक सशक्त कहानी है। जमींदार, सामन्ती और पूँजीपति वर्ग हमेशा से ही निम्न व शोषित वर्ग का शोषण, उस पर अत्याचार और अन्याय करता आ रहा है। पूँजीपति, जमींदार वर्ग अपनी सामन्ती सोच का परिचय अहं भाव के साथ देते हैं। उनकी मानवीय संवेदनाएं लगभग मर चुकी हैं। कहानी की नायिका रेवती सास के साथ अपने खेत में घास छीलने के लिए जाती है। नानकसिंह अपने खेत में पहले से ही मौजूद था। उसने रेवती की सास को जानवर भगाने के लिए भेज दिया। कथाकार के शब्दों में – ''नानकसिंह ने रेवती की ओर देखा, देखता ही रह गया। उसकी नजरें नवयौवना के चेहरे पर चिपक गई थी। इकहरे बदन की मालकिन रेवती के गोरे कपोलों पर यौवन का उत्स लालिमा के रूप में अलोड़ रहा था। आंखों का काजल , माथे की बिंदिया सिन्दूरी मांग उसके रंग रूप को हवा दे रहे थे। लंपट नानकसिंह की वासना फूट पड़ी थी।''[2] इस तरह जमींदार नानकसिह वासना की आग में अपने जीवन मूल्यों भी भूल जाता है। और वह दलित महिला रेवती को न सिर्फ कुदृष्टि से देखता है, बल्कि उसे अपनी हवस का शिकार भी बनाना चाहता है। और अपनी कुत्सित सामन्ती सोच का परिचय भी देता है। उधर दलित महिला रेवती अपनी इज्जत–आबरू, मान–मर्यादा और अस्मिता की रक्षा करते हुए अपनी सामाजिक छवि और जीवन–मूल्यों को धूमिल होने से बचाती है। रेवती सिंहनी की तरह अपनी इज्जत आबरू के लिए जमींदार नानकसिह की नाक खुरपी से काट देती है। ''रेवती ने आव देखा न ताव, जिस खुरपी से वह घास छील रही थी, उसी को नानक सिंह के नाक में भोंक दिया। खुरपी लगते ही उसके नाक का अग्रभाग निंबोरी की तरह लटक आया था, शरीर लहुलुहान। कपड़े रंग बदल गये थे।''[3]

कथाकार रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों के स्त्री पात्र भी साहस और वीरांगना के भावों से परिपूर्ण हैं। वे अपने जीवन मूल्यों की खातिर कानून का सहारा लेने में तनिक भी नहीं झिझकते हैं। 'चपड़ासन' कहानी में तहसीलदार मुनीन्द्र की असामयिक मृत्य हो जाने के बाद उसकी पत्नी मीता को तहसील में चपड़ासी की नौकरी मिलती है, जहां मुनीन्द्र तहसीलदार थे, वही पर धनपाल नायब था, जो पदोन्नति पाकर आज वहीं पर तहसीलदार है। वह मुनीन्द्र की विधवा मीता से संबंध बनाकर उसे रखैल के रूप में रखना चाहता है। दफ्तर के बाबु और चपड़ासियों की मिलीभगत के बावजूद बाबु हुकुमचन्द और मीता के जज्बे के सामने उनका एक–एक दांव बोथा जाता है। एक दिन कोर्ट लेने के बाद यौन कुण्ठित तहसीलदार धनपाल पानी पकड़ाती मीता का जबरन हाथ पकड़ लेता है। मीता के शब्दों में– ''गिलास गिरकर किरच–किरच हो गया। पानी टेबल पर बिखर गया। मेरी बेवा कलाई पर सोने की दो चूड़ियाँ थी चूड़ियाँ मुड़ गई थी। हाथ पर नीलगू निशान उपट आए। कलाई मुड़क गई। न्याय की कुर्सी पर बैठकर उन्होंने मेरे साथ अन्याय किया।''[4] बाबु हुकुमचन्द की मदद से वह तहसीलदार के खिलाफ थाने में एफ. आई. आर. दर्ज कराती है और अन्याय के विरूद्ध खड़ी होकर नारी संघर्ष की प्रतीक बनती है तथा अपनी इज्जत आबरू और जीवन मुल्यों को बचाती है।

बदलते सामाजिक परिवेश और संक्रमण के इस दौर में कथाकार रत्नकुमार सांभरिया ने आदर्शों, मान–मर्यादा, परम्परा और जीवन मूल्यों को जीवन्त और स्थायी रखने के लिए अपनी कलम को सशक्त तरीके से चला रहे हैं। भूमण्ड्लीकरण के इस दौर में हमारा समाज धूमिल होता जा रहा है। व्यक्ति अपने आप को ठगा सा महसूस करने लगा है। वह अपने अतीत को भूल सा गया है। रत्नकुमार सांभरिया समाज के आदर्शों और जीवन मूल्यों की पैरवी करने के साथ–साथ समाज के एक सजग प्रहरी की भूमिका का निर्वहन भी कर रहे हैं तथा समाज की आस्था और संस्कृति को जीवन्त बनाए रखा है।

'बात' कहानी की नायिका सुरती अपनी बात (इज्जत) को निभाने के लिए आखिरी सांस तक मेहनत और संघर्ष करती है। और बपनी बात की लाज रखते हुए अपनी इज्जत–आबरू की रक्षा करती है। विधवा सुरती अपने बेटे राधू की पढ़ाई जारी रखने के लिए फीस के तीन सौ रुपये गांव के रंड़वा जमींदार धींग से

अपनी बात (इज्जत आबरू चरित्र) को गिरवी रखकर लाती है और तय होता है कि यदि सुरती एक महीने में धींग के तीन सौ रुपये वापस नहीं लौटाती है तो वह खुद को धींग के हाथों सौंप देगी। गरीबी अपनी आबरू को गिरवी रखने पर मजबूर कर देगी यह सोचकर वह जी तोड़ मेहनत करती है और दिन–रात एक करके फैक्टरी में काम करके तीन सौ रुपये जोड़ लेती है, परन्तु धींग उसके घर से रुपये चुरा लेता है। जब सुरती को पता लगता है तो वह सरेआम धींग के घर में घुसकर सिंहनी की तरह टूट पड़ती है। कथाकार द्वारा कहे गये ये शब्द बड़े ही मार्मिक लगते हैं– ''चौक में फैली पड़ी रेत पर बड़ी–बड़ी जूतियों के खोज देखकर उसकी आंखों से चिनगारियाँ चटकने लगी। भट्टी भी इतनी तेज नहीं लहकती होगी, सुरती का समूचा शरीर सुर्ख हो धधक उठा। वह आहत सिंहनी–सी धींग के घर की और दौड़ पड़ी। उसने धींग का गेट खोला और गोली सी दनदनाती हुई उसके घर में जा घुसी थी। नाहर गच्चा खा जाए। बाज चूक जाए। क्रोध झागती सुरती धींग पर बिजली–सी टूट पड़ी थी।''[5] और अन्ततः सुरती अपनी बात आत्मसम्मान व सतीत्व की रक्षा करने में सफल हो जाती है।

'बकरी के दो बच्चे' कहानी जीवन मूल्यों को बयां करती एक सशक्त कहानी है। इस कहानी में कुत्सित सामन्ती सोच का पर्दाफाश कर मानवीय मूल्यों व आदर्शों की स्थापना पर बल दिया गया है। कहानी में दलित पात्र दलपत के बकरी के दो बच्चे जमींदार दानासिंह की हवेली में घुस जाते हैं। जमींदार का इकलौता बेटा धर्मपाल उन्हें जमीन पर पटकर मार देता है, जिसका जमींदार को बिल्कुल भी पछतावा नहीं होता है। बल्कि वह अहंकार से वशीभूत होकर कहता है– 'ढ़ेड और भेड़ को हम जीव नहीं मानते हैं। दलपत थाने में एफ. आई. आर. दर्ज कराने जाता है, लेकिन जमींदार दानसिंह थानेदार को रिश्वत देकर दलपत की एफ. आई. आर. दर्ज करने से मना कर देता है। अन्त में एस. पी.साहब के दखल से जमींदार के विरूद्ध मुकदमा दर्ज किया जाता है। और दानसिंह को गिरफ्तार किया जाता है। इस संदर्भ में कथाकार के ये शब्द बड़े मार्मिक हैं– ''दानसिंह को हथकड़ी। उसके अन्तस् में आत्मग्लानि, आत्मभर्त्सना और शर्मिन्दगी का सोता फूट रहा था। बाप–दादाओं से विरासत में मिली यह शोहरत यूँ ही दफन हो जायेगी, उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था .... धरती फट गई। दानसिंह पाप का घड़ा है वह रोज बूँद–बूँद भर रहा था चौपाल में फूट गया, आज....दानसिंह ने आंखों की कोरों ढुलक आये आँसू पोंछे और दरोगा के चरण छूकर गुहार की– दरोगा साहब, दलपत की बकरी के दो ब्च्चे मारे हैं, धर्मपाल ने। मैं दो भैंसे दे दूँगा। हथकड़ी झाड़ दो।''[6] यहाँ कथाकार ने जमींदार के अहं भाव को तोड़ा है। उनकी 'सवाँखें', 'डंक', गूंज', 'सनक', 'बूढ़ी', आदि कहानियों में शोषण, अत्याचार, तथा भ्रष्टाचार आदि के खिलाफ विरोध व्यक्त किया है तथा इनके पात्र अपने जीवन मूल्यों व आदर्शों की स्थापना करते हैं।

'खेत' कहानी में गरीब बूढ़ा केरसिंह खेत को अपने पूर्वजों से मिली सबसे बड़ी अमानत मानता है। वह खेत को बेचना नहीं चाहता है। वकील बूढ़ा के खेत को खरीदने का षड़यंत्र रचता है और आए दिन खेत को खरीदने के लिए बूढ़ा के घर दस्तक देता है लेकिन बूढ़ा वकील के खेत खरीदने के इस षड़यंत्र को भांप जाता है और किसी भी सूरत में खेत बेचने के लिए उसे हाँ नहीं करता है। बूढ़ा वकील की हर साजिश को नाकाम बना देता है– ''बूढ़ा ने अंडूस खोली। स्टाम्प की चिंदी–चिंदी कर वकील पर फैंक दीं। रुपए की थैली सामने पटकी। उसने गेट पर लाठी ठकठकाई–वकील छौं न। केरसिंह पागल कोनी, कालजो बेच दे अपणो।''[7] बूढ़ा खेत को कलेजे से भी बढ़कर बताता है। कहानीकार ने यहाँ गरीब बूढ़े का जज्बा, उसकी जिजीविषा और जीवटता का परिचय दिया है। इस प्रकार बूढ़ा वकील की खेत खरीदने की सारी चालबाजियों को नाकाम कर देता है क्योंकि बूढ़े में अभी तक भी आदर्श और जीवन मूल्य जीवन्त और अक्षुण्ण थे।

सांभरिया की कहानियों के पात्र परिस्थितियों के साथ समझौता नहीं करते, बल्कि संघर्षशील रहते हुए अपनी कर्मठता का परिचय देते हैं। उनकी कहानी मानवीय आदर्श, मान–मर्यादा, ईमानदारी, स्वाभिमान, जीवन मूल्य, जिजीविषा और जीवटता आदि भरपूर हैं। 'बिपर सूदर एक कीने' कहानी में दलित जातियों में फैला ब्राह्मणवाद का पर्दाफाश किया है। गाँव के बहुत से दलित गंगाजल हाथ में लेकर सूत का धागा

पहन लेते हैं। तथ अपने आपको ऊँची जाति का समझते है। परन्तु जीवणलाल का बड़ा भाई श्यामलाल ऐसा ढोंग करके ऊँची जाति का नहीं बनता है। जीवणलाल अपने भाई श्यामलाल को छोटी और नीची जात का ही मानता है। तब बड़ा भाई श्यामलाल उसे फटकार लगाते हुए कहता है– ''आज बड़ों बन गयो तू। अरे, बाजरा की रोटी चिगल–चिगल (दांतों से काट–काट) मैंने तुझे खिलाई थीं। माँ नहीं रही थी, अपनी। मैंने तेरो.... तक करो। मैं ना होतो, आज बड़ों न होतो, तू। तागो लेना से खून ना बदल गयो अपणो। मैं फेर कहूँ, बादल पानी उतर जाए। रुजगार हो जाए। तेरी छांन संवर जाए, जात को छातो ओढ़ लिए।''[8] कथाकार ने यहाँ बताया है कि दलित जाति में ही जन्म लेकर, फिर उसी जाति को हीन, अस्पृश्य समझना ब्राह्मणवाद को बढावा देना है। कथाकार ने जीवनलाल जैसे लोगों के जातीय दम्भ को तोड़कर उन्हें नसीहत दी हैं कि बड़े भाई के प्रति छोटे भाई की क्या जिम्मेदारी, नैतिक मूल्य और आदर्श होते हैं? इस प्रकार कथाकार ने श्यामलाल के जरिये जातीय दम्भ के विरूद्ध मानवीय मूल्यों की स्थापना की है।

अतः हम कह सकते हैं कि रत्नकुमार सांभरिया आज के इस वैश्वीकरण के दौर में एक सजग, संवेदनशील तथा क्रान्तिकारी कहानीकार हैं। इनकी कहानियाँ नई जमीन गढ़ती हैं तथा अपने कथ्य व विषय में विभिन्न जीवन–मूल्यों, आदर्शों तथा मानकों पर खरी उतरती हैं। जिससे समाज के आचरण, संस्कार, व्यवहार, मर्यादाएँ व आदर्श जीवित है। और समाज को एक नयी गति, दिशा और प्रेरणा मिलती है। तब ही व्यक्ति का नैतिक और चारित्रिक विकास हो सकेगा।

संदर्भ–सूची :–

1. डॉ.संजय कुमार सुमन, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी मूल्य और मूल्यांकन, पृष्ठ –18, लता साहित्य सदन, गाजियाबाद, संस्करण –2014।
2. रत्नकुमार सांभरिया, हुकम की दुग्गी, पृष्ठ –33, रचना प्रकाशन जयपुर, संस्करण–2018।
3. रत्नकुमार सांभरिया, हुकम की दुग्गी, पृष्ठ –34, रचना प्रकाशन, जयपुर, संस्करण–2018।
4. डॉ॰ लोकेश कुमार गुप्ता, रत्नकुमार सांभरिया की प्रतिनिधि कहानियाँ, पृष्ठ –96, श्रीसाहित्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण –2019।
5. रत्नकुमार सांभरिया, काल तथा अन्य कहानियाँ, पृष्ठ– 13, रचना प्रकाशन जयपुर, संस्करण–2004।
6. डॅा॰ लोकेश कुमार गुप्ता, रत्नकुमार सांभरिया की प्रतिनिधि कहानियाँ, पृष्ठ–76, श्रीसाहित्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण– 2019।
7. डॉ॰ धूलचन्द मीना, हिन्दी दलित लेखन एवं रत्नकुमार सांभरिया का साहित्य, पृष्ठ–108, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली संस्करण–2020।
8. डॉ. लोकेश कुमार गुप्ता, रत्नकुमार संभरिया की प्रतिनिधि कहानियाँ, पृष्ठ–153, श्रीसाहित्य प्रकाशन दिल्ली, संस्करण –2019।

★

देव बनाम बिहारी : पक्षपात की साहित्यिक वृत्ति

डॉ. बीरेन्द्र सिंह*

देव और बिहारी रीतिकाल के महत्वपूर्ण कवि हैं। 'रीति' (काव्यांग निरुपण) के आधार पर काव्य रचना की दृष्टि से देव को रीतिबद्ध तथा बिहारी को रीतिसिद्ध कवि माना जाता है। दोनों कवियों का मुख्य वर्ण्य–विषय श्रृंगार रहा है। वस्तु वर्णन, भाव सौन्दर्य के चित्रण तथा अभिव्यंजना पद्धति आदि सभी दृष्टियों से ये रीतिकालीन कवियों में सबसे ऊपर हैं, किंतु इन दोनों कवियों में श्रेष्ठ कौन है? यह आलोचना जगत में एक विवादित विषय रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने देव और बिहारी विवाद के प्रसंग को 'एक साहित्यिक झगड़ा' कहा है। द्विवेदीयुग में हमें देव और बिहारी की श्रेष्ठता को लेकर एक लम्बी बहस देखने को मिलती है। एक प्रकार से हिन्दी साहित्य में तुलनात्मक आलोचना की शुरुआत देव और बिहारी की तुलना से ही प्रारम्भ होती है। सन् 1910 ई. में मिश्रबन्धु कृत 'हिन्दी नवरत्न' का प्रकाशन हुआ। इसमें तुलसीदास और सूरदास के बाद देव को हिंदी का सबसे बड़ा कवि बताया गया है। मिश्रबंधु के अनुसार तो देव सबसे ऊपर हैं, किन्तु तुलसीदास एवं सूरदास के 'महात्मापन' के आगे वे विनम्र हो जाते हैं तथा देव को तीसरे स्थान पर रखते हैं। देव के संदर्भ में वे कहते हैं– ''इनको किसी कवि से न्यून कहना इनके साथ अन्याय समझ पड़ता है, परन्तु इनको सर्वश्रेष्ठ कहना गोस्वामी तुलसीदास तथा महात्मा सूरदास के साथ भी अन्याय होगा। सिवा इन दोनों महात्माओं के और किसी तृतीय कवि की तुलना देव जी से कदापि नहीं की जा सकती।''[1] देव के प्रति उनके हृदय में विशेष आग्रह था जो निम्न कथन से भी स्पष्ट हो जाता है – ''... किन्तु इसके साथ ही साथ इनके साहित्य में अभूतपूर्व कोमलता, रसिकता, सुन्दरता आदि गुण कूट–कूट कर भरे हैं। ऐसे उत्कृष्ट पद किसी अन्य कविता में स्वप्न में भी नहीं देखे जाते।''[2]

'हिन्दी नवरत्न' में कवियों को उनकी श्रेष्ठता के अनुसार स्थान दिया गया है। इसमें देव को तीसरे एवं बिहारी को चौथे स्थान पर रखा गया है जिससे यह भी पता चलता है कि उनकी नजर में बिहारी भी एक महत्वपूर्ण कवि थे। जिस समय इस प्रकार की तुलनात्मक आलोचना की शुरूआत हो रही थी, वह भारतीय पुनरुत्थान का युग था। नैतिकता एक साहित्यिक मानदण्ड के रूप में आलोचना में प्रवेश कर रही थी। इसी परिप्रेक्ष्य में सर्वप्रथम 'हिन्दी नवरत्न' की समीक्षा करते हुए 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने देव की कड़ी आलोचना की थी– ''देव कवि महाकवि नहीं है, क्योंकि उन्होंने उच्च भावों का उद्बोधन नहीं किया। समाज, देश या धर्म को कविता द्वारा लाभ नहीं पहुँचाया और मानव चरित्र को उन्नत नहीं किया। वह भी यदि महाकवि या कविरत्न माना जा सकेगा, तो प्रत्येक प्रांत में सैंकड़ों महाकवि और कविरत्न निकल आवेंगे।''[3]

यहाँ पर जिस उपयोगितावादी दृष्टिकोण से महावीर प्रसाद द्विवेदी कवि देव की आलोचना करते हैं, यदि देखा जाए तो ऐसे रीतिकाल के सैंकड़ों कवि' तुच्छ सिद्ध हो जाएँगे। बिहारी, घनानंद और पद्माकर जैसे कवियों के लिए भी कोई ठोर–ठिकाना नहीं बचेगा। आगे चलकर कृष्णबिहारी मिश्र, लाला भगवानदीन एवं पं. पद्मसिंह शर्मा आदि आलोचक– देव और बिहारी की तुलना करते हुए एक को दूसरे से बड़ा सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। ये सभी विद्वान, बहुज्ञ एवं रीतिकालीन साहित्य के मर्मज्ञ थे। देव और बिहारी या बिहारी और देव को लेकर इनके बीच जो विवाद हुआ, वह बहुत ज्ञानवर्धक एवं मनोरंजक है।

मिश्रबन्धु ने देव को बिहारी से बड़ा कवि अवश्य बताया था, किन्तु उसे सर्वप्रथम उदाहरण देकर सिद्ध करने वाले आलोचक कृष्णबिहारी मिश्र थें। इन्होंने अपने पुस्तक 'देव और बिहारी' में देव की काव्यगत विशिष्टताओं को उजागर करते हुए उसे रीतिकाल का सबसे बड़ा कवि माना है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'देव

*** सहायक प्राध्यापक–हिन्दी, जीसस एंड मेरी कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।**

और बिहारी' पुस्तक की समीक्षा करते हुए लिखते हैं– ''इस पुस्तक में बड़ी शिष्टता, सभ्यता एवं मार्मिकता के साथ दोनों बड़े कवियों के भिन्न–भिन्न रचनाओं का मिलान किया गया है। इसमें जो बातें कही गई हैं, वह बहुत कुछ साहित्यिक विवेचन के साथ कही गई है, 'नवरत्न' की तरह यों ही नहीं कही गई है।''[4] आलोचना में शिष्टता और सभ्यता तो होनी ही चाहिए किन्तु यहाँ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल उसे अलग से कृष्णबिहारी मिश्र की आलोचना की एक विशेषता के रूप में स्वीकार करते हैं जो यह संकेत देता है कि उस समय देव और बिहारी की तुलनात्मक आलोचना एक अलग ही दिशा में जा रही थी।

कृष्णबिहारी मिश्र ने अपनी रचना 'देव और बिहारी' में 'तुलनात्मक समालोचना' के साथ–साथ 'मुक्त छंद' तथा 'प्रेम' को भी स्पष्ट किया है। इसके बाद वे मन, नेत्र एवं विरह की विभिन्न दशाओं के आधार पर देव और बिहारी के द्वारा लिखे गए छंदों की तुलना करते हैं। तुलनात्मक आलोचना को स्पष्ट करते हुए ये लिखते हैं– ''कविता की जो परीक्षा इस प्रकार एक या अनेक कवियों की उक्तियों की तुलना करके की जाती है, उसी को 'तुलनात्मक समालोचना' कहते है।''[5] इन्होंने देव और बिहारी की तुलनात्मक आलोचना करते हुए यथासंभव निष्पक्षता से काम लिया है। देव के साथ–साथ ये बिहारी के काव्योत्कर्ष की भी चर्चा करते हैं– ''छोटे छंद में आवश्यक बातें न छोड़ते हुए उक्ति कैसे निभाई जाती है, यह चमत्कार बिहारीलाल में है तथा बड़े छंद में अनेक परन्तु भाव और भाषा के सौन्दर्य को बढ़ाने वाले कथनों के साथ, भाव विकास कैसे पाता है, यह अपूर्वता देवजी की कविता में है।''[6] बिहारी एवं देव के कई पदों में भाव–सादृश्य मिलता है परिणामस्वरूप देव पर 'भाव हरण' का आरोप भी लगा है। किन्तु कृष्ण बिहारी मिश्र इसका परिहार करते हुए यही दोष बिहारी पर लगा देते हैं तथा उसे विभिन्न कवियों के भावहरण का आरोपी बना देते हैं– ''क्या संस्कृत, क्या प्राकृत, क्या हिन्दी– सभी से बिहारीलाल ने भाव–हरण किए हैं। सूर और केशव की उक्तियाँ उड़ाने में तो बिहारीलाल को संकोच ही नहीं होता था।''[7] उपर्युक्त कथन में शिष्टता और सभ्यता के दर्शन तो नहीं होते हैं, अपितु 'साहित्यिक विवेचन के साथ' आरोप लगाने के ढंग में 'पक्षपात' का संकेत अवश्य मिलने लगता है।

पंडित कृष्णबिहारी मिश्र की रचना 'देव और बिहारी' के बरक्स लाला भगवानदीन ने 'बिहारी और देव' लिखा। 'देव' समर्थक आलोचकों पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं– ''एक बिहारी पर चार–चार बिहारियों–मिश्र बन्धु श्याम बिहारी, गणेश बिहारी, शुकदेव बिहारी और चौथे कृष्णबिहारी का धावा देखकर बेचारा हिन्दी समाज घबरा गया है।''[8]

गौरतलब है कि 'बिहारी और देव' नामक आलोचनात्मक पुस्तक केवल बिहारी को देव से श्रेष्ठ कवि सिद्ध करने के लिए लिखी गई थी। कृष्ण बिहारी मिश्र ने बिहारी पर भाव एवं भाषा संबंधी जो दोष लगाए थे, उसका जवाब देते हुए वही दोष लाला भगवानदीन कवि देव की कविता में दिखा देते हैं। इस प्रकार धीरे–धीरे दोषारोपण की प्रक्रिया में काव्यगत प्रतिमानों से आगे चलकर यह विवाद देव और बिहारी के चरित्र तक पहुँच जाता है। पंडित कृष्णबिहारी मिश्र कुछ दोहों के आधार पर बिहारी के चरित्र पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं, तो लाला भगवानदीन भी देव को धनलोलुप एवं 'भिक्षुक' कहने लगते हैं– ''वे (देव) धन–लोलुपता के कारण द्वार–द्वार और देश–देश में मारे फिरते थे।..... देव को तो हम भिक्षुक कवि कह सकते हैं, बिहारी राजकवि और कविराज थे।''[9] निश्चित तौर पर साहित्यिक जगत में यह आलोचना की अति थी।

देव और बिहारी के विवाद में हिस्सा लेने वाले आलोचकों में पंडित पद्मसिंह शर्मा का भी नाम आता है। आधुनिक हिंदी आलोचना में 'तुलनात्मक आलोचना' का जनक पंडित पद्मसिंह शर्मा को ही माना जाता है। इन्होंनें ही सर्वप्रथम सरस्वती पत्रिका (1907 ई.) में बिहारी और फारसी कवि 'सादी' की तुलनात्मक आलोचना की थी। 'बिहारी की सतसई : तुलनात्मक अध्ययन' इनकी प्रसिद्ध रचना है। इसका प्रकाशन आज से ठीक सौ वर्ष पहले 1918 ई. में हुआ था। यह उस समय तक प्रकाशित पुस्तकों में तुलनात्मक आलोचना की दृष्टि से एक श्रेष्ठ रचना थी। इसमें इन्होने सतसई परंपरा के उद्भव एवं विकास की चर्चा करते हुए बिहारी को प्रतिनिधि कवि माना है। इन्होंने न केवल आर्या–सप्तशती एवं गाथा–सप्तशती के कई पदों का प्रभाव बिहारी के दोहे में दिखाया है, अपितु बिहारी के दोहे को उससे श्रेष्ठ भी बताया है। एक दोहे की

तुलना करते हुए वे कहते हैं– ''एक नहीं अपने से पहले तीन महाकवियों द्वारा वर्णित भाव में इस प्रकार एक चमत्कारयुक्त नूतनता, एक निराला बांकपन पैदा कर देना बिहारी ही का काम है।''[10] इस पुस्तक के माध्यम से पंडित पद्मसिंह शर्मा ने देव के बरक्स बिहारी पर लगाए गए आरोपों का भी खंडन किया है। इस प्रकार भाव, भाषा, छंद, विचार आदि के आधार पर यहाँ हमें एक उत्कृष्ट काव्य–विवेचन देखने को मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल पहली बार यहाँ किसी आलोचक द्वारा कवि के संदर्भ में किये गए 'पक्षपात' का समर्थन करते हुए नजर आते हैं – ''हो सकता है कि शर्माजी ने भी बहुत से स्थलों पर बिहारी का पक्षपात किया हो, पर उन्होंने जो कुछ किया है, वह एक अनूठे ढंग से किया है। उनके पक्षपात का भी साहित्यिक मूल्य है।''[11] संभवतः प्रथम बार ही आचार्य शुक्ल जी किसी की आलोचना करते हुए– 'हो सकता है' से अपनी बात शुरू करते हैं तथा किसी के पक्षपात के अनूठे ढंग पर मंत्रमुग्ध होकर उसे साहित्यिक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। पक्षपात के परिणाम अच्छे हो सकते हैं, किन्तु उसे मूल्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। किसी कवि की रचना को उसकी विषयवस्तु, भाव एवं भाषा आदि के आधार पर उत्कृष्ट बताना तो ठीक है; किन्तु, जब पक्षपात की बात आती है तो प्रायः हम उस कवि की तुलना में अन्य कवि को छोटा बताकर केवल उसकी कमियाँ गिनाने लगते हैं। यहाँ पर तो यह प्रवृत्ति अन्त में कवि के व्यक्तिगत चरित्र तक जा पहुँची थी।

इस प्रकार से 20वीं सदी के प्रथम दो दशकों में मिश्रबन्धु, लाला भागावादीन, कृष्ण बिहारी मिश्र, पंडित पद्मसिंह शर्मा आदि आलोचकों में बिहारी एवं देव को लेकर काफी बहस दखने को मिलती है। इस बहस को बड़बोलेपन की बहस भी कहा जा सकता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार– ''अच्छा हुआ कि 'छोटे–बड़े' के इस भद्दे झगड़े की ओर अधिक लोग आकर्षित नहीं हुए।''[12] किन्तु हम देख सकते हैं कि इस 'झगड़े' के प्रभाव स्वरूप दोनों कवियों पर एक साथ अपना मत देने की प्रवृत्ति आगे के आलोचकों में भी बनी रही। शृंगार वर्णन की दृष्टि से डॉ. नगेन्द्र एवं बच्चन सिंह ने भी देव को बिहारी से बड़ा कवि बताया है।

देव और बिहारी की रचना का अवलोकन करते हुए इस तथ्य की अनदेखी नहीं करनी चाहिए कि देव ने काव्यांगों का लक्षण–उदाहरण देते हुए अपने काव्य ग्रंथों की रचना की है, वहीं बिहारी इस प्रकार के बंधन से मुक्त हैं। अतः बिहारी के बरक्स देव के काव्य–सिद्धांत के साथ उनकी कविता पर विचार करना ज्यादा उक्ति संगत है। गौरतलब है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने केशवदास के आचार्यत्व को नकारते हुए जहाँ उनकी कवित्व शक्ति पर भी संदेह किया है, यथा ''केशव को कवि हृदय नहीं मिला था।''[13] वहीं देव के संदर्भ में वे कहते हैं– ''रीतिकाल के कवियों में से बड़े ही प्रगल्भ और प्रतिभासंपन्न कवि थे, इसमें संदेह नहीं।''[14]

देव एक आचार्य कवि थे। ये रस के दो भेद मानते हैं– लौकिक और अलौकिक। इनके अनुसार नाटक के आठ तथा काव्य के नौ रस होते हैं। परंपरा से हटकर देव ने तैंतीस के स्थान पर 34 संचारी भाव मानते हुए 'छल' को 34वाँ संचारी भाव बताया है। हालांकि आचार्य शुक्ल ने इसे संस्कृत की 'रसतरंगिणी' से उधृत माना है, किंतु साथ में यह भी कहा है कि– ''साहित्य के सिद्धांत ग्रंथों से परिचित मात्र जानते हैं कि गिनाए हुए 33 संचार या उपलक्षण मात्र हैं, संचारी और भी कितने हो सकते हैं।''[15] निश्चित तौर पर ऐसा हो सकता है लेकिन स्वयं उन्होंने देव द्वारा बताए 'छल' के अतिरिक्त एक भी संचारी भाव का नाम नहीं बताया। कवि देव ने 'रस' पर भी पर्याप्त चिंतन किया है। उन्होंने नौ रसों पर चिंतन करते हुए तीन को प्रमुख रस माना है– शृंगार, वीर और शांत। शेष छह (6) दो–दो करके इन्हीं तीनों में लीन हो जाते हैं, अंत में वीर और शांत भी शृंगार में लीन हो जाते हैं –

''भूलि कहत नव रस सुकवि, सकल मूल शृंगार ,
तेहि उछाह निर्वेद लै, वीर सात संचार।
भाव सहित सिंगार में, नवरस झलक अजत्न,
ज्यों कंकन मनि–कनक को ताहि में नवरत्न।।''[16]

रीतिकाल के अन्य कवियों की तुलना में देव द्वारा नायिका–भेद के वर्णन में भी नवीनता देखने को मिलती है। इन्होंने कर्म, काल, गुण, दशा और जाति के अतिरिक्त देश और प्रकृति के आधार पर भी नायिका–भेद किया है। देव ने उपमालंकार के अनेक भेद किए हैं। यह नवीन उद्‌भावना अलंकार शास्त्र में देव की सर्वथा मौलिक देन है। इस प्रकार से देव द्वारा शास्त्रानुमोदित लक्षणों के विवेचन के अध्ययन से उनके आचार्यत्व का पता चल जाता है, तथापि आलोचकों की दृष्टि में देव का प्रमुख गुण उनका रस संवेदन है। दरअसल प्रेम को लेकर देव का दृष्टिकोण शुद्ध रीतिकालीन नहीं था। वे परकीया नायिका से श्रेष्ठ स्वकीया नायिका को मानते हैं। सच तो यह है कि वे एक नायिका में जिन गुणों की चर्चा करते हैं उसके अंतर्गत परकीया नायिका आ ही नहीं सकती है –

"जा कामिनी में देखी, पूरन आठहु अंग।
ताही बरनै नायिका, त्रिभुवन मोहन रंग।।
पहिलै जोबन, रूप, गुण, शील, प्रेम पहिचानि।
कुल वैभव भूषन बहुरि आठों अंग बखानि।।"[17]

अतः जब नायिका में देव 'सील' तथा 'कुल' की अपेक्षा करते हैं तब परकीया नायिका स्वयं नायिका की कोटि से बाहर चली जाती है। देव की आस्था एकनिष्ठ गृहस्तिक प्रेम में है। यहाँ वे बिहारी से अलग दिखाई पड़ते हैं। देव के प्रेम चित्रण में एक प्रकार की गंभीरता भी मिलती है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार– "स्वभाव से देव की अपनी व्यक्तिगत आस्था एकनिष्ठ प्रेम में ही थी। एक तरह से कहा जा सकता है कि उनका प्रेम विषयक दृष्टिकोण बिहारी, मतिराम पद्‌माकर आदि शुद्ध रीतिवादी कवियों और दूसरी ओर घनानंद, ठाकुर, बोधा आदि रीतिमुक्त एकनिष्ठ प्रेमी कवियों का मध्यवर्ती था।"[18] देव शृंगार रस का आधार स्वकीया नायिका में मानते हैं तथा उसी के प्रेम का वर्णन करते हैं। वे स्पष्ट तौर पर कहते हैं– "तबही लौ शृंगार रस, जब लगि दम्पत्ति प्रेम"[19] देव ने परकीया का वर्णन भी किया है, पर उसकी निंदा भी खूब की है। बिहारी की दृष्टि परकीया नायिका पर ही ज्यादा पड़ी है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है जहाँ बिहारी की परकीया नायिका प्रथम मिलाप के समय नायक द्वारा हाथ पकड़ने पर आँखों से रोष प्रकट करती है, मुँह से न–न कहती है, किन्तु अपना हाथ छुड़ाने के क्रम में स्वयं खिंची हुई नायक के समीप आ जाती हैं–

"भौहंनु त्रासति, मुँह नटती, आंखिनु सौ लपटाति।
ऐंचि छुड़ावति करु, इँचि आगै आवति जाति।"[20]

'बिहारी सतसई' इस प्रकार के वर्णन से भरा पड़ा है। इसी कारण कृष्णबिहारी मिश्र उनके चरित्र पर भी संदेह करने लगते हैं जिसका आज कोई तुक नहीं है– "बिहारीलाल ने परकीया का वर्णन स्वकीया की अपेक्षा अधिक किया है, और अच्छा भी किया है। इस प्रकार के वर्णनों से कवि के साहित्य मर्मज्ञ और रचना चातुरी झलकती है, परन्तु कवि के चरित्र के विषय में संदेह होता है।"[21] बावजूद इसके 'बिहारी सतसई' की प्रसिद्धि को लेकर कोई सन्देह नहीं होना चाहिए। आज भी बिहारी के मंगलाचरण का अर्थ बताते हुए कक्षा में अध्यापक जब 'स्यामु' के तीन अर्थों से तीन भावार्थ की अन्विति करते हैं तो छात्र सहज ही बिहारी को अपनी पलकों पर बिठा लेते हैं। यह उक्ति चमत्कार एवं भाव गांभीर्य का अद्‌भुत उदाहरण है–

"मेरी भव–बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झांई परैं स्यामु हरित–दुति होइ।"[22]

कवि के रूप में उनकी निर्भीकता के भी सभी कायल है। अन्योक्ति के रूप में कहा गया प्रस्तुत दोहा इसका ज्वलंत प्रमाण है–

"नहिं परागु नहिं मधुर मधु नहिं बिकासु इहीं काल।
अली, कली ही सौं बंध्यौ, आगे कौन हवाल।।"[23]

इसी प्रकार की निर्भीकता देव के यहाँ भी है। देव के बारे में यह किंवदति प्रसिद्ध है कि भरतपुर–नरेश को लक्ष्य करके लिखे गए एक छंद के कारण उन्हें कैद करने की आज्ञा दी गई थी। डॉ. नगेन्द्र ने अपने ग्रंथ में इस छंद का उल्लेख किया है–

"पीताम्बर फाट्यो भलो, साजो भलो न टाट।
राजा भयो तो का भयो, रह्यौ जाट कौ जाट।"[24]

बिहारी की नायिका 'बतरस' के लालच में कृष्ण की मुरली चुरा लेती है, तो देव की नायिका कृष्ण को मात्र देखने के लालच में उसकी 'चेरी' बन जाती है–

"देव कहू अपनो बस ना रस लालच लाल चितै भईं चेरी।
बेगि ही बूड़ि गईं पखियाँ अँखियाँ मधु की मखियाँ भईं मेरी।।"[25]

डॉ. बच्चन सिंह को बिहारी का 'प्रेम क्रीड़ात्मक' तथा 'देव का आवेगात्मक' लगता है। देव के वियोग वर्णन को बिहारी और पद्माकर से गंभीर मानते हुए वे कहते हैं– "वियोग में भी देव की रसग्राही प्रवृति अवसाद–विषाद में अन्य बद्धरीति के कवियों की अपेक्षा कहीं गहरे धंस रही हैं।"[26]

भाषा पर देव और बिहारी दोनों का जबरदस्त अधिकार था। देव की काव्यभाषा में शब्दों के तोड़–मरोड़ को लेकर लाला भगवानदीन और आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कई आरोप लगाए हैं। उसका विस्तृत उत्तर डॉ. नगेन्द्र ने अपनी पुस्तक 'देव और उनकी कविता' में दिया है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार– "इसमें संदेह नहीं कि शब्दों का रूप भी विकृत हुआ है; परन्तु कठिन से कठिन तुकांत का निर्वाह जिस सफाई और सरलता से किया गया है उससे उनके भाषाधिकार में भी संदेह नहीं रह जाता।"[27] डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने देव की काव्यभाषा में व्यक्त ध्वनि के संदर्भ में अपनी पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी काव्यभाषा' में कहा है– "देव की ध्वनि संवेदनशीलता रीतिकालीन काव्यभाषा में अप्रतिम है।"[28] किन्तु इसके साथ ही वे बिहारी के संदर्भ में भाषागत ध्वनि को मुगलकालीन कला से जोड़ते हुए कहते हैं– "ध्वन्यात्मक और व्याकरणिक दोनों स्तरों पर कवि की यह भाषिक तराश रीतिकालीन मनोवृत्ति और मुगलकालीन बारीक पसंदी के समानांतर चलती है। इस संदर्भ में बिहारी को रीतिकालीन काव्य भाषा का सृष्टा कहा जा सकता है।"[29] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि देव और बिहारी रीतिकाल के महत्वपूर्ण कवि हैं। दरबारी कवि होते हुए भी देव प्रेम की एकनिष्ठता पर बल देते हैं। स्वकीया नायिका के महत्व को स्वीकारते हुए गृहस्थिक प्रेम की बात करते हैं। इनका श्रृंगार वर्णन ऊहात्मक न होकर गंभीर है। इन्होंने विरह का हृदयग्राही वर्णन किया है। काव्य रचना के साथ–साथ ये काव्यांगों का भी विवेचन करते हैं जिसमें हमें कुछ मौलिकता भी देखने को मिलती है। बिम्ब विधान अर्थात चित्रात्मकता देव के काव्य का अन्यतम गुण है। संभवतः रीतिकाल में देव सबसे अधिक काव्य ग्रंथों (72) की रचना करने वाले कवि हैं, जबकि बिहारी ने एक ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' की रचना की है। बिहारी के प्रेम वर्णन में भी वह गंभीरता नहीं है जो देव के यहाँ दिखाई पड़ती है। बिहारी ने स्वकीया की अपेक्षा परकीया नायिका के हाव–भाव का अधिक चित्रण किया है। जहाँ तक कम शब्दों में अधिक कहने का प्रश्न है, तो निश्चित तौर पर 'कल्पना की समाहार शक्ति के साथ', 'भाषा की समाहार शक्ति' के क्षेत्र में बिहारी से बढ़कर दूसरा कवि रीतिकाल में नहीं हुआ है। उक्ति चमत्कार इनके काव्य की अन्यतम विशेषता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में देव और बिहारी के छोटे–बड़े का जो विवाद है, वह तुलनात्मक आलोचना की देन है जिसमें (रचनागत साम्य ढूँढ़ते हुए) काल एवं स्थान की सीमा को लाँघकर आलोचकगण गाथा–सप्तशती एवं आर्या–सप्तशती तक पहुँच जाते हैं तथा एक चली आती हुई साहित्यिक परंपरा का उद्‌घाटन करते हैं। इस विवाद के कारण ही देव और बिहारी सहित तमाम रीतिकालीन दरबारी कवियों की रचनाओं को केवल सामंती विलासिता के काव्य न मानकर उसे देखने–समझने के नए आयाम विकसित होते हैं। पक्षपात के साहित्यिक मूल्य को भी अंशतः इसी संदर्भ में स्वीकार किया जा सकता है। साहित्य जगत में आज इसे केवल एक रोचक घटना के रूप में ही याद नही किया जाना चाहिए बल्कि उन तथ्यों की भी पड़ताल जरूरी है जो इन्हें एक बड़ा कवि बनाती है। संभवतः देव और बिहारी पर की गई तमाम आलोचनाओं की सार्थकता भी इसी में है।

संदर्भ–सूची :–

1. बन्धु, मिश्र, हिंदी नवरत्न, गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, छठी आवृत्ति 1961, पृ. 42.
2. वही, पृ. 42.

3. मिश्र, पं. कृष्णबिहारी, देव और बिहारी, गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, चौथी आवृत्ति–1965, पृ. 139.
4. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण–2002, पृ. 364.
5. मिश्र, पं. कृष्णबिहारी, देव और बिहारी, गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, चौथी आवृत्ति–1965, पृ. 38.
6. वही, पृ. 236.
7. वही, पृ. 237.
8. त्रिपाठी, विश्वनाथ, हिंदी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, नौंवी आवृत्ति–2006, पृ. 38.
9. वही, पृ. 38.
10. शर्मा, पं. पद्मसिंह, बिहारी की सतसई, प्रकाशक – काशीनाथ शर्मा, काव्य कुटीर, पो. चाँदपुर, जिला–बिजनौर, चतुर्थ संस्करण, 1991 वि., पृ. 37.
11. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण–2002, पृ. 263.
12. वही, पृ. 364.
13. वही, पृ. 115.
14. वही, पृ. 147.
15. वही, पृ. 146–147.
16. डॉ. नगेन्द्र, देव और उनकी कविता, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, पृ. 47.
17. वही, पृ. 150.
18. वही, पृ. 99.
19. वही, पृ. 98.
20. रत्नाकर, श्री जगन्नाथदास, बिहारी रत्नाकर, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण–2008, पृ. 305.
21. मिश्र, पं. कृष्ण बिहारी, देव ओर उनकी कविता, पृ. 168.
22. वही, पृ. 21.
23. वही, पृ. 42.
24. डॉ. नगेन्द्र, देव और उनकी कविता, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, पृ. 30.
25. मिश्र, विद्यानिवास (सं.), देव की दीपशिखा, पृ. 16.
26. सिंह, बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. 203.
27. डॉ. नगेन्द्र, देव और उनकी कविता, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, पृ. 240.
28. चतुर्वेदी, डॉ. रामस्वरूप, मध्यकालीन हिंदी काव्यभाषा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, कलकत्ता, प्रथम संस्करण–1974, पृ. 70.
29. वही, पृ. 64.

मन रे! जागत रहिए भाई

अलख जगाती कबीर की वाणी और उनकी सामाजिक चेतना

अंकिता शाम्भवी वर्मा*

कबीर एक ऐसे विचारक थे जिन्होंने अपने विचारों को समाज तक पहुँचाने के लिए निरंतर समाज से विद्रोह किया। उनकी वाणी जितनी स्वयं के लिए थी उतनी ही उस समाज के लिए भी, जो दिग्भ्रमित था, जिसमें तमाम तरह की धार्मिक विकृतियाँ आ गयी थीं, जाति–नस्लगत संकीर्णता, छुआछूत, मूर्तिपूजा, छाप–तिलक, बलि–प्रथाएँ, वेद–कतेब में अंधभक्ति अपने चरम पर थीं। कबीर ने इन समस्याओं को करीब से परखा व इन जंजालों में फँसे मानव की पीड़ा समझी। 'जड़–चेतन', 'धर्म–समाज', 'नश्वर–अनश्वर' को पूरी तरह से जानने–समझने, उन्हें आजमा कर देख लेने के बाद ही वे इस संसार को 'काजर की कोठरी' बतलाते हैं और मनुष्य मात्र को इन विकृतियों, बंधनों से मुक्ति की राह दिखाते हैं, अलख जगाते हैं।

बीज शब्द :– कबीर की सामाजिक चेतना, निर्गुण–भक्ति, अवधूत, सतगुरु, साँच।

"भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे–तमस्तूर्य दिङ्मण्डल,
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान,
है ऊर्मिल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल।"[1]

कवि निराला के शब्दों में भक्तिकाल की यही पृष्ठभूमि है। चौदहवीं शती के प्रथम चरण तक आदिकाल का स्वर मंद पड़ गया था। इस समय हिन्दू–मुस्लिम दो प्रबल संस्कृतियों की टकराहट निरंतर जारी थी। हर क्षेत्र में द्वैत विद्यमान था, चाहे वो धर्म–संकृति हो या लोक–मन। पंडित–मुल्ला अपना–अपना राग आलाप रहे थे, जितने धार्मिक–ग्रंथ थे, उतनी बातें, सगुण–निर्गुण का अलग विवाद कायम था। लोग हारे हुए मन लिए भ्रम की स्थिति में लिप्त थे, लोक–की चिंता करें या परलोक की। रोग–शोक, गरीबी–बदहाली से पीड़ित जनता पर इस्लाम का प्रभुत्व था, धर्म की सत्ता आज की तुलना में कहीं अधिक प्रबल थी। उस समय 'दुई पाटन के बीच में' जिस तरह साधारण जनता पिस रही थी, आज भी उसकी वही स्थिति है। पूरे विश्व में एक कठिन महामारी फैली हुई है। लेकिन अद्भुत था वह समय जब ऐसे संत्रास से मनुष्य को उबारने के लिए कबीर जैसे अवधूत ने जन्म लिया। आज हमारे समय का सबसे भीषण दुःख है कि संकट के काले बादलों से हमें उबारने वाला कोई नहीं है। तमाम राजनेता और संस्थाएँ छल का मुखौटा लगाए असहाय जनता को और सता रहे हैं। जितना संघर्ष है उतने ही अत्याचार। उस काल में भक्ति–आंदोलन की स्त्रोतस्विनी ऐसी फूटी कि उसने सर्वसाधारण के दीर्घतप्त मन–प्राण को भीतर तक सींच दिया। जो समाज टूट कर बिखर जाने के कगार पर खड़ा था, वह संभल गया, नयी शक्ति पा गया।

कबीर के लिए न तो धर्म महत्त्वपूर्ण था, न तो जाति, वे मनुष्य–मात्र को उसके सच्चे रूप में देखने के हिमायती थे। कबीर खालिस विचारक नहीं थे, उन्हें कुछ लोग पंथी मानते हैं, धर्म–सुधारक या समाज–सुधारक मानते हैं, भगवान तक मानते हैं। प्रख्यात आलोचक प्रोफेसर आशीष त्रिपाठी कबीर को "एक ऐसा मुखर कवि मानते हैं, जो मूलतः विचारक है, और उसकी कविताएँ, संवेदनाएँ, भावनाएँ, उसके विचारों के पीछे चलती हैं। कबीर ने अपने विचारों का एक कॉम्पोजिशन बनाया और उन्हें अपनी युगीन परिस्थितियों

*** शोध–छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।**

के समानान्तर रखकर नए ढंग से व्याख्यायित किया, उन्हें जनता के बीच प्रसारित करने के लिए संघर्ष किया, इन विचारों को मात्र कहकर छोड़ भर नहीं दिया।"[2]

कबीर ने सत्संग का रास्ता चुना, इस सत्संग में भी वही लोग शामिल हो सकते थे जो सच्चे 'साधो' थे, जैसे कबीर स्वयं थे, वे जुलाहे थे, परिश्रम करते थे, उनका 'साधो' स्वयं को साधने के साथ–साथ काम करता था, परिश्रम करता था, ये कोई बैठे–ठाले का व्यक्ति नहीं था। सत्संग एक तरह की क्रांतिकारी कारवाई थी कबीर के लिए। ईश्वर का सुमिरन करते हुए समाज में अपने क्रांतिकारी परिवर्तनगामी विचारों को पहुँचाना ही कबीर का सत्संग था। एक धर्म सुधारक और एक क्रांतिकारी में यही मूल फर्क होता है, धर्म सुधारक समाज में कोई बड़ा परिवर्तन लाए बिना, उसकी थोड़ी–बहुत कमजोरियों को ही हटाता है और समाज को मूल रूप से यथा–स्थिति बने रहने देता है। कबीर समाज में कोई छोटा–मोटा परिवर्तन नहीं करना चाहते थे। समानता, स्वतन्त्रता, बंधुत्व, न्याय, लोकतांत्रिकता या जनतांत्रिकता ये 5 तत्त्व कबीर के समय में क्षीण हो चुके थे, इन तत्त्वों को स्थापित करने के लिए कबीर समाज को मूल से बदल देना चाहते थे, उसका समूचा परिवर्तन कर देना चाहते थे। कबीर ने समझौते का रास्ता न चुनकर विद्रोह का चुना।

कबीर की कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता है रूढ़ियों को चुनौती देने की शक्ति और सवाल करने का अदम्य साहस। चूँकि ये साहस किसी वेद–कुरान से नहीं आया था, तभी उनके प्रश्नों से कोई धर्मतंत्र, कोई सत्ता बच नहीं पायी। सच कहने की उनकी निर्भीकता अद्‌भुत है :

"साँच ही कहत और साँच ही गहत है
काँच कूँ त्याग कर साँच लागा।"[3]

ऐसे सत्य को पाने के लिए कबीर ने पहले से बनी–बनाई मनुष्य की पहचान को सिरे से खारिज कर दिया। उस समय समाज में मनुष्य की पहचान के दो आधार थे। पहला था धर्म, जिसके अनुसार प्रत्येक मनुष्य हिन्दू या मुसलमान था। कबीर ने दोनों धर्मतंत्रों को अपने सवालों के कठघरे में लेकर फटकारा है :

"अरे भाई दोइ कहा सो मोही बतावौ, बिचही भरम का भेद लगावौ।।टेक।।
जोनि उपाइ रची द्वै धरनीं दीन एक बीच भई करनी।
राम रहीम जपत सुधि गयी, उनि माला उनि तसबी लई ।।
कहै कबीर चेतहु रे भौंदू, बोलनहारा तुरक न हिन्दू ।। 56 ।।"[4]

समाज का दूसरा आधार था जातिगत भेद, जिसके आधार पर मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र था। ऐसे कठिन पाटों के बीच अभिशप्त जनता को देखकर कबीर रो उठते हैं। लेकिन उनका रोना सामान्य नहीं है,वे अपने दुःख से ही दुःखी नहीं रहते। उसमें अपनी आत्मा की आर्त्तवाणी तो है ही, समाज की भी चिंता है, इस रुदन में बुद्ध की करुणा निहित है, यह रुदन जागरण का अनूठा छंद है, वे सारे संसार के लिए रोते हैं :

"मैं रोऊँ संसार को, मोको रोवै न कोइ
मोकौं रोवै सो जनाँ, जो सबद बिबेकी होइ"[5]

विषय–वासनाओं से भरी इस दुनिया में मनुष्य अपनी मति खो बैठता है। माया तो मोहिनी है, उसका काम ही है तिरगुण फाँसी लिए डोलना। कबीर ने कहा है :

"कबीर माया मोहनी, जैसी मीठी खाँड।
सतगुर की कृपा भाई, नहीं तो करती भाँड़।।7।।"[6]

कबीर किसी 'वाद' में विश्वास नहीं रखते थे, कबीर जिन मुल्लों और पंडों को फटकारते हैं, वे ईश्वर कहने से किसी एक प्रतीक का ध्वनित होना समझते थे, उन लोगों को 'राम' कहते ही दाशरथी राम और 'खुदा' कहते ही किसी मस्जिद पर बाँग देता हुआ मुल्ला समझ आता था। तो आखिर कबीर का यह राम या खुदा है कौन? वह जिसका कोई रूप, आकार, नाम कुछ भी नहीं है, वो एक ज्योति जिससे सृष्टि का हर मनुष्य उत्पन्न हुआ, उसी में कबीर ने अपना मन रामा लिया है, जिसके बाद राम या अल्लाह किसी

का कोई गम नहीं रह जाता है, ये परमतत्त्व थोथे ज्ञान और मूढ़ों की कल्पनाओं से बाहर की वस्तु है। तभी कबीर कहते हैं :— "अलह राम की गम नहीं, तहाँ कबीर रहा ल्यौ लाय।"[7]

गुरु रामानन्द ने कबीर को राम और उनकी भक्ति रूपी रत्न सौंपा था, जिसे पाकर कबीर को मानों सब कुछ मिल गया, इसी भक्ति—रत्न ने उन्हें सबसे विलक्षण बना दिया, वे अक्खड़ योगियों, पंडों, मुल्लाओं, बोझिल तत्त्वज्ञान सबसे अलग और श्रेष्ठ हो गए। सारी दुनिया भटकती रह गयी, और कबीर को सत्य का ज्ञान हो गया कि उस हरि के सिवा इस पृथ्वी पर कोई भी अपना नहीं है। इस प्रेम—भक्ति और गुरु—कृपा का उनपर अद्भुत प्रभाव पड़ा। लेकिन माया को त्यागने पर जो दुःख नहीं हुआ, वह राम को पाने में हुआ। राम को पाना बड़ी बात है, और उसकी साधना बेहद कठिन, तिस पर भी वे राम जिनका कोई रूप—गुण—आकृति ही न हो, तभी तो कबीर कहते हैं 'हँसी—हँसी कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोइ'। उसे पाने का इच्छुक, भले राजा हो या रंक, उसे एक कसौटी को पार करना होगा और वह कसौटी है सिर उतारकर धरती पर रखना। इसमें धूर्तों और कायरों की दाल नहीं गलेगी, यहाँ उथला प्रेम, आडंबर कुछ नहीं चलेगा, हरि में मिल जाने की सच्ची साध और अटूट विश्वास ही इस भक्ति का एकमात्र आधार होगा, कबीर कहते हैं :

"प्रेम न खेतौं नीपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा—परजा जिस रूचे, सिर दे सो ले जाय।।"[8]

कबीर की साधना में कच्चापन नहीं था, संशय, लोभ, असंयम, अविश्वास, भय, शिकायत कुछ भी नहीं था, उनकी भक्ति अडिग—अटूट थी, उसमें कहीं अतिशय—सरलता है तो कहीं उत्कट निरीहता, कबीर कहीं तो 'हरि मेरा पिउ मैं, हरि की बहुरिया' कहते दिखते हैं, तो कहीं 'कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाऊँ, गले राम के जेवड़ी, जित खींचौ तित जाऊँ', कहकर आत्मसमर्पण का चरम दृष्टांत देते हैं। हरि जैसा रखे, वो वैसे ही रहने को अपना कर्त्तव्य समझते हैं। इसी सच्ची—भक्ति का संदेश वे जन—मन को देते हैं। इस एक मानुष—जनम को अगर यूँ ही लोभ—लालसा में पड़कर गँवा दिया तो क्या किया! इसलिए वे समय रहते सभी को जागकर प्रभु—भक्ति में मन लगाने की बात बार—बार कहते हैं :

"कबीर सोता क्या करे, क्यों नहिं देखै जाग।
जा के सँग से बीछुड़ा, वाही के सँग लाग।।"[9]

वे कहते हैं अधिकांश समय तक तो तू भोग—विलास में उलझा रहा, और बाकी समय तूने सोकर गँवा दिया, जब एक पल भी ईश्वर की भक्ति न की तो मुक्ति कैसे मिलेगी तुझे?

"पाँच पहर धंधे गया, तीन पहर रहे सोय।
एको घड़ी न हरि भजे, मुक्ति कहाँ तें होय।।"[10]

कबीर ने अपने जीवन पर्यंत जो कुछ भी कहा, उसका फलक बड़ा है, उनके विचारों के आधार पर लोगों ने अपने—अपने ढंग से उन्हें विश्लेषित किया है, कुछ ने उन्हें भक्त समझा, कुछ ने योगी, कोई उनके ज्ञानी रूप से प्रभावित हुआ तो कोई उनके भावात्मक रहस्यवाद से। लेकिन कबीर ने जो जीवन जिया, भोगा, देखा और उसे निचोड़ कर अपना जो समाज—दर्शन बनाया, वह सबके पल्ले पड़ने की बात नहीं थी। कबीर की माया जितनी ठोस और वास्तविक थी, उतनी ही उनकी निर्गुण भक्ति और उनके 'पिउ' राम! आचार्य नामवर सिंह इसी के बारे में लिखते हैं— "माया की तरह ही कबीर के निर्गुण राम काफी भौतिक हैं— 'भौतिक और 'वास्तविक'। सगुण से किसी भी मायने में कम मूर्त्त नहीं। जिस निर्गुण से मंदिर और मस्जिद की नींव हिल गयी, ब्राह्मण और शेख विचलित हो गए, वेद—कुरान की विश्वसनीयता संदेह के घेरे में आ गयी, वह एकदम हवाई चीज नहीं हो सकती। निर्गुण ऐसा 'ज्ञान' है जिसे कबीर कभी तीर कहते हैं और कभी तलवार। स्वयं कबीर के हृदय में यह ज्ञान तीर की तरह चुभा था, लेकिन कबीर के विरोधियों की नजर में वह चमचमाती हुई तलवार थी। जो ज्ञान न हिन्दू, न मुसलमान हो, और जो ब्राह्मण शूद्र के भेद को भी नकारता हो, उसका नाम निर्गुण के अलावा और हो भी क्या सकता है। सभी स्थापित मान्यताओं का निषेध ही निर्गुण है.... निर्गुण को स्वीकार करके ही कबीर ने बाकी सबको अस्वीकार करने का साहस हासिल

किया। कहना न होगा की 'निर्भय निर्गुण' गाने वाले कबीर के अंदर कोई गहरा अस्वीकार है। यह निर्गुण कोई रहस्य नहीं, बल्कि क्रान्तदर्शी कवि की उदात्त कल्पना है, सभी वांछित मूल्यों और सपनों का संभाव्य मानचित्र।"[11]

कबीर का सच कोई वायवीय, स्थूल सच नहीं था, उनका पथ, उनके बाट क्या हैं? 'मैं कातौं सूत हजार (हजारी का सूत) चरखा जिति जरें'– यह सारे प्रतीक, सारे बिम्ब समाज के लिए नहीं तो और किसके लिए हैं? उन्होंने काव्य–कर्म को श्रम से जोड़ा था, और नए समाज की स्थापना के लिए वे ऐसे ही श्रमशील लोगों का आह्वान करते हैं, उन्हें जगाते हैं।

कबीर फक्कड़ थे, उनकी भाषा खरी थी, उसमें हर उस रूढ़ि को तोड़ने की ठसक थी जो मनुष्य का मूलभूत हक मारती है,उसपर अत्याचार करती है, उसे माया–प्रपंच के फेर में डालती है और सत्य से रू–ब–रू नहीं होने देती। आचार्य नामवर सिंह ने उनकी रहस्यभावना और उलटबांसियों का कारण उनके दुःख को माना है। यह दुःख कैसा? इस बात का कि आँखों में नए समाज का निर्माण करने का स्वप्न तो है, मानचित्र तो है, पर साधन नहीं, वह नक्शा आँखों में तो है, मन में भी है लेकिन समाज में नहीं। कबीर का दुःख भी उन्हीं की तरह है, विरोधाभासों से भरा हुआ, विडंबनाओं से युक्त। यही वेदना, यही विवशता उनकी लोक–मार्जित भाषा में, उलटबांसियों के माध्यम से प्रकट होती है।

'एक जोति से सबै उत्पन्ना को बाभन को सूदा' मानने वाले कबीर किसी भी संत या समाज–उद्धारक से कहीं आगे हैं। वे जनम–मरण के बाद होने वाले तमाम संस्कार और श्राद्ध का निषेध क्यों करते हैं? क्योंकि उनका संदेश यही है कि जीवित रहते ही उस मनुष्य से स्नेह कर लो, जीवित पिता की सेवा–श्रद्धा कर लो। 'Each according to his needs' समाजवाद का सिद्धान्त है लेकिन यह बिना 'सबद–विवेक' के समझ नहीं आता। वे निषेध नहीं करते, संग्रह का निषेध करते हैं, उलीचने की बात कहते हैं, जैसे नाव में पानी बढ़ जाए तो उलीचना जरूरी है। उनका दर्शन तो था– 'मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय।' इन संदर्भों को अब चाहे हम गृहस्थी के अर्थ में लें या आध्यात्म के, कबीर की वाणी श्लेष पूर्ण है, सर्वांग पूर्ण भी।

निष्कर्ष :

कबीर एक ऐसे समानान्तर पर खड़े होते हैं, जहाँ से निःसृत उनकी वाणी के आयाम उन्हीं के समान अनंत हैं। जिसे जैसे मन भाए, वह उसे वैसे ही ग्रहण करे, शर्त केवल एक कि उस ग्रहण करने में जीव का कल्याण निहित हो। 'मोको कहाँ ढूंढै रे बंदे मैं तो तेरे पास में' कहने वाले कबीर के अनुसार आपका ईश्वर, आपका खुदा आप ही की देह में मौजूद है, मानव–प्रेम सर्वोच्च है। यही मानव–एकता का आधार है। कबीर और समस्त संत–परंपरा की यही सबसे बड़ी देन है कि वह मनुष्य और मनुष्य के बीच तथा मनुष्य और ईश्वर के बीच फर्क करने वाली, मध्यस्थ बनने वाली बड़ी से बड़ी ताकत का प्रबल विरोध करती आई है। एक मानव–समाज, एक मानव–धर्म और एक मानव–संस्कृति का सुंदर सपना ही कबीर और उनके समान सभी निर्गुण संतों की विरासत है, जिसे अपनी आगे की पीढ़ियों को सौंपने के लिए वे तमाम रूढ़िवादी–प्रतिगामी शक्तियों से स्वयं निरंतर जूझते हैं, चोट खाते हैं, चुनौती देते हैं, लेकिन हारते नहीं और न ही अपने समान किसी भी मनुष्य को हारने देना चाहते हैं, इसलिए 'दुखिया दास कबीर है, जागै और रोवै'।

आज जरूरी है कि कबीर का यह 'सत्व' बचा रहे, उस विराट मनुष्यता की खातिर जो एक मानवीय–जीवन जीने की आकांक्षा को सदियों से अपने अंतस में संजोए नारकीय स्थिति भोग रही है। कबीर की कविता इसी रैन–दिन जागकर, जूझते रहने की, संघर्ष की कविता है, आत्मा की मुक्ति की आकांक्षा में आजीवन जूझते हुए भी अपनी जीवन की चादर को बेदाग रखने की आकांक्षा की कविता। इस आकांक्षा को नैनों में लिए हुए कबीर तो अपना 'घर' फूँककर, हाथ में मुराड़ा लेकर, मस्ती में निकल पड़े थे, और इस

साधना के पथ पर वे उसी को संगी बनाने को तैयार थे जो उनके हाथों अपना भी घर जलवा देने को प्रतिबद्ध हो, तभी वे कहते हैं :

"हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा हाथ।
अब घर जारौं तासु का, जो चले हमारे साथ।"[12]

इस घर–फूँक मस्ती के अंदाज में वो सभी को चेताते हैं, उनके पाँव हमेशा जमीन से जुड़े हुए थे, वो ललकारते हैं, झिड़कते हैं, बिलकुल अभिभावक की तरह ही अपनी कान–उमेठती हुई वाणी में मानव–मात्र को उठ खड़ा होने कहते हैं, मुक्ति के स्वप्न को पा लेने की साधना करने के लिए जगाते हैं। कितनी शक्ति थी उनकी विद्रोही वाणी में जो अपनी जमीन से लेश–मात्र भी डिगे बिना आजीवन गूँजती रही, अकेली गूँजती रही और मनुष्य के भ्रम–कपट का ताला तोड़कर उसकी तन्द्रा से उसे निरंतर जगाती रही :

"भ्रम का ताला लगा महल रे, प्रेम की कुंजी लगाव।
कपट–किवड़िया खोल के रे, यहि बिधि पिय को जगाव।।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, फिर न लगै अस दाव।।"[13]

संदर्भ–सूची :–

1. 'निराला रचनावली', नन्द किशोर नवल (सं.), द्वि. संस्करण –1983, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, पृ. 267।
2. कबीर पोंगड़ा अलह राम का'–व्याख्याता– प्रो. आशीष त्रिपाठी (हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय), 'कबीर जनविकास समूह', इंदौर द्वारा आयोजित फेसबुक लाइव कार्यक्रम, आयोजन की तिथि –25 जनवरी 2021।
3. 'कबीर और आज का समय'–मैनेजर पांडेय, पुस्तक–कबीर की खोज, राजकिशोर (सं.), संस्करण –2001, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 194।
4. कबीर ग्रंथावली, सम्पादन एवं व्याख्या– कमला पति पाण्डेय, संस्करण –2015, शुभदा प्रकाशन, दिल्ली, पद सं. –56, पृ. 429।
5. 'कबीर का दुःख'– नामवर सिंह, पुस्तक– कबीर की खोज, राजकिशोर (सं.), संस्करण –2001, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 188।
6. कबीर ग्रंथावली, डॉ. श्यामसुंदर दास (सं.), नवीन संस्करण –1985, वैभव लक्ष्मी प्रकाशन, वाराणसी, दोहा सं.–7, पृ. 87।
7. कबीर, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, संस्करण–1990, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, पृ. 112।
8. कबीर, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, संस्करण–1990, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, पृ. 129।
9. संतों की बानी, राधास्वामी सत्संग ब्यास, 25 वाँ संस्करण–2013, मुद्रक–थॉम्सन प्रेस (इंडिया) लि., पृ. 156।
10. संतों की बानी, राधास्वामी सत्संग ब्यास, 25 वाँ संस्करण–2013, मुद्रक– थॉम्सन प्रेस (इंडिया) लि. , पृ. 155।
11. भक्ति आंदोलन और काव्य, गोपेश्वर सिंह, प्रथम संस्करण–2017, पृ. 74।
12. कबीर, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, संस्करण–1990, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, पृ. 126।
13. कबीर, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, संस्करण–1990, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, पद सं. 38, पृ. 201।

‘आल्हखंड’ की स्त्री-पात्रों का बहुआयामी रूप : एक अवलोकन

अभिनव *

आल्हखंड आदिकालीन साहित्य की अमूल्य निधि एवं 12वीं शताब्दी की तत्कालीन सामन्ती व्यवस्था का प्रतिबिंब दर्शाती महत्वपूर्ण कृति है। आल्ह खंड न केवल राजनैतिक परिदृश्य में साहित्येतिहास का प्रमुख स्रोत ग्रंथ है अपितु यह भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित एक लोक काव्य भी है। जिसका निरंतर पठन–पाठन लोक कण्ठ में हिन्दी की बहुआयामी क्षेत्रीय बोलियों के रूप में हुआ। आल्ह खंड का भाषायी एवं भौगोलिक क्षेत्र विस्तार अति विस्तृत है। आल्ह खंड की विषय–वस्तु में भी विविधता को देखा जा सकता है। जहाँ एक ओर आल्ह खंड संबंधों, शौर्य–पराक्रम, सामंतवादी समृद्धता, युद्ध प्रदर्शन, षड्यंत्रों आदि प्रसंगों के लिए प्रसिद्ध है वहीं प्रेम, ईश्वरीय आस्था, स्त्री शक्ति व मर्यादा आदि की परिचायक कृति के रूप में भी आल्ह खंड सामान्य जनमानस के मध्य विख्यात है। स्त्री की महिमा व उसके समर्पण का जीवंत उदाहरण आल्ह खंड की सुनवा, मल्हना, गजमोतिन, बेला आदि स्त्री पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत कृति में वर्णित है। यह सभी सामन्ती वर्ग से संबंधित पात्र हैं। परंतु इनके अतिरिक्त भी अनेक स्त्री पात्रों का दर्शन आल्ह खंड में होता है जो कहीं गौण व कहीं प्रधान रूप में अपना महत्व रखती हैं। आल्ह खंड में स्त्री पात्रों के संवादों के माध्यम से उनके चारित्रिक गुण–दोषों का बहुआयामी वर्णन हुआ है जो किन्हीं प्रसंगों में कुशल गृहिणी, आदर्श पुत्री, बहन, पत्नी, दासी, स्वाभिमानी स्त्री इत्यादि तो कहीं दूरदर्शी, प्रशासनिक सूझ–बूझ, परामर्शदाता तथा आभिजात्य वर्ग का दंभ रखने वाली स्त्री रूप में द्रष्टव्य है। आल्ह खंड पूर्ण रूपेण स्त्री वर्ग के बहुआयामी रूप से समावेशित रचना है। जहाँ ‘माँ शारदा’ व ‘मनिया देवी’ का शक्ति रूप ‘आल्हा’ के माध्यम से दर्शनीय है वहीं बनाफर वीरों को आश्रय देकर व उनका लालन–पालन कर एक मातृत्व भाव के परिचय रूप में रानी मल्हना दृष्टिगोचर है।

यह ध्यातव्य है कि स्त्री को समाज में उस प्रकार की स्वतंत्रता कदापि प्राप्त न हो सकी जो पुरुषों को प्राप्त थी। ”कन्याओं का बलात अपहरण और उसके कारण युद्ध एक आम बात थी। इसलिए माता–पिता के लिए कन्या जन्म सुखद बात नहीं थी। हर तरह की परतंत्रता से स्त्रियाँ जकड़ी हुई थीं। जो कन्याएँ अपने बड़ों और कुल की इज्जत का ध्यान रखतीं, वे अपनी इच्छाएं लज्जावश व्यक्त नहीं कर पातीं और दुःख सहती रहती थीं। सामान्यतः नारी दुर्बलता का प्रतीक समझी जाती थी। क्रूर–कामुक पुरुष उन्हें अपना बनाने के लिए धमकी भरे पत्रों, भद्र–प्रदर्शन और आक्रमण का सहारा लेते थे।”[1] यद्यपि स्त्री वर्ग के अनेक उदाहरण इतिहास में मिल जाते हैं। जो पुरुष के समान सामर्थ्यवान हैं इनमें झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई प्रमुख रूपेण नारी सशक्तिकरण की महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। जिनका संबंध जीवनपर्यंत बुंदेलखंड अर्थात् आल्ह–ऊदल की जन्म व कर्मभूमि से रहा। तत्कालीन देशकाल वातावरण में स्त्री प्रायः उपभोग की वस्तु मानी जाती थी। पारिवारिक प्रतिष्ठा के प्रतीक रूप में इनका समावेश था। किसी राजा के राज्य पर आक्रमण करने के दो प्रमुख कारण थे एक राज्य विस्तार, दूसरा स्त्री की प्राप्ति। आल्ह खंड में भी इन दो कारणों से युद्धों का उत्सर्जन दर्शनीय है। परंतु आल्ह खंड में स्त्री का आदर्श प्रेमिका व पत्नी रूप मुख्यतः द्रष्टव्य है जहाँ वह युद्ध में भी अपने सच्चे प्रेम का सहयोग करती है। सुनवा (मछला) राजा नेपाली (राघोमच्छ) की पुत्री, नैनागढ़ पर आक्रमण के समय आल्हा से ही विवाह करने का संकल्प करती है।

”लगी लालसा दिल के अंदर केहि मिलें बनाफर राय।
मछुला बेटी रागोमच्छ की मनमें ठीक लीन ठहराय।।
ब्याही जैबे आल्हा संगमें या तो मरब जहर खाय।

*** शोधार्थी–हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविदयालय, धर्मशाला, हि.प्र.–176215।**

छाय उदासी गै सूरत पै माता पूंछै कण्ठ लगाय।।"[2]

युद्ध में बनाफरों की पराजय को देख वह अमर ढोल आल्हा को सौंप देती है। जिससे राजा नेपाली की पराजय होती है और आल्हा व सुनवा का विवाह संपन्न होता है।

"बाति मानि लइ तब राजाने अम्मर ढोल दई मंगवाय।
ढोलक लैके रानी आई औ सुनवा को दई गहाय।
बहुत खुशीह्वई सुनवा बेटी अपनी संखियां लई बुलाय।
देवी पूजन सुनवा चलिभई औ मठिया में पहुँची जाय।।
ढोल बजावत सुनवा आई बैठे जहाँ उदयसिंह राय।
करो इशारा तब ऊदनि को अम्मर ढोल दई धरवाय।।"[3]

इसी प्रकार मलखान को भी गजमोतिन के प्रेम को पाने के लिए राजा गजराजा व राजकुमार गजमोती से युद्ध करना पड़ता है। युद्धोपरांत विवाह सम्पन्न होने के पश्चात मलखान व गजमोतिन सिरसागढ़ जा बसते हैं। इसी सिरसागढ़ पर पृथ्वीराज चौहान आक्रमण कर मलखान की हत्या कर देता है। जिस कारण पति वियोग में रानी गजमोतिन सती हो जाती है। यह नारी जीवन की तत्कालीन परिवेश में महान त्रासदी थी।

"यह कहि सुमिरि माता देवी को बैठी तुरत चितापर जाय।
सुमिरनकरिकै सतमल्हना को सरमें आगी लई लगाय।।
सती पुकारै सरके ऊपर जागौ जागौ कन्त हमार।।
सती ह्वइगइ गजमोतिन तब आल्हा ऊदनिको लै नाम।।
ऐसी सती भई गजमोतिन पहुंचो स्वर्गलोक में जाय।
यहि विधि पूरन भयो समय यह सो हम कहिकै दियो सुनाय।।"[4]

विदेशी आक्रांताओं से युद्ध में जब सैनिक वीरगति को प्राप्त हो जाते तब उनकी स्त्रियाँ, पुत्रियाँ, बहनें आदि अपने सतीत्व व आत्म सम्मान को बचाने के लिए जौहर या सती हो जाती थी। जो हिन्दू संस्कृति व भारतीय स्त्री की अमर महिमा का जीवंत रिवाज था। इसी प्रकार चंदेल राजा परमार्दिदेव के पुत्र ब्रह्मनन्द की पत्नी व पृथ्वीराज चौहान की पुत्री बेला भी ब्रह्मनन्द की मृत्यु पर सती हो जाती है। इसका वर्णन आल्ह खंड के बेला सती खंड में वर्णित है।

"सती न होवौ बेला रानी महुबे करो राज को काज।
आज्ञा मनिहें हम तुम्हरी सब सेवा करें बनाफर राय।।
पारस पूजा है तुम्हरे घर लोहा छुवत सोन ह्वइजाय।
तापर ज्वाब दियो बेलाने हमरे मन यहु नाहिं समाय।।
मन नहिं मानत समझायेते हमको सत्त दियो भगवान।
ह्वइहौं सती साथ स्वामी के हमरो जन्म सुफल होइ जाय।। "[5]

आत्म–सम्मान की रक्षा व पति वियोग में सती होने के अतिरिक्त जिन स्त्री आदर्श रूपों का आल्ह खंड में वर्णन मिलता है उनमें रानी मल्हना का प्रशासन व्यवस्था में दूरदर्शी परामर्श व अधिकार प्रमुख रूपेण दर्शनीय है। जहाँ सामंती वर्ग व्यवस्था में एक स्त्री के मार्गदर्शन पर राजा परमार्दिदेव पृथ्वीराज चौहान से संधि का प्रस्ताव स्वीकारते हैं तथा आल्हा–उदल रानी मल्हना के एक आदेश पर महोबा का युद्ध लड़ चौहान सेना से विजय प्राप्त करते हैं।

पाती लैके ऊदनि वाली सो मल्हना को दई गहाय।
पाती बाँची रनिमल्हना औ राजा को लियो बुलाय।।
हाथ में पाती दई राजा के राजा पाती बांचन लाग।
बहुत खुशी भाए पाती पढ़िके मल्हना बहुत खुशी ह्वैजाय।।
माहिल बोले तब कोठरीते बिछुरे लरका मिले तुम्हार।
कैद छोड़ि देउ बहिनी तुम ना घटि करिहौं साथ तुम्हार।।

चुगुली करिहौं न तुम्हरी कछु सो तुम मानौ कही हमारि।
दया करिकै तब मल्हना ने तुरते माहिल दियो निकार।।
चलिभै माहिल तब महलन ते औ बगिया में पहुँचे जाय।
हाल सुनायो पृथ्वीराज को आए यहाँ बनाफर राय।।"6

आदिकालीन हिन्दी साहित्य में विशेषकर, रासो साहित्य में स्त्री दैहिक रूप में उपलब्धिगत वस्तु मात्र समझी गई। उसके पास श्रृंगार व पारिवारिक कर्तव्य निर्वाह का अधिकार मात्र था। वह राजनैतिक–सामाजिक दायित्वों के निर्वाह से विलग रखी गई थीं। इसका कारण उन्हें पुरुष सत्तासीन समाज का सामंत व्यवस्था में अधिकारी न मान पाना था। वे प्रायः निर्बल मानी जाती थीं। उनकी बौद्धिकता घर की सीमाओं तक सीमित होकर रह गयी थीं। "नारियाँ पहले पुरुषों के मुकाबले शारीरिक और बौद्धिक रूप से हीनतर समझी जाती थीं। कानून और धर्मशास्त्र दोनों ही ने उनकी पराधीनता की व्यवस्था दे रखी थी। नारियाँ अपने नाम से कोई संपत्ति नहीं रख सकती थी, व्यवसाय नहीं कर सकती थीं।"[7] परंतु आदिकालीन हिन्दी साहित्य के तत्कालीन परिवेश में आल्ह खंड निहित स्त्री पात्र भी दृष्टिगत हैं, जो अपनी स्वतंत्रता व राजनैतिक हस्तक्षेप तथा सामाजिक दायित्वों का निर्वाह भी करती हैं। पितृ सत्तात्मक समाज में पिता के विरुद्ध प्रेम विवाह व सत्य का साथ देने के लिए अपने परिवार के विरुद्ध जाने की प्रवृत्ति भी आल्ह खंड की स्त्रियों में दिखती है। फिर वो चाहे माड़ौ गढ़ के राजा जम्बे की पुत्री बिजमा, राजा नेपाली की पुत्री सुनवा अथवा पृथ्वीराज चौहान की पुत्री बेला आदि के रूप हों। "सामंत पितृसत्तात्मक समाज के शासन, पितरों के विकसित रूप थे और पितृसत्ता से ही राजतंत्र तथा प्रजातंत्र दोनों का विकास हुआ। सामंती युग में आर्थिक असमानता के साथ ही सामाजिक असमानता भी बढ़ी।"[8] चूंकि राजतंत्र व प्रजातंत्र में शक्ति सम्पन्न परिवारों का प्रभाव रहता है अतः 12वीं शताब्दी में शक्ति तलवार के आधार पर प्राप्त की जाती थी। युद्ध में यौद्धा वीरगति को प्राप्त होता और स्त्रियाँ अपने सतीत्व की रक्षा में जौहर कर लेती। यह एक तरफ स्त्री जीवन के आदर्श रूप व त्याग समर्पण की भावना को दर्शाने वाली प्रथा थी वहीं दूसरी ओर आधुनिक काल में एक अन्याय रूढ़ि। चूंकि समय के साथ परिस्थितियाँ परिवर्तित हुई। फलतः इस प्रथा का भी अंत हुआ। परंतु इसके उपरांत भी स्त्री के आदर्शवादी व सांसारिक रूप में इस तात्कालिन प्रथा को समझा जा सकता है जिसमें वह परपुरुष के अनाचार से स्वयं की आत्म सम्मान रक्षा में स्वेच्छा से जौहर या सती होती थी और इसी कारण सामंती युग में स्त्री पुरुषों पर आश्रित रहने के कारण अनेक अधिकारों से वंचित रही।

रासो साहित्य के विस्तार व उसके प्रचार हेतु स्त्री के आकर्षण व सामाजिक रूचि के आधार पर विषय वस्तुओं का रचनाकारों ने चयन किया है। एक स्त्री का जहाँ वियोगी प्रेमिका व आदर्श पत्नी के रूप को प्रश्रेय दिया गया है, वहीं स्त्री के नख–शिख वर्णन की अभिव्यक्ति भी हुई है। रासो की उत्पत्ति के प्रथम चरण में विद्वानों ने जैन रास काव्य को प्रासंगिक माना है। यह रास काव्य भक्ति भाव से विभोर साहित्य निधि है। तत्कालीन परिवेशगत मापदंडों के आधृत रास काव्यों को बढ़ावा देने हेतु स्त्री के नख–शिख वर्णन भी हुए हैं। परंतु इसमें रीतिकालीन विलासी व अनैतिक कामुक प्रवृतियों का निरा अभाव है। ये प्रसंग विषय विस्तार हेतु केवल माध्यम मात्र है। "फागु का संबंध वसंतोत्सवों से होने के कारण उनमें नायिका के रूप–सौंदर्य, यौवन एवं प्रेमोन्माद के चित्रण को प्रमुखता मिली है। फिर जैन कवियों ने एसे मादक वातावरण में अपने चरित नायक को रखकर उनके संयम, शील एवं चरित्र की दृढ़ता का प्रतिपादन करते हुए अपनी रचनाओं की परिणति शांत रस में की है। फिर भी अपरोक्ष रूप में काव्य–रचयिताओं को नारी के सौंदर्य, यौवन एवं उसके हाव–भाव की व्यंजना के लिए पर्याप्त अवसर मिल गया है। जिसका उपयोग उन्होंने अपनी रचनाओं की आकर्षण शक्ति बढ़ाने में की है।"[9] इन रास काव्यों के पश्चात 9 वीं शताब्दी से प्रारंभ होने वाले रासो साहित्य की विषय वस्तुओं में स्त्री के श्रृंगारिक, गृहस्थ, सामाजिक–सांस्कारिक अनेक रूपों का समावेश है। साथ ही रोचकता, बोधगम्यता व सामाजिक रूचि के परिदृश्य में विविध प्रसंगों का समावेश हुआ है जो स्त्री पात्र रूपों के आधृत हैं। आल्ह खंड में जादू–टोना अंधविश्वास, पुनर्जन्म आदि का प्रसंग भी सन्निहित है। स्त्री का कहीं पुनर्जन्म होता है कहीं वो जादू का खेल करती द्रष्टव्य हैं। जैसे बिजमा का राजा नरपति के घर फुलवा के रूप में पुनर्जन्म लेना। हिरिया बिडिनी व बिजमा का जादू–टोना करना इत्यादि।

"पुड़िया लैके यक जादूकी सो ऊदनिपर दई चलाय।
मेढ़ा करिलौं बघऊदनिको झारखंड में राखौ जाय।।
गुरु झिलमिला की मठिया में मेढ़ा बांधि दियो तत्काल।
बिजमा बोली तब बाबासे मैं लाई हौं चोर चुराय।।
चोर महोबे को भारी है तासे बहुत रह्यौ हुशियार।
इतनी कहिकै बिजमा चलीभइ पहुँची रंगमहल में जाय।।"[10]

तथा

"हम अब जन्म लिहें नरवरगढ़ औ फुलवा होय नाम हमार।
काबुल जेहौ जब घोड़न हित तब फिरी ह्वइहें भेंट हमारि।।"[11]

परंतु ऊदल का बिजमा के प्रति सच्चा प्रेम इस पुनर्जन्म की परिणति का द्योतक है। अतः यह पुनर्जन्म व जादू–टोना कथा विस्तार का प्रासंगिक अंग है।

इसी प्रकार प्रेम की प्राप्ति व राज्य विस्तार तथा शौर्य पराक्रम के लिए जिन विषय वस्तुओं को आल्ह खंड में स्थान मिला है उसमें बलपूर्वक विवाह या स्त्री हरण का वर्णन भी द्रष्टव्य है। "आल्ह खंड के पात्रों पर ध्यान देने से समझ पड़ेगा कि जयचंद्र की अपेक्षा पृथ्वीराज बहुत छोटे राजा थे और जिनकी पुत्री को (आल्ह खंड के अनुसार) परिमाल जैसे छोटे शासक के पुत्र ब्रह्मा ने आल्हा–ऊदल की सहायता से बलपूर्वक ब्याह लिया।"[12] बलपूर्वक विवाह, स्त्री अपहरण, बहुविवाह आदि तत्कालीन सामंती व्यवस्था के अंग थे। जो प्रेम पराकाष्ठा के अतिरिक्त राज्य विस्तार को महत्व देने का कार्य करते थे। आल्ह खंड इस प्रकार की स्त्री बहुआयामी रूपों व उनके सामाजिक स्थान को प्रकट करने वाली महत्वपूर्ण कृति है। जिसमें राजाओं के अनेक रानियों का साहित्येतिहासिक वर्णन मिलता है। तथा कहीं–कहीं परमार्दिदेव, आल्हा–ऊदल, अन्य बनाफर वीरों का एक पत्नी व्रत भी द्रष्टव्य है। इस परिप्रेक्ष्य में राजा जयचंद व पृथ्वीराज चौहान विशेष रूपेण प्रासंगिक पात्र हैं। जिनके बहुविवाह वर्णित हैं। परंतु उनकी एक–दो रानियों को छोड़ कर अन्य किसी का वर्णन या परिचय साहित्येतिहास में लुप्तप्राय है। "राजा जयचंद्र के 16 रानियाँ थी किन्तु उनमें से किसी से कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ था। जयचंद्र की महिषी दिव्यविभावरी गौड़ राजा की पुत्री थी। उसकी सुभावनी नामक दासी ने सन्योगिनी को जन्म दिया था। उसकी 12 वर्ष की आयु होने पर जयचंद्र ने उसके स्वयंवर की व्यवस्था की जिसमें विभिन्न राजाओं को आमंत्रित किया किन्तु पृथ्वीराज को नहीं बुलाया।"[13] पृथ्वीराज चौहान ने प्रेमवशीभूत, अपमान के प्रतिशोध रूप में या साम्राज्य विस्तार आदि इच्छा से संयोगिता (सन्योगिनी) का अपहरण किया। साहित्येतिहासिक ग्रंथों में इसका वर्णन प्राकट्य है। यह प्रवृत्ति वर्तमान समय में अनैतिक व घृणास्पद लगे परंतु तत्कालीन परिदृश्य में यह शौर्य–पराक्रम व सामाजिक प्रचलन का अंग थी। परंतु आल्ह खंड में ही स्त्री का साहसिक व वीरांगनापूर्ण चरित्र उभरकर सामने आता है। जब भी उसके सम्मान को चोट पहुँचती है। वह सामाजिक रूढ़ि का प्रतिकार करती भी दिखती है। दासी वर्ग की स्त्री भी पराये शत्रु राज्य के सैनिक ऊदल को चेतावनी देती है।

"बोले ऊदनि पनीहारिनि ते घोड़े पानी देउ पियाय।
यह सुनि बोली इक पनीहारिनि औ परदेशी बात बनाउ।।
हम पनीहारिनि हैं फुलवा की पानी घौड़े पियेहें नाहिं।
हँसी करत हो क्यों हमते तुम अपनो घोड़ा जायं भगाय।।"[14]

राजवर्ग की स्त्री सुनवा अपने पति आल्हा को सद्परामर्श देती आल्ह खंड में द्रष्टव्य है। कर्तव्य निर्वाह की विमुखता को लेकर राजवर्ग की स्त्रियाँ अपने पति को फटकारती भी दृष्टिगोचर है। इस प्रकार स्त्री पक्ष के बहुआयामी रूपों का आल्ह खंड में वर्णन दृष्टिगत है, जो कि एक महत्वपूर्ण वैचारिक पक्ष है। "राजन्य वर्ग की नारियों की अपेक्षा सामंतवर्गीय स्त्रियाँ काफी साहसी और वक्त पड़ने पर युद्ध क्षेत्र में भी जाती दिखाई पड़ती हैं। वे दूसरे देश के राजा से संधि और सहायता लेने में भी समर्थ हैं। वह युद्ध से विमुख पति या पुत्र को रणक्षेत्र में जाने के लिए केवल फटकारती ही नहीं, वे स्वयं रणक्षेत्र में जाने के लिए तत्पर भी रहती थीं।"[15] आल्ह खंड की राजवर्ग की स्त्रियों में मल्हना परमार्दिदेव से अधिक सतर्कता व

दूरदर्शिता का परिचय देते हुए जहाँ जगनिक द्वारा आल्हा–ऊदल को पत्र भेज महोबा आने का संदेश देती है वहीं महोबा के संकट को टालने के लिए पृथ्वीराज से संधि हेतु परमार्दिदेव को परामर्श भी देती है। परंतु चंद्रावलि के डोला लूटने के प्रयास में युद्ध अवश्यंभावी घटित होता है। जिसमें पृथ्वीराज की पराजय होती है। वहीं दूसरी ओर माता देवला आल्हा–ऊदल के महोबा जाने में व परमार्दिदेव की सहायता के परिप्रेक्ष्य में उदासीनता देख क्रुद्ध होती है तथा उन्हें फटकार सुनाती है। आल्ह खंड के अंतिम भाग में बेला भी ताहर का वध कर ब्रह्मानन्द की मृत्यु का प्रतिशोध लेकर एक वीरांगना रूप का परिचय देती है। जो प्रेम के लिए अपने पिता पृथ्वीराज के विरुद्ध ब्रह्मानन्द से विवाह करते द्रष्टव्य है। साथ ही ब्रह्मानन्द की मृत्यु का प्रतिशोध लेकर स्वयं को अग्नि में समाहित कर सती होने का प्रण भी पूर्ण करती है।

"चिता समीप गई बेला जब पति की लाश लई मंगवाय।
लाश धराई तुरत चिता पर बेला किन्हें सर्व सिंगार।।
करि पैकरमा जबहीं बैठी पृथीराज तब कहि पुकारी।
हौवै जो कोऊ चंद्रवंश में सर में आगी देउ लगाय।।"[16]

अंततः आल्हखंड में स्त्री के विभिन्न रूपों का उद्घाटन हुआ है। साथ ही स्त्री जीवन के सामाजिक महत्व व स्थान, चारित्रिक गुणों का सफल चित्रण भी द्रष्टव्य है। जो भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन पक्ष में स्त्री के सद्गुणी नायिका, महान आदर्श स्थापिका, गृहिणी रूप तथा कुशल बौद्धिक व्यावहारिक मनोभाव स्वरूप आल्ह खंड में स्त्री के बहुआयामी रूप को प्रकट करता है।

संदर्भ–सूची :–

1. त्रिपाठी, आनंद प्रकाश, बुंदेलखंड में स्त्री, पृष्ठ–49, समसामयिक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2012 ई।
2. भदौरिया, अमोल सिंह, आल्हा की सगाई, पृष्ठ–15, श्रीकृष्ण पुस्तकालय, कानपुर, संस्करण–1948 ई।
3. सीताराम, पंडित नारायण प्रसाद, आल्ह खंड–बड़ा, पृष्ठ–236, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई, संस्करण–2013 ई.।
4. सीताराम, पंडित नारायण प्रसाद, आल्ह खंड–बड़ा, पृष्ठ–620, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुंबई, संस्करण–2013 ई.।
5. सीताराम, पंडित नारायण प्रसाद, आल्ह खंड–बड़ा, पृष्ठ–803, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुंबई, संस्करण–2013 ई.।
6. सीताराम, पंडित नारायण प्रसाद, आल्ह खंड–बड़ा, पृष्ठ–680, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुंबई, संस्करण–2013 ई.।
7. डॉ. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ–385, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2016 ई.।
8. डॉ. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ–372, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2016 ई.।
9. गुप्त, गणपतिचंद्र, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास–प्रथम भाग, पृष्ठ–105, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2015 ई.।
10. सीताराम, पंडित नारायण प्रसाद, आल्ह खंड–बड़ा, पृष्ठ–159, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुंबई, संस्करण–2013 ई।
11. सीताराम, पंडित नारायण प्रसाद, आल्ह खंड–बड़ा, पृष्ठ–175, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुंबई, संस्करण–2013 ई.।
12. मिश्र, आनंद स्वरूप ,कन्नौज का इतिहास, पृष्ठ–482, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, संस्करण–1992 ई.।
13. मिश्र, आनंद स्वरूप ,कन्नौज का इतिहास, पृष्ठ–483, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, संस्करण–1992 ई.
14. सीताराम, पंडित नारायण प्रसाद, आल्ह खंड–बड़ा, पृष्ठ–367, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुंबई, संस्करण–2013 ई.।
15. त्रिपाठी, आनंद प्रकाश, बुंदेलखंड में स्त्री, पृष्ठ–53, समसामयिक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2012 ई.।
16. सीताराम, पंडित नारायण प्रसाद, आल्ह खंड–बड़ा, पृष्ठ–811, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुंबई ,संस्करण–2013 ई.

पंडित बस्तीराम के साहित्य में लोक-तत्त्व

पूनम *

शोध–सारांश :– जन–समाज का वही वर्ग लोक कहलाता है जो शास्त्रीय ज्ञान एवं शिक्षित चेतना सहित होते हुए भी कुलीन संस्कारों से युक्त एवं अह्म भाव से रिक्त होता है। यह वर्ग एक सतत परम्परा के प्रवाह में जीवित एवं गतिशील रहता है यह परम्परा रहन–सहन, खान–पान, लेन–देन, संस्कार–अनुष्ठान तथा पुरातन विश्वासों के प्रति श्रृद्धा एवं आस्था के बाने–बाने से बुनी हुई है। पंडित बस्तीराम इसी जन–समुदाय का अंग थे जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन समाज कल्याण, समाज सुधर के लिए समर्पित कर दिया। पंडित जी समाज में एकता, भाई–चारा मेल–मिलाप, शांति, नैतिकता, की प्रतिष्ठापना तथा समाज में व्याप्त अंध–विश्वास एवं पांखडों को नष्ट करने के पक्षधर थे।

मुख्य–शब्द :– प्रेम, भाईचारा, मेल–मिलाप, पाखण्ड–खण्डन।

'लोक शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शन' धातु में छञ् प्रत्यय लगने से निष्पन्न हुआ है। इस धातु का अर्थ देखना होता है, जिसका लट् लकार में अन्य एकवचन का रूप लोकते हैं। इस प्रकार लोक शब्द का अर्थ देखने वाला हुआ। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि लोक शब्द का प्रयोग उस सम्पूर्ण जन–समुदाय के लिए किया जाता है, जो इस कार्य को करता है तथा जो किसी निश्चित भौगोलिक सीमा के अन्दर अपनी परम्पराओं, विश्वासों और आस्थाओं के साथ जीता है। जो बौद्धिक कम, भावुक ज्यादा हैं। जो मस्तिष्क से कम ह्वद्य से ज्यादा काम लेता है। दूसरे शब्दों में कहें तो, "लोक वह समस्त जनसमूह हैं जिसका जीवन–दर्शन और रहन–सहन प्राचीन विश्वासों, परम्पराओं तथा आस्थाओं से परिचालित एवं नियंत्रित है।"[1]

लोक शब्द का प्रयोग प्राचीन भारतीय साहित्य वेदों एवं पौराणिक ग्रन्थों में भी अनेक स्थानों पर मिलता हैं श्रीमद्भगवद्गीता में 'लोक' शब्द का प्रयोग लोग, समाज, संसार आदि संदर्भो में मिलता हैं जैसे–

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनमादयः।
लोक संग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तु मर्हसि।।[2]

मध्यकालीन संत कवि रामभक्त तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में लोक को वेद से पहले स्थान दिया है। लोक शब्द से उनका अभिप्राय संसार अथवा समाज से ही है–

हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहुं बेद विदित सब काहू।।[3]

संत कबीर ने भी लोक एवं वेद को अपनी वाणी में स्थान दिया है। लोक शब्दों से कबीर का भी अभिप्राय समाज एवं संसार से ही है। संसार को तीन लोकों में वर्गीकृत करते हुए तथा परमात्मा (राम) को इन लोकों में परिव्याप्त मानते हुए कबीर कहते हैं–

राम नाम तिहुं मैं, सफल रहया भरपूरि।
यह चतुराई जाहु जलि, खोजत डोलै दूरि।।[4]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मत से, "लोक" शब्द का अर्थ ग्राम्य नहीं हैं बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई समस्त जनता हैं, जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पौथियां नहीं हैं। नगर में परिष्कृत, रूचि–सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यासी होते हैं तथा परिष्कृत रूचि–सम्यन्न व्यक्तियों की विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने वाली आवश्यक वस्तुएं उत्त्पन्न करते हैं।[5]

*** शोधार्थी, हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक–हरियाणा।**

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने लोक के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि "लोक हमारे जीवन का महासमुन्द्र हैं, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप हैं, लोक के ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति हैं। लोक, लोक की धात्री सर्वभूत माता पृथ्वी और लोक–व्यक्त रूप मानव यही हमारे नए जीवन का अध्यात्म शास्त्र हैं। इनका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्वाण का नवीन रूप हैं। लोक, पृथ्वी, मानव इसी त्रिलोकी में जीवन में कल्याणतम रूप हैं।[6] डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक को परिभाषित करते हुए अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है, "कि आधुनिक सभ्यता से दूर, अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास कने वाली, तथाकथित अशिक्षित एवं असंस्कृत जनता को लोक कहते हैं, जिनका आचार–विचार एवं जीवन परम्परायुक्त नियमों से नियंत्रित होता है।"[7]

जगत को प्रत्यक्ष रूप से देखने वाला 'लोक' है। लोक हमें प्रकृति एवं पुरखों दोनों से ही जोड़ता है। यह सिर्फ भूत एवं वर्तमान से ही जुड़ा हुआ नहीं बल्कि भविष्य की ओर भी संकेत करता है। इनके कार्य करने ढंग, इनका मानव धर्म, इनका व्यवहार सबकुछ अपने अनुभवों से अर्जित किया हुआ है। प्रकृति, गीत–संगीत, घर–द्वार कहावतें–मुहावरें, देवी–देवता सब में महत्वपूर्ण लोक चेतना व्याप्त दिखाई देती हैं और जहां अतंतः असत्य पर सत्य की विजय होती हैं। लोक भी सत्ता विधाता के विश्व की तरह सर्वव्यापक हैं। लोक को भूमि और जन दोनों के अस्तित्व की अनुभूति का भाव हैं। भूमि का एकाकी अस्तित्व जन के अभाव में निरर्थक हैं।

अतः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि जन समाज का वही वर्ग लोक कहलाता है जो शास्त्रीय ज्ञान एवं शिक्षित चेतना से शून्य होते हुए भी कुलीन संस्कारों से युक्त एवं अहम् भाव से रिक्त होता है। यही वर्ग एक सतत् परम्परा के प्रवाह में ही जीवित एवं गतिशील रहता है। यह परम्परा रहन–सहन, खान–पान, लेन–देन, संस्कार अनुष्ठान तथा पुरातन विश्वासों के प्रति अगाध श्रद्धा एवं आस्था के ताने–बाने से बुनी गई है। साथ ही, लोक शब्द का प्रयोग अधिकांशतया ग्रामीण एवं निरक्षर वर्ग के संदर्भ में किया जाता है, जो कि आज भी संस्कृति एवं आदर्शों के प्रभावी वाहक माने जाते हैं। इसी लोक साहित्य के प्रतिनिधि आर्योपदेशक भजनी पं॰ बस्तीराम भी अशिक्षित होते हुए भी कुलीन संस्कारों से युक्त थे। उन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वती से प्रेरणा प्राप्त कर भारतीय समाज (विशेषकर हरियाणा प्रान्त) में जड़ जमाएं पाखण्डों को दूर करने के लिए भरसक प्रयत्न किये। हरिद्वार के कुम्भ मेले के अवसर पर इन्होंने महर्षि दयानन्द को विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों को शास्त्रार्थ या प्रवचन करते हुए जब देखा तो ये उनसे प्रभावित होकर उनके शिष्य बन गए। इसके बाद जहां भी महर्षि जी शास्त्रार्थ या प्रवचन हेतु जाते तो बस्तीराम उनके साथ रहते तथा उनके सम्मान में भजन गाते। पंडित बस्तीराम स्वामी दयानन्द सरस्वती से इतने प्रभावित हुये कि देहत्याग तक इन्होंने सामाजिक कुरीतियों, पाखण्डों के खिलाफ भजन बनाकर गाते रहें। पंडित जी ने जीवन पर्यन्त देश–प्रेम, राष्ट्रवाद, पाखण्ड–खण्डन एवं धर्म प्रधान भजन व गीत गाएं। वे हरियाणा तथा आसपास के राज्यों में खूब प्रसिद्ध हो गये थे। आजकला में ढोंगी, पाखण्डी, व्याभिचारी एवं नकली योगी एवं फकीरें की पोल खोलते हुए पंडित जी कहते हैं–

लम्पट और लालची लुंगाडे, भेष अनेक बनाते हैं।
सड़क अनेक युक्ति की हुई मनमानी कदम बढ़ाते हैं।।
परधन, परनारी पर घरों, मूर्ख आनन्द मनाते हैं।
लुच्चे, गुण्डे, चोर–जार यहां सन्त महन्त कहाते है।।
गांजा सुल्फा भांग चरस पर पुत्रों को जो सिखाते हैं।
मूर्ख मलीन दगाबाजों को पहुंचे हुए बताते हैं।।
मधपीवा बकरा भोगी योगी नाम रखाते हैं।
अलख–अलख कर रूक्के मारें धक–धक धूनी धकाते हैं।।
मांगकर खावें वस्त्र रंग, सब छोट मोट करवाते हैं।

काला अक्षर भैंस बराबर वेद से आगे जाते हैं।।

प्राचीन भारतीय गुरू–शिष्य परम्परा बहुत ही पावन थी। लेकिन वर्तमान समय में झूठे गुरू तांत्रिक एवं चमत्कार दिखाने काले ढोंगी बाबाओं ने जनता का खूब शोषण किया हैं। वे धर्म के नाम पर व्यवसाय कर रहें हैं। भोली–भाली, अनपढ़ जनता को बहला–फुसलाकर ये ढोंगी साधु, महात्मा खूब व्यापार कर रहे हैं। इन सबसे सचेत करते हुए पंडित बस्तीराम जी कहते हैं–

जिसे जरूरत हो मुक्ति की, उसे कहें काशी को चल।
सर्वस्व दान पोप को देकर, होकर खास कंगाल निकल।।
कोई कहे सिर पर करोत ले, कोई कहे चल भैरों के पिल।
कोई कहे कर एकादशी व्रत, कोई कहे चल हिमालय गल।।
कोई कहे जीता समाध ले, कोई कहे चल अग्नि में जल।
कोई सप्ता की कथा सुन, कोई कहे खा तुलसी दल।।
कोई कहे चल जगन्नाथ पर, कोई कहे पी गंगा जल।
कोई सागर में कूद पड, वहां गति होते नहीं लगे न पल।।
सस्ता भाव किया मुक्ति का, टके–टके घड़ी ये बिकाई।
देखी भी दगाबाज की चतुराई।।[8]

इस प्रकार धर्म के नाम पर व्यापत ढोंग, पाखण्ड आदि पर पंडित जी ने करारा व्यंग्य किया है। धर्म, सम्प्रदाय, वाद पूजा स्थान, पूजा पद्धति तथा विभिन्न देवी–देवताओं के नाम पर पाखण्डी व ढोंगी साधु महात्मा सामान्य जनता को बेवकूफ बनाकर उनका शोषण कर रहे हैं। पंडित जी ने ऐसे पाखण्डी महात्माओं को आड़े हाथों लेते हुए कहा है–

किसी ने भैरों का स्थान बणा लिया, किसी ने रच लिया देवी का मठ।
किसी ने हाथ दाग द्वारिका, बद्रीनाथ जी के खोले पट।।
किसी नै हर पैड़ी बणा ली, कोई जगन्नाथ पर हुए गटपट।
कोई बाबा जी का चेला बण गया, जिसकी हुई घर से खटपट।।
किसी ने जाकर कान पड़ा लिए किसी नै ले लिया मोटा लठ।
कोई पुकारे अलख–अलख, कोई द्वारे बिराने पर रहा डट।।[9]

इस प्रकार पंडित बस्तीराम ने बड़ी निर्भीकता, साहस एवं धैर्य से सब तरह के पाखण्डों के विरूद्ध स्वामी दयानन्द से प्रेरणा लेकर अपने भजनों एवं गीतों के माध्यम से जन समुदाय को जाग्रत करने का भरसक प्रयास किया। परमात्मा, आत्मा, धर्म, संस्कृति, अध्यात्म, योग, पूजापाठ, उपासना, दैनिक जीवन, आचरण, राजनीति के नाम पर शोषण, भेदभाव व मूढ़ता का जो कुकृत्य उस समय व्याप्त था उसके विरूद्ध पं॰ बस्तीराम एक सशक्त आवाज बनकर उभरे। एक समाज सुधारक एवं सुंदर समाज–निर्माता और नियंता की भूमिका में पंडित बस्तीराम ने श्रेष्ठ आर्य जीवन जीने की प्रेरणा दी है। जाति–पाति में बंधना श्रेष्ठ सामाजिक का गुण नहीं हैं। पंडित जी की स्पष्ट मान्यता है कि इस जात–पात ने देश का बहुत नुकसान किया है। हमें आपस में मेल–जोल से रहना चाहिए तथा जाति अभिमान को देश निकाला दे देना चाहिए–

मेल बिन कैसे बाट सन्मति की जोहोगे।
ढोते हो बिराना बोझ और सदा ढोओगे।।
प्यारो या तो भुंआ भू रोओगे भाई जी।
बस्तीराम बस देश निकाला दे दो जाति अभियान को।।
यह देश इसी ने खाया, विष पीकर अमृत पिलाया।।[10]

ऊँच–नीच का भेद मिथ्या है। गुण–अवगुणों से ही व्यक्ति ऊँचा या नीचा बनता है–

हरि सिंह या संसार में ऊँच–नीच या कोय।
अवगुण नीच पिछाणिये गुण ऊँचों पद होय।।[11]

पंडित बस्तीराम का दृढ़ निश्चय है कि संसार के सारे कार्य आपसी मेल–जोल से ही सम्पन्न हो सकते हैं। जिस प्रकार एक अक्षर का कोई अर्थ नहीं निकलता लेकिन अनेक अक्षर मिलकर एक अर्थयुक्त पुस्तक तैयार करते हैं। पंडित जी की मान्यता है और जनसाधारण में भी यह कहावत प्रचलित है कि 'सात पाँच की लाकड़ी से, एक नर का सिर भार' अर्थात् प्रत्येक मनुष्य की एक–एक लकड़ी और एक मनुष्य के लिए काफी वजन हो जाता है। जैसे एक–एक करके ईंटों से महल तैयार हो जाता है किन्तु अकेली ईंट ज्यादा उपयोगी नहीं होती। मेल शब्द में गूढ़ निहितार्थ हैं पंडित जी कहते हैं–

जग में मेल से ही सारे कारज भाइयो होते।
एक अक्षर कुछ काम ना आवे, मित्रों करो विचार।।
बहु अक्षर के मेल से ही पुस्तक हो तैयार।
मेल कियो जब जापानिन ने आपस में हर्षाय।।
कठिन दुर्ग पोर्ट आर्थर पर दीन्हीं ध्वजा फर्राय।
एक कहावत बड़ी पुरानी, उसको दीन्हा विसार।।
सत पांच की लाकड़ी से, एक नर का सिर भार।
एक ईंट से काज न सरता, कहना लीजे मान।।
बहु ईंटों के मेल से, बनता बड़ा मकान।
मेल शब्द का अर्थ गूढ़ है, मन में करो विचार।।[12]

इस तरह पंडित बस्तीराम के काव्य में हरियाणवी जन चेतना का कुशल चित्रण इंगित होता है। पंडित जी ने हरियाणवी समाज में व्याप्त धर्म के नाम पर ढोंग एवं पाखण्ड का डटकर विरोध किया है। पंडित जी ने झूठे एवं पाखण्डी साधु–संतों की खूब खबर ली है, वहीं पंडित जी ने भारत के अतीत गौरव का वर्णन करते हुए भारतीयों के मन से निराशा एवं हताशा को हटाकर आशा एवं विश्वास का संचार किया। पंडित बस्तीराम ने समाज के चहुंमुखी विकास के लिए आपसी मेल–जोल, भाई–चारा, नैतिकता, जात–पात खण्डन, ब्रह्मचर्य पालन, कन्या–वध, विधवा–विवाह, मांसाहार एवं मद्यपान निषेध, यज्ञ–हवन, सत्य उदारता सदाचार, क्षमा परस्पर–प्रीति, उपासना, दैनिक–जीवन आचरण पर बल दिया। पंडित जी ने अपने गीतों एवं भजनों के माध्यम से अध्यात्म, योग, आचरण व राजनीति के सही स्वरूप को अभिव्यक्ति प्रदान करके व्यक्ति, समाज व राष्ट्र की जी–जान से सेवा कर आज के युवकों के सामने आदर्श प्रस्तुत किया।

सन्दर्भ–सूची :–

1. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, साहित्य भवन प्राईवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, 1967, पृ॰ 11।
2. श्रीमद् भगवद् गीता, अध्याय–3, श्लोक–20 ,गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. रामचरितमानस बाल काण्ड– 7/8, गीता प्रेस, गोरखपुर।
4. प्रो. पुष्पपाल सिंह, कबीर ग्रन्थावली सटीक, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 2003, पृ॰ 72।
5. डॉ. रेखा शर्मा हरियाणा के लोकगीतों में भक्ति भावना, हरियाणा साहित्य अकादमी पंचकुला 2005, पृ॰ 78।
6. डॉ॰ विद्या–चौहान, लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि, प्रगति प्रकाशन, आगरा, 1972, पृ॰ 40– 41।
7. डॉ॰ कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृ॰ 11, साहित्य भवन प्राईवेट लिमिटेड इलाहाबाद, 1967, पृ॰ 11।
8. स. आचार्य वेदव्रत शास्त्री, पं॰ बस्तीराम सर्वस्व, आचार्य प्रिटिंग प्रेस, दयानन्द मठ, रोहतक, 2005, पृ॰ 24।
9. वही पृ॰ 24।
10. वही पृ॰ 103।
11. वही पृ॰ 193।
12. वही पृ॰ 434।

बद्री सिंह भाटिया के उपन्यासों में चित्रित नारी-जीवन

कुसुम देवी *

शोध सारांश :– बद्री सिंह भाटिया के उपन्यासों में नारी जीवन के विविध स्वरूपों, विभिन्न पहलुओं और परिस्थितियों को दर्शाने का प्रयत्न किया गया है।

बीज शब्द :– आकृति, निष्ठा, ईमानदारी, सम्मान, मन्तव्य, प्रतिष्ठा, साहसी, जिम्मेदारी, परिस्थिति।

शोध–सार :– नारी शब्द सुनते ही आँखों के सामने जो आकृति उभरती है उसे कई अन्य संबोधन जैसे माँ, बेटी, बहू, पत्नी, भाभी, ननद, बुआ और मौसी आदि दिए जाते हैं। यह शब्द कानों में एक मीठा सा रस घोल देता है। एक संगीत सा बज उठता है जो प्रत्येक घर की जान होती है। केवल घर ही नहीं बल्कि बाहर के काम भी आज की नारी पूरी निष्ठा व ईमानदारी के साथ करती है। वह पुरुषों के साथ हर क्षेत्र में कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी है। उसमें आत्मबल, आत्मविश्वास और स्वावलम्बन कूट–कूट कर भरा है। आज की नारी घर और बाहर दो मोर्चों पर एक साथ पूरी मजबूती के साथ अपने कार्य करती है।

परन्तु आज भी कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ उन्हें पूरे अवसर व सम्मान नहीं दिया जाता। खासतौर पर ग्रामीण क्षेत्र की नारी आज भी समय से बहुत पीछे है। बद्री सिंह भाटिया ने अपने उपन्यासों में नारी जीवन की वास्तविकाता का पूरी ईमानदारी से वर्णन किया है। नारी जीवन के अच्छे–बुरे सभी पहलुओं को दर्शाने का भरपूर प्रयास किया है। इन्होंने अपने उपन्यासों में नारी जीवन के सभी स्वरूपों जैसे माँ, बहन, बहू व बेटी सभी का चित्रण किया है। उन पर होने वाले अत्याचारों व शोषण को भी दर्शाया है।

बद्री सिंह भाटिया के 'पड़ाव' उपन्यास में मनबहादुर की पत्नी राधा का ज़िक्र सबसे पहले आता है। वह सुन्दर, सुशील व सुघड़ नारी है। अपने पति व बच्चों का बहुत अच्छे से ध्यान रखती है। अपने पति से बहुत प्रेम करती है। उसके सुख–दुख की साथी है। पति का थोड़ा सा कष्ट भी उससे नहीं छिपता। ''पूछ बैठी – ''क्या बात है, तुम्हारा मुँह उतरा हुआ है।''[1] वह पति के चेहरे की भाव–भंगिमा को देखकर उसकी चिंता का कारण जान जाती है।

वह घर में पति से नरमी से बात करती है परन्तु बाहर पूरी सख्त होती है। एक बार लम्बरदार के लड़के द्वारा छेड़खानी करने पर उसे अच्छा सबक सिखाती है। ''इसी बीच राधा का एक और रूप सामने आ गया। उसकी शक्ति का– ''गाँव में पानी के लिए जाते हुए एक दिन उससे लम्बरदार के छोकरे ने छेड़छाड़ कर दी थी। पता नहीं क्या कहा, राधा ने बताया ही नहीं कभी........पर उसने धोती कमर में कसकर रौद्र रूप धारण कर लिया। एक अच्छे पहलवान की तरह पटके दे देकर ऐसी तेसी फेर दी। फिर उसकी छाती पर बैठ गई.......''ले पी ले अपनी माँ का दूध......तेरी माँ न बहन।''[2] उस समय वह रणचण्डी के रूप में दिखाई देती है।

परन्तु जब मनबहादुर भारत आ जाता है तो बच्चों व घर की जिम्मेदारी अकेली ही सम्भालती है। उसे बहुत दुख होता है जब मनबहादुर वापस नेपाल नहीं जाता। ''बोली कि, बहुत कष्ट सहे हैं, बड़ी मुश्किल से गुजारा किया। लड़का भारत आने की जिद्द करता रहा। मगर वह उसे रोकती रही। पिछले साल वह भी यहाँ आ गया है, कहीं... बहुत दुखी है।''[3] वह चाहती है कि पिता–पुत्र दोनों घर वापस आ जाएं। क्योंकि अब उसकी उम्र ढलने लगी है। पहले जैसी हिम्मत अब नहीं रही। ''अरे ! ये गाँव में चलता रहता है, पर घर छोड़कर तो नहीं जाता कोई अपना घर तो अपना ही होता है।... उसने कहा है कि यदि मन करे तो यहाँ आकर अपनी जमीन देख ले। उसके शरीर में प्राण नहीं रहे। और कहीं लड़के को भी ढूंढ ले। यदि

*** शोधार्थी, हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक–हरियाणा।**

मिले तो साथ ले आए। बहुत हो लिया। .....पैसे नहीं हैं तो भी वापस आ जाए। यहाँ देख लेंगे। अब यहाँ भी काम खुलने लगे हैं।''[4] वह पति की वापसी हर हाल में चाहती है। चाहे उसे सौतन के साथ ही गुजारा क्यों न करना पड़े। वह पतिव्रता स्त्री है। मनबहादुर भारत आने पर कई नारियों के साथ रहता है परन्तु उसने कभी किसी अन्य से सरोकार नहीं रखा। पति के साथ दूसरी स्त्री होने पर भी वह उसे माफ कर देती है। ''यही कि तब उसकी मर्जी है। नहीं आना है तो वह क्या कर सकती है? इस उम्र में उसे ढूंढने जाना उसके बूते के बाहर है। वह आना चाहे तो आ सकता है – यदि सीता को भी ले आएगा तो भी चल पड़ेगा। यहाँ भी लोग रख रहे हैं दो–दो घरवालियाँ।''[5] सारी उम्र अकेलेपन का दंश झेलती है, पति को माफ भी कर देती है फिर भी अकेली ही रहती है। 'लक्ष्मी' नामक गोरखण 'पड़ाव' उपन्यास की एक मुख्य नारी पात्र है। नेपाल से भारत वह अपने पति के साथ पैसे कमाने की गर्ज से आती है। परन्तु यहाँ आकर उसका जीवन बर्बाद हो जाता है। वह मनबहादुर को अपना दुख बताती है। ''कई बरस पहले मैं अपने आदमी के साथ यहाँ आई थी। घर से जब चले थे तो मन में विचार था– चार पैसे जोड़कर वापस आकर अपनी जगह जमीन देखेंगे। एक–दो खेत ले लेंगे। जिन्दगी के बाकी दिन ठीक से कट जाऐंगे। परन्तु किस्मत को यह मन्जूर नहीं था। यहाँ आने के कुछ साल बाद ऐसा भूचाल आया कि सब धरा का धरा रह गया।''[6]

लहासे के गिरने से लक्ष्मी का पति मर जाता है और यहीं से उसके बुरे दिन प्रारम्भ हो जाते हैं। पति की मौत का मुआवजा दिलवाने का बहाना बनाकर कभी कोई कभी कोई उसके पास आकर झूठी हमदर्दी जताता रहता है। वह सब समझती थी कि इनका मन्तव्य क्या है? परन्तु पास में पैसा न होना उसे नेपाल जाने के अपने निर्णय को स्थगित करने पर बाधित कर देता है। फिर वह थक–हार कर जंगबहादुर के साथ रहने लगी, जहाँ उसके साथ मौत से भी बदतर ज्यादती हुई। वह मनबहादुर को जंग के बारे में बताती है। ''फिर उसे अपने डेरे पर ले आया– तब से वह उसकी मुफ्त कारागार में है– कटे पंखों की तितली सी कठपुतली की तरह नाच रही है– कभी इस पग पर, कभी उस पग पर। सारे धागे जंग के हाथ में है और एक इंतजार– कब पति के मरने का मुआवजा मिले और वह अपने बारे में सोचे।''[7]

फिर मनबहादुर लक्ष्मी को जंग की कैद से छुड़ा लेता है तो लक्ष्मी मनबहादुर के साथ रहने लगती है। मनबहादुर लक्ष्मी को पूरे मान–सम्मान के साथ रखता है। लक्ष्मी को भी अच्छा लगता है। ''सुबह लक्ष्मी का बुलावा आया था– उसे लक्ष्मी का बुलावा सुन अच्छा लगा था– एक बार लक्ष्मी पर प्यार उमड़ आया। अब वह उससे जुड़ गई है– पति मानने लगी है।''[8] दोनों ही खुश रहते हैं। इस बीच ''सीता'' नामक गोरखण नेपाल से आकर अपने पति को ढूंढते–ढूंढते उनके होटल तक आ जाती है। लक्ष्मी उसकी सिफारिश मनबहादुर से करके उसे काम दिलवा देती है। परन्तु कुछ दिनों बाद लक्ष्मी उससे नाराज हो जाती है और मनबहादुर के पैसे और लड़के को लेकर एक अन्य गोरखे के साथ कहीं ओर चली जाती है।

'सीता' अब मन बहादुर के साथ रहने लगती है। सीता मनबहादुर को कहती है ''छोड़ो उसको अब। वह गई नेपाल। लक्ष्मी और रामबहादुर के पुराने ताल्लुक थे। तुझे वे बेवकूफ बनाते रहे। फिर लक्ष्मी को पक्का विश्वास हो गया कि हमारे बीच संबंध बढ़ गए हैं तो उसने किनारा कर लिया... और ठीक भी किया......क्या पता होटल में आग जान–बूझकर उन्होंने ही लगाई हो।'' ''छोड़ उसकी बात हम नए सिरे से जिन्दगी शुरू करेंगे।''[9] सीता अन्त तक मनबहादुर के साथ रहती है।

यहाँ तक हम तीन नारी पात्रों के विषय में जान चुके हैं। तीनों ने ही मजबूरी में अपने जीवन से किसी न किसी प्रकार का समझौता किया है। लक्ष्मी और सीता को न चाहते हुए भी दलदल में उतरना पड़ा और राधा न चाहते हुए भी जिन्दगी भर अकेली रही। इन तीनों नारी पात्रों के ईर्द–गिर्द एक पुरुष पात्र मनबहादुर घूमता है।

'डेंजर ज़ोन' उपन्यास में 'शांता' उपन्यास की नायिका है। वह अपने मनपसन्द के लड़के मणिकांत से प्रेम–विवाह करती है परन्तु खुश नहीं रह पाती। वास्तविक जीवन के कठोर यथार्थ का सामना करते ही

उसके सपने बिखर जाते हैं। पति–पत्नी में झगड़ा होता है तब वह कहती है– ''मेरा सुख कभी ख्याल किया? मैं जरा ऊँचे बोल क्या दी, तुम बोले– धीरे बोलो बच्चों पर बुरा असर पड़ रहा है। मानो मैं कुछ भी नहीं। मैं तो एक देह भर हूँ। जिसे सुबह उठकर तुम्हारा, तुम्हारे बच्चों का टिफिन बनाना है। फिर कहीं स्वयं तैयार हो काम पर जाना है। एक तकली, फिरकी मात्र हूँ मैं, जिसे घूमना है तुम्हारे इशारे पर......और शाम को प्रतीक्षातुर आँखे। बच्चों की, सास–ससुर और जाने किन–किनकी। एक मोह जाल का पैंतरा।''[10] प्रतिदिन के झगड़ों के कारण पति–पत्नी अलग रहने लगते हैं। पति की पद–प्रतिष्ठा के अनुसार उसे बड़ी सरकारी कोठी मिल जाती है और वह एक कामवाली बाई सोनपाखी को गृहकार्य के लिए रख लेता है। फिर शांता उसके घर व सोनपाखी को देखना चाहती है। ''सब इस घर में आ लिए हैं। एक वह ही नहीं आई है। आज.... यहीं रह जाना चाहिए। इसकी उस गर्जमन्द को भी देखा जाए और लड़कों की नई गतिविधियों को भी बताया जाए। उन्हें इस समय टोकने की जरूरत है। मैं तो माँ हूँ। मेरा टोकना तो ऐसे ही टाल जाएंगे। पर यह पिता है, यह कहेगा तो... इस समय छोटे को समझाना जरूरी है। उसकी अभी शादी करनी है।''[11]

उस दिन वह पति के घर रुकती है और कामवाली बाई सोनपाखी को भी देखती है। उसे सोनपाखी काफी चतुर व चालाक लगती है। परन्तु सोनपाखी की अपनी मजबूरियाँ होती हैं। वह मणिकांत से प्रार्थना करके उसके घर के बाहर का आउट हाऊस ले लेती है। तभी मणिकांत को सोनपाखी के विषय में जानने का समय मिल पाता है। ''सोनपाखी के बारे में मणिकांत को कुछ और जानकारियाँ समय के साथ मिलीं। वे दोनों पहाड़ से भागकर शहर में आए थे। पति–पत्नी बनकर। गाँव के एक पहचान वाले ने पति को काम दिला दिया था। मगर कब पति नशे का शिकार हुआ पता ही नहीं चला। बीमार हुआ तो नौकरी चली गई। नई मिली नहीं।''[12] इससे गृहस्थी की जिम्मेदारी सोनपाखी को निभानी पड़ी। वह मेहनत–मजदूरी करके बच्चों को पालती है और पति की देखभाल करती है। घर से भागकर आने के कारण मायके और ससुराल वाले कोई भी उसका सम्मान नहीं करते। इनसे इतर 'डेंज़र जोन' उपन्यास में मणिकांत की बेटी प्रीति व बहू संध्या तथा सोनपाखी की बेटी के जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है।

'रिले–रेस' उपन्यास में 'रामेसरी' उपन्यास की नायिका है। यह भी सदानन्द से प्रेम–विवाह करती है। वह बहुत साहसी नारी है। वह विवाह के इरादे से देर रात सदानन्द के घर आती है। तब सदानन्द की माँ उससे बात करती है। ''उसने दरवाजा खोला– सामने एक युवती खड़ी थी। लम्बी–तगड़ी शॉल ओढ़े, गर्दन झुकाए। उसे समझते देर नहीं लगी। हैरानी से पूछा, 'तू रामेसरी...।' वह आगे बढ़ी– मुंडी हिला हाँ की और आगे बढ़कर उसके पाँव छुए। माँ ने उसे बाजू से पकड़ पहले भीतर खींचा। इसी भीतरी घबराहट से उसने दरवाजे पर अर्गला लगाई और तब पूछा, 'मरजानी ये क्या किया? क्यों आई? इतनी रात...? जाने कितने प्रश्न। ऊँची आवाज सुन सदानन्द, उसका पिता, छोटा भाई, बहन भी कमरे में आ चुके थे। रामेसरी ने गर्दन झुकाकर कहा, 'जी ऽ, मैं तो छोड़ आई अपना घर। मैं ब्याह करूंगी तो सदानन्द से वर्ना...।' भरोई सी आवाज में उसने कहा।''[13] न चाहते हुए भी सदानन्द के घरवाले उन दोनों का विवाह कर देते हैं। रामेसरी दिन–रात काम करके सास–ससुर का मन मोह लेती है। पूरी गृहस्थी की जिम्मेदारी बहुत अच्छे से सम्भालती है। सदानन्द कई बार उसकी यादों में खोकर सोचता है।

''क्या जीवट औरत रही यह भी। यदि उस समय औरतों की कुश्तियाँ भी हुआ करती तो यह भी माली ला सकती थी। क्या लम्बा शरीर, क्या चौड़ी काया, उस पर सुन्दरता... और इतना दम कि किसी तगड़े मर्द की बाजू पकड़ ले तो छूट न पाए। हौसला इतना कि घर–बार छोड़कर उसके पास आ गई।''[14]

रामेसरी पति के कंधे से कंधा मिलाकर काम करती रही। दोनों ग्वालागिरी करने शिमला भी गए जहाँ एक दिन व्यापारियों ने सदानन्द के साथ मारपीट की तो रामेसरी ने सबकी धुलाई कर दी। ''उसमें इतना जोश आया कि उसने एकदम बरामदे की सीढ़ियाँ उतरी। धूप में दूध की बाल्टियों के साथ रखी बहँगी उठाई और दनादन व्यापारियों पर बरसाने लगी। एक व्यापारी ने बहँगी का डंडा पकड़ने की कोशिश

की मगर प्रहार इतना जोर का था कि उसका हाथ फट गया। खून बहने लगा। वह दर्द से बिलबिलाया। इस चोट से व्यापारी हक्के–बक्के रह गए।''[15]

निष्कर्ष :– निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि नारी स्वाभाविक तौर पर कोमल, ममतामयी व सहनशील होती है। वह अपने घर की जिम्मेदारियों को प्रत्येक परिस्थिति में निर्वहन करती है। राधा, शांता और रामेसरी के जीवन से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। परन्तु अगर उनके मान–सम्मान या पति अथवा बच्चों पर कोई आँच आती है तो वे रणचण्डी बनकर सामने वाले को ऐसा सबक सिखाती हैं कि फिर जीवन में वे ऐसा कभी दोबारा करने की हिम्मत न कर सकें।

सन्दर्भ–सूची

1. बद्री सिंह भाटिया, पड़ाव, प्रकाशन वर्ष 2010, प्रथम संस्करण, पृ०सं० 26, प्रकाशक : निलेश प्रकाशन, जी–5/62, अर्जुन नगर, दिल्ली–110051
2. बद्री सिंह भाटिया, पड़ाव, प्रकाशन वर्ष 2010, प्रथम संस्करण, पृ०सं० 85, 86 प्रकाशक : निलेश प्रकाशन, जी–5/62, अर्जुन नगर, दिल्ली–110051
3. बद्री सिंह भाटिया, पड़ाव, प्रकाशन वर्ष 2010, प्रथम संस्करण, पृ०सं० 131, प्रकाशक : निलेश प्रकाशन, जी–5/62, अर्जुन नगर, दिल्ली–110051
4. बद्री सिंह भाटिया, पड़ाव, प्रकाशन वर्ष 2010, प्रथम संस्करण, पृ०सं० 131, प्रकाशक : निलेश प्रकाशन, जी–5/62, अर्जुन नगर, दिल्ली–110051
5. बद्री सिंह भाटिया, पड़ाव, प्रकाशन वर्ष 2010, प्रथम संस्करण, पृ०सं० 131, प्रकाशक : निलेश प्रकाशन, जी–5/62, अर्जुन नगर, दिल्ली–110051
6. बद्री सिंह भाटिया, पड़ाव, प्रकाशन वर्ष 2010, प्रथम संस्करण, पृ०सं० 49, प्रकाशक : निलेश प्रकाशन, जी–5/62, अर्जुन नगर, दिल्ली–110051
7. बद्री सिंह भाटिया, पड़ाव, प्रकाशन वर्ष 2010, प्रथम संस्करण, पृ०सं० 58, प्रकाशक : निलेश प्रकाशन, जी–5/62, अर्जुन नगर, दिल्ली–110051
8. बद्री सिंह भाटिया, पड़ाव, प्रकाशन वर्ष 2010, प्रथम संस्करण, पृ०सं० 83, प्रकाशक : निलेश प्रकाशन, जी–5/62, अर्जुन नगर, दिल्ली–110051
9. बद्री सिंह भाटिया, पड़ाव, प्रकाशन वर्ष 2010, प्रथम संस्करण, पृ०सं० 109, प्रकाशक : निलेश प्रकाशन, जी–5/62, अर्जुन नगर, दिल्ली–110051
10. बद्री सिंह भाटिया, डेंजर जोन, प्रकाशन वर्ष 2014, प्रथम संस्करण, पृ०सं० 54, प्रकाशक : नीरज बुक सेन्टर, सी–32, आर्य नगर सोसायटी, प्लॉट–91, आई.पी. एक्सटेंशन, दिल्ली–110092
11. बद्री सिंह भाटिया, डेंजर जोन, प्रकाशन वर्ष 2014, प्रथम संस्करण, पृ०सं० 36, प्रकाशक : नीरज बुक सेन्टर, सी–32, आर्य नगर सोसायटी, प्लॉट–91, आई.पी. एक्सटेंशन, दिल्ली–110092
12. बद्री सिंह भाटिया, डेंजर जोन, प्रकाशन वर्ष 2014, प्रथम संस्करण, पृ०सं० 72, प्रकाशक : नीरज बुक सेन्टर, सी–32, आर्य नगर सोसायटी, प्लॉट–91, आई.पी. एक्सटेंशन, दिल्ली–110092
13. बद्री सिंह भाटिया, रिले–रेस, प्रकाशन वर्ष 2015, प्रथम संस्करण, पृ०सं० 24, 25 प्रकाशक : नीरज बुक सेन्टर, सी–32, आर्य नगर सोसायटी, प्लॉट–91, आई.पी. एक्सटेंशन, दिल्ली–110092
14. बद्री सिंह भाटिया, रिले–रेस, प्रकाशन वर्ष 2015, प्रथम संस्करण, पृ०सं० 59, प्रकाशक : नीरज बुक सेन्टर, सी–32, आर्य नगर सोसायटी, प्लॉट–91, आई.पी. एक्सटेंशन, दिल्ली–110092
15. बद्री सिंह भाटिया, रिले–रेस, प्रकाशन वर्ष 2015, प्रथम संस्करण, पृ०सं० 62, प्रकाशक : नीरज बुक सेन्टर, सी–32, आर्य नगर सोसायटी, प्लॉट–91, आई.पी. एक्सटेंशन, दिल्ली–110092।

हरियाणा के लोकगीतों में आध्यात्मिक-रस

सुमन*

शोध सारांश :— विश्व संस्कृतियों की तुलना में भारत की पहचान अध्यात्मवाद की विचारधारा में निहित हैं। अध्यात्म में जीवन के सुख—दुख, राग—द्वेष, हर्ष—शोक आदि का पर्यवसान रहता है। ब्रह्म एवं आत्मा को जानने के जो साधन हैं, प्रकृति सम्बन्धी जो तत्व दृष्टि हैं, उसकी जिज्ञासा एवं संसार के मूल में व्याप्त दुःख के उन्मूलन के सिद्धान्त को अध्यात्म के अंतर्गत माना जाता है। अध्यात्मिकता के कारण ही भारतीय संस्कृति अंतमुर्खी, गंभीर और मूल्यान्वेषी हैं। इसी कारण प्रेम, करूणा, अहिंसा, परोपकार, मैत्री आदि गुणों का विकास होता है। हरियाणा के लोकगीतों का धरातल बड़ा व्यापक एवं रंग—बिरंगा हैं। प्राचीन इतिहास, पुराण कथा, सामाजिक संदर्भ, तीज—त्यौहार, उत्सव—संस्कार, नीति—भक्ति आदि इन गीतों में चित्रित होते हैं। हरियाणा प्रदेश आस्था और विश्वास के बल पर चलने वाला प्रदेश हैं। यहां पर बड़े से बड़ा काम भी भगवान के नाम की आस्था और विश्वास के बल पर किया जाता है। किसी अज्ञात शक्ति में आस्था एवं विश्वास ही अध्यात्मवाद की पोषिका कही जाती है।

मुख्य शब्द :— अध्यात्म, प्रेम, करूणा, संसार, दुःख, राम।

आध्यात्मिकता भारतीय साहित्य एवं जीवन दर्शन की रीढ़ हैं। जीवन के शुभ—अशुभ, राग—द्वेष, करूणा—घृणा, हर्ष—शोक सभी का पर्यवसान अध्यात्म कहलाता है। सुख—दुख, राग—द्वेष भी सभी भावनाएं निमज्जित होकर अध्यात्म द्वारा परम शांति की अवस्था तक पहुंचती हैं। जीवन के सभी झंझावत अध्यात्म रूपी महासागर में परिशमित होते हैं। साहित्यकार भी अपनी भावनाओं को इसी महासमुन्द्र में निमज्जित कर अपना गंतव्य निर्धारित करता है।

अध्यात्म शब्द अधि + आत्मन दो शब्दों के योग से बना हैं। श्रीमद्‌भगवदगीता में अध्यात्म का प्रयोग ऐकांतिक सत्ता के लिए हुआ है।[1] अमेरिकी वेदांती इसर्सन अध्यात्मक का अर्थ अधीश्वर आत्मा (ओवर सोल) स्वीकार करते हैं।[2] इस प्रकार कहा जा सकता है कि आत्मा या परमात्मा सम्बन्धी ज्ञान या आत्मा एवं परमात्मा का सम्बन्ध एवं ब्रह्म एवं आत्मा विषयक जानकारी अध्यात्म के अन्तर्गत आते हैं। अध्यात्म में यह धारणा भी कार्य करनी है कि शरीर की मृत्यु के पश्चात आत्माएं जीवित रहती हैं और किसी न किसी माध्यम से जीवित प्रणियों से सम्पर्क करती हैं। इस तथ्य पर विश्वास की आत्मा सत्य हैं, भौतिक जगत नहीं। अतः आध्यात्मिकता शब्द उस विचारधारा के लिए प्रयुक्त होता है जिसमें आत्मा को ही सबका मूल माना जाता है। उपनिषदों तथा महाभारत में अध्यात्म शब्द का प्रयोग 'शरीर' के अर्थ में होता था किन्तु कालान्तर में "चैतन्य आत्मतत्व" के अर्थ में यह शब्द रूढ़ हो गया। ग्रीक दार्शनिक अफलातून ने इस विषय पर गहन विचार किया है और संसार के मूल में अभौतिक तत्व की स्थिति मानी और उसे ईदिया (आईडिया) नाम दिया। आज सभी दर्शनों के लिए आइडियो—लिज्म शब्द का प्रयोग होता है। जिसके अनुसार भौतिक जगत का अभौतिक तत्व हैं।[3]

चेतनात्मा को ज्ञान का मूलाधार कहा जाता है। आत्मा का जड़ विषय के साथ सम्बन्ध कैसे संभव हैं। अध्यात्म से इसी प्रकार के प्रश्नों के समाधान ढूंढे जाते हैं। अद्वैत वेदांत के अनुसार माया को आत्मा और जगत के बीच की कड़ी माना जाता है। माया के कारण ही एक आत्मा जड़ और चेतन के रूप में प्रकट होती है। अतः संसार मायानिर्मित एवं आत्मा की दृष्टि से असत् कहा जाता है। माया को अज्ञान भी कहते हैं। ब्रह्म का वास्तविक रूप छिपाकर उसे संसार के रूप में आभासित करना 'माया' का ही कार्य है।[4] आत्मा इस संसार के मूल में हैं, अतः यह संसार आत्मा से भिन्न नहीं हैं। समस्त भौतिक प्रकृति सतोगुण रजोगुण तथा तमोगुण से निर्मित है।[5] संसार में जो कुछ भी विद्यमान है, वह पदार्थ तथा आत्मा का प्रतिफल

*** शोधार्थी, हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक, हरियाणा।**

हैं आत्मा सृष्टि का मूल क्षेत्र हैं। भौतिक जगत आध्यात्मिक शक्ति के आधार पर ही प्रकट होता है आध्यात्मिक ग्रंथ भगवद्गीता में इसका उल्लेख इस प्रकार है–

अपरेचमितस्वन्यां प्रकृति विद्धि में पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।।
एतधोनीमि भूतानि सर्वाणोन्युयधारय।
अहं कृत्स्वरूप जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।।[6]

अर्थात् (हे महाबाहु) यह मेरी अपरा शक्ति है। अब तू मेरी अन्य जीव रूपा परा शक्ति को जान जिसने समस्त संसार को धारण कर रखा है। तू ऐसा समझ की सभी प्राणी इन दोनों शक्तियों (अपरा और परा) से उत्पन्न हैं और मैं समस्त जगत् के उद्भव और विलय का मूल कारण हूं। अतः समस्त सृष्टि में एक ही सत्ता दृष्टि में आती है उसे 'ब्रह्म' कहें या शक्ति। समस्त संसार के मूल में उसी का अस्तित्व हैं।

आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा ही जीव जड़ से पृथक होता है। विनम्रता दंभहीनता, अहिंसा, सहिष्णुता, सरलता, प्रामाणिक गुरू के पास जाना, पवित्रता, स्थिरता, आत्मसंयम, इंद्रिय तृप्ति के विषयों का त्याग, अंहकार का अभाव, जन्म–मृत्यु वृद्धावस्था तथा रोग के दोषों की अनुभूति, वैराग्य, संतान, स्त्री, घर तथा अन्य वस्तुओं की ममता से मुक्ति, अच्छी तथा बुरी घटनाओं के प्रति समभाव, ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति, एकांत स्थान में बने रहने की इच्छा, आत्मसाक्षात्कार की महत्ता को स्वीकार करना तथा परम सत्य की दार्शनिक खोज ही ज्ञान हैं।[7] इस ज्ञान को प्राप्त करना या करने का प्रयास ही अध्यात्म का व्यावहारिक पक्ष है। आध्यात्मिकता के विषय में प्रख्यात साहित्यकार रामचन्द्र वर्मा ने अपने विचार इस तरह प्रकट किये हैं– "आध्यात्मिक क्षेत्र मे ईश्वर, देवी–देवता, देवदूत आदि के प्रति मन में होने वाले विश्वास या श्रद्धा के आधार पर स्थित कर्त्तव्य कर्म अथवा धारणाएं जो कुछ विशिष्ट प्रकार के आचार शास्त्र अथवा दर्शन शास्त्र पर आधारित होते हैं, जैसे– ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म, हिन्दु धर्म आदि।[8]

अतः आध्यात्म का अर्थ– आत्मा का चिंतन। किन्तु निरन्तर अभ्यास से ही कोई भावना विचार हमारे स्वभाव का अंग बन जाता है। इसलिए निरन्तर आत्म–चिंतन के अभ्यास से जिस स्वच्छ स्वभाव की प्राप्ति होती है, वही अध्यात्म हैं। आध्यात्मिकता में ज्ञान, भक्ति और कर्म की मानसिक उदात्तीकरण के मार्गों के रूप में निर्दिष्ट किया गया है।[9] वस्तुतः आध्यात्मिकता लोक–बाह्य तत्व नहीं हैं वह मनुष्य को लौकिक संकीर्णता से मुक्त अवश्य करती है और उसे उदात्त शुद्ध मानवता का साक्षात्कार कराती है।

हरियाणवी लोकगीतों का धरातल अत्यंत व्यापक एवं रंग–बिरंगा है। ऋतु–परिवर्तन के साथ ही इन गीतों में परिवर्तन हो जाता है। प्राचीन इतिहास, पौराणिक कथाएं, कल्पना और यथार्थ, सामाजिक संदर्भ, तीज–त्यौहारों एवं संस्कारों का चित्रण इन गीतों में खूब मिलता है। नीति, भक्ति, महापुरूषों के जीवन आदर्श सम्बन्धी गीतों की संख्या भी कम नहीं हैं। कार्तिक मास में स्नान के लिए जाती हुई रमणियों के कंठों से निकलते मधुर स्वरों से जब नींद अनायास पलकों से उतर कर चली जाती है तो लोकगीतों में वर्णित जीवन की क्षणभंगुरता एवं निस्सारता का चित्र आंखों के समक्ष आकर खड़ा हो जाता है। इन पंक्तियों को सुन विरक्ति का अनुभव होता है–

एक गज धरती, सवा गज कपड़ा।
यो हे मेरे जीवड़े का साथी हो राम।।

हरियाणवी संस्कृति को रामभक्तों की, आस्तिकों की, सज्जनों एवं गुरूजनों की बस्ती तथा गोपालों का देश, निरामिष सात्विक भोजन हरि भक्ति यहां की विरासत हैं। प्रस्तुत लोक गीत में इस प्रकार का वर्णन किया गया है जिसमें एक सखी दूसरी सखी से उस रामजनियां के देश में चलने के लिए आग्रह करती है। वह कहती है वहां लोभ, मोह के लिए कोई स्थान नहीं हैं वहां सदा धर्म का शासन रहता है–

चालो ऐ भैंणा रामभजनिया के देस।
लोभ मोह उड़ै दोनू ए कोन्या, धर्म तुलै सै हमेस।।
चालो हे भैंणा रामभजनियां के देस।

लोहा पीतल दोनू ए कोन्या, उड़ै सोना ए तुलै सै हमेस।।
चालो हे भैंणा रामजनियां के देस।
नुगरे सुगरे उड़ै दोनू ए कोन्या, गुरू ए मिलै से हमेस।।
चालो हे भैंणा रामजनियां के देस।
दूध दही का उड़ै घाटा ए कोन्या, मक्खन तुलै से हमेस।।
चालो हे भैंणा रामजनियां के देस।।[10]

हरियाणवी धरा सत्संग एवं कीर्तन की भूमि हैं। सन्तों द्वारा गांवों में सत्संग का अखण्ड क्रम चलता रहता है, जिसमें शब्दों, भजनों एवं वाणियों के माध्यम से संसार की निस्सारता तथा प्रभु भक्ति की तरफ प्रेरित करने की प्रेरणा मिलती रहती है। शब्दों, भजनों एवं वाणियों के माध्यम से व्यक्ति को प्रभु भक्ति की तरफ उन्मुख करने का प्रयत्न किया जाता है। हे अभिमानी मनुष्य तेरी अवस्था (हालात) वृक्ष के पीले पत्ते की भांति जीर्ण–शीर्ण होने लगी हैं, किन्तु फिर भी तू सांसारिक प्रपंचों में फंसा हुआ है। मनुष्य का जीवन बड़े पुण्य कर्मो द्वारा प्राप्त होता है। मूर्खों के संग में पड़कर तुम्हारी आत्मा रूपी चद्दर मैली हो रही है। तू ज्ञान रूपी साबुन से इसे स्वच्छ बना ले। चित्त को वासनाशून्य एवं निर्मल कर ले। भले एवं बुरे कर्मो की पहचान विवेक से कर। कालचक्र को रोक पाना असम्भव है इसलिए हे अभिमानी नर! तू राम नाम की रट लगा अर्थात् निरंतर राम नाम का जप कर। एक लोकगीत में इसकी व्यजंना इस प्रकार हुई है–

भजन करै न अभिमानी। काया तेरी हुई रै पुराणी।।
राम रटै नै अभिमानी। चादर तेरी हुई रै पुराणी।।
नौ–दस मासां बणते हो गये। बड़ी ए जतन तै आई।।
काया तेरी हुई रै पुराणी। लाया रै क्यु ंना ग्यान का रै साबण।।
धोई रै क्यु ंना बिन पाणी। भजन कर नै अभिमानी।।
काया तेरी हुई रै पुराणी। मूरख संग मैं मैली रै कर दी।।
बुरी ए भली ना जाणी। भजन करै न अभिमानी।।
काया तेरी हुई रै पुराणी। कहती कमाली कबीरा जी की बाली।।
या समैं नित आवणी–जाणी। भजन करै न अभिमानी।।
काया तेरी हुई रै पुराणी। राम रटै नै अभिमानी।।
चादर तेरी हुई रै पुराणी।।[11]

ईश्वर भक्ति, ज्ञान और साधु संगति द्वारा व्यक्ति में जिस वैराग्य भावना का उदय होता है उसकी उपलब्धि संसार की असारता एवं विषमता में पायी जाती है। संसार तो साधक की मात्र कार्यस्थली है। संसार में अनेक प्रकार के प्रंपच है। इसके कार्य अर्थपूर्ण हैं। मानव निंदा एवं वासना से ग्रस्त होकर धर्म विहीन एवं आहार विहीन कृत्य करता है। मनुष्य को छिन्द्रावेषण प्रिय है। प्रत्येक कार्य स्वार्थ के वशीभूत होकर करता है। संसार का प्रंपचपूर्ण एवं विषम व्यवहार ही मनुष्य में वैराग्य भावना उत्पन्न करके चित्त को प्रबल बनाकर उसे त्याग एवं भक्ति के लिए प्रेरित करता है। एक हरियाणवी लोकगीत में स्वार्थ, कर्म और कर्मफल के भोग से मुक्ति रामभक्ति द्वारा ही सम्भव बताई गई है, अन्यथा जीवन दूभर हो जाता है। संसार को जीतने का एक ही उपाय है राम भक्ति, सत्संग और समदर्शिता। मनुष्य जीवन क्षणभंगुर है। कागज की पुड़िया के समान हैं, हवा इसे उड़ा ले जाएगी। मिट्टी के ढेले के समान है, पानी की बूंदे लगते ही गल जाएगा। इसलिए मनुष्य को नित प्रति राम भजन में रत रहना चाहिए–

राम नाम सुखदाई, भजन करो भाई कै ये जीवणा दो दिन का।
तेरा जीवन कागज की पुड़िया, पवन चले उड़ जाई।।
भजन करो भाई कै ये जीवणा दो दिन का।
तेरा जीवन माटी की डलिया, बूंद पड़े गल जाई।।
भजन करो भाई कै ये जीवणा दो दिन का।
कौड़ी–कौड़ी माया जोड़ी, संग चलै ना पाई।।

भजन करो भाई कै ये जीवणा दो दिन का।।
राम नाम सुख दाई।
भजन करो भाई कै ये जीवणा दो दिन का।।[12]

रामभक्तों में कीर्तन हरियाणा में अति सरस और मधुर बन पड़े हैं। राम नाम अनमोल हैं साधु–संतों ने इस रहस्य को जाना है, मनुष्य को अपने हृदय में इसे टटोलना चाहिए और मुख से सदैव जय–जय सीता राम बोलना चाहिए। काम का त्याग करके राम की ओर चित्त लगाना चाहिए–

मुख तै बोलो रै जै जै सीताराम।
बड़े भाग माणस तन पाया।।
सुर दुरलभ सब ग्रंथों नै गाया।
राम भजन का करतब बणाया।।
तज या खोटे काम।
बिरथा मत डोलो रै जै–जै सीताराम।।[13]

प्राणी मात्र के लिए दया और करूणा हरियाणावासियों के हृदय में भरा रहता है। यहां के निवासी जीव वध को पाप समझते हैं, इसलिए जीव–जंतुओं एवं पशुओं के शिकार पर यहां के निवासी आपत्ति करते हैं। पशु–पक्षियों के शिकार पर धार्मिक एवं सामाजिक रोक–टोक है। हरियाणावासियों की लोक चिंता में बोद्धो के दुखवाद का भी गहन समावेश है। हरियाणा के एक लोकगीत में महिलाओं के संलाप में दुखवादी दृष्टि की व्याप्ति को जीवन का आर्य–सत्य किस सहजता पूर्वक सिद्ध किया गया है–

बागा म्हं दुख सै बगीचा म्हं दुख सै।
पेड़ कटै ए ज्यब डालियां म्हं दुख सै।।
न्यु मत जाणै ए बेबे।
तालां म्हं दुख सै ए कलियां म्हं दुख सै।।
ताल सूखै ज्यब मछियां नै दुख सै।
न्यू मत जाणै ऐ बेबे।।
राणी म्हं दुख सै रोहतास म्ह दुख सै।
भंगी घर पानी भरै राजा म्ह दुख सै।।
न्यु मत जाणै ए बेबे।
राम म्हं दुख सै ए लिछमन म्ह दुख सै।।
सीता हड़ी ए जद रावण नै दुख सै।
न्यु मत जाणै ए बेबे।।[14]

अर्थात् संसार भी प्रत्येक गतिविधि में दुख व्याप्त है। महात्मा बुद्ध के कथनानुसार संसार दुखों का घर है। इसी उक्ति को चरितार्थ करता उपर्युक्त गीत है। जिसमें सब क्रिया कलापों में दुख को अभिव्यंजित किया गया है।

प्राकृतिक और मानवी सृष्टि का कण–कण दुख के आसुओं से करूणार्द्र हो रहा है, दुख मानव जीवन की आंख में अटके आंसू–कण की तरह बाहर–भीतर दोनों की दहलीज पर खड़ा पहरा दे रहा है। दुख के विस्तृत फैलाव के कारण ही मनुष्य वैराग्य की तरफ झुकता है। विरक्त जन के लिए यह संसार एक सराय या धर्मशाला की भांति होता है जैसे मुसाफिर किसी सराय या धर्मशाला में कुछ समय के लिए ठहरते हैं और फिर चले जाते हैं उसी प्रकार इस संसार में जीवात्मा आती है और चली जाती है। इस आवागमन का चक्कर और संसार में व्याप्त दुख ही जीवात्मा को प्रभु शरण में जाने के लिए प्रेरित करती है। वह दिन–रात प्रभु से प्रार्थना करती है कि, मेरा कायाकल्प कर दो। मेरी आत्मा को प्रेम के रंग में भरकर मुझे भव–बन्धनों से मुक्ति दो। जीवन नश्वर है। युवावस्था धीरे–धीरे वृद्धावस्था में तब्दील हो जाती है। शरीर के सारे अंग प्रत्यंग शिथिल पड़ जाते हैं। इसको एक गीत में चरखे के रूपक के माध्यम से इस प्रकार बताया गया है–

बुढ़िया हुआ पुराणा तेरा चरखा।
स्याही गई सफेदी आई, ध्यान करो ईश्वर का।।
चारू खूंटे हाल्लण लागै, माहे खावै लचरका।
टूट गई माला उधड़ गई जतनी, घर बह गया चरमख।।
कै री बुढ़िया हुआ पुराना तेरा चरखा।।[15]

चरखा रूपी शरीर धीरे–धीरे पुराना एवं शिथिल हो जाता है। सारे बाल सफेद हो जाते हैं इसलिए मनुष्य को ईश्वर का भजन करना चाहिए। रामभक्तों में कीर्तन हरियाणा में अति सरस और मधुर बन पड़े हैं। राम नाम अनमोल रत्न हैं; संतों ने इस रहस्य का ज्ञान प्राप्त किया है। मनुष्य को अपने हृदय के अन्दर ईश्वर की खोज कर निरंतर 'राम नाम' का जाप करना चाहिए। काम को छोड़ राम की तरफ ध्यान केंद्रित करना चाहिए–

मुख तै बोलो रै जै जै सीताराम।
बड़े भाग हो माणस तन पाया।।
सुर दुरलभ सब ग्रंथों नै गाया।
राम भजन का करतब बणाया।।
तज द्यो खोटे कामा नै।
बिरथा मत हांडों रै जै जै सीताराम।।
इसलिए हरियाणवी जनसामान्य में यह उक्ति प्रचलित है–
सीताराम सीताराम राधे श्याम कहिए।
जिस ढाल राखै राम उस ढाल रहिए।।

संदर्भ–सूची :–

1. भगवद्गीता 8/3 (गीता प्रेस गोरखपुर)।
2. हिन्दु धर्मकोश, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, स॰1988, पृ॰25।
3. हिन्दी विश्वकोश (भाग–1) नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, 1960, पृ॰102।
4. भारतीय दर्शन, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, स॰2002, पृ॰102।
5. श्रीमद भगवद्गीता 7/13 गीता प्रेस, गोरखपुर।
6. वही 7/5, 6।
7. वही 13/8,6,10,11।
8. रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश (तीसरा खण्ड) ,हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1993 ई॰, पृ॰ 158।
9. डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा, निराला काव्य का सांस्कृतिक पक्ष, हिन्दी साहित्य संस्थान, आदर्श कालोनी रोहतक, 1983, पृ॰41।
10. डॉ, भीम सिंह मलिक, हरियाणा लोक साहित्यः सांस्कृतिक संदर्भ, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़ 1990, पृ॰143।
11. वही 145।
12. साधुराम शारदा, हरियाणा के लोकगीत, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी पंचकूला, 2011, पृ॰ 355।
13. डॉ॰ भीमसिंह मलिक हरियाणा लोक साहित्यः सांस्कृतिक संदर्भ, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़ 1990, पृ॰149।
14. वही, पृ॰ 148।
15. नादान हरियाणवी, हरियाणवी लोकगीत संग्रह, देहाती पुस्तक भंडार, दिल्ली, 1962, पृ॰ 136।

भारतीय साहित्य और अनुवाद

डॉ. सत्यवीर *

भारतीय भाषाओं में रचित प्रचुर शास्त्रीय साहित्य को हम अनुवाद के माध्यम से ही पढ़ सकते हैं। उदाहरण के लिए मध्यकाल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना भक्ति आंदोलन है, जिसका विस्तार देशव्यापी है। इस आंदोलन को समग्रता से जानने के लिए अनुवाद ही एकमात्र माध्यम है। ऐसे ही वर्तमान में विभिन्न भारतीय भाषाओं में क्या लिखा जा रहा है? साहित्य सृजन की प्रक्रिया की प्रवृत्तियां क्या है? यह जानने के लिए हमें अनुवाद का सहारा लेना पड़ता है। स्पष्ट है कि भारतीय साहित्य को पढ़ने और समझने के लिए उसके बारे में कोई राय देने के लिए उस पर समग्रता से विचार करने के लिए अनुवाद एक महत्वपूर्ण कड़ी का कार्य करता है। इसी कारण "बीसवीं सदी को अनुवाद का युग कहा गया है। यद्यपि अनुवाद सबसे प्राचीन व्यवसाय या व्यवसायों में से एक कहलाता है तथापि उसको जो महत्व बीसवीं सदी में प्राप्त हुआ वह उससे पहले उसे नहीं मिला। इसका मुख्य कारण यह है कि बीसवीं शताब्दी में ही भाषा संपर्क–भिन्न भाषाभाषी समुदायों में संपर्क की स्थिति प्रमुख रूप से उभर कर आई। इसके मूल कारण आर्थिक और राजनीतिक ही रहे हैं।"[1]

अनुवाद की दृष्टि से हिंदी व्यापक और अखिल भारतीय भाषा है। अन्य भारतीय भाषाओं की रचनाएं हिंदी में सर्वाधिक अनुदित हो रही हैं। हालांकि अंग्रेजी से अनुवाद की प्रवृत्ति भी बढ़ी है लेकिन सर्वाधिक अनुवाद हिंदी में ही होते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि हिंदी पढ़ने, बोलने वालों की संख्या अपेक्षाकृत काफी अधिक है। लेखक और प्रकाशक अपने पाठक वर्ग के विस्तार के लिए पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद करना चाहते हैं। हिंदी से अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद की वैसी स्थिति नहीं है, इसका कारण इन भाषाओं की क्षेत्रीय सीमा और हिंदी की अखिल भारतीयता है। विभिन्न भारतीय भाषाओं की अखिल भारतीय पहचान बनाने में अनुवाद प्रमुख भूमिका निभाते हैं। साहित्य के अखिल भारतीय पुरस्कारों के निर्णय में भी विभिन्न भाषाओं की कृतियों के अनुवादों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यद्यपि मूल अनुशंसा भाषा विशेष के पाठकों से ही ली जाती है लेकिन विभिन्न भाषाओं की रचनाओं को तुलनात्मक संदर्भों में देखने के लिए उनके अनुवादों का सहारा लेना पड़ता है। भारतीय भाषाओं की रचनाओं के हिंदी अनुवाद के साथ–साथ अंग्रेजी अनुवाद भी काफी प्रचलन में है। भारतीय साहित्य के इतिहास लेखन, संग्रह या चयनिका के प्रश्न का भी अनुवाद के माध्यम से ही समाधान हो पाता है। विभिन्न भारतीय भाषाओं पर समग्रता से विचार करने वाली पुस्तक किसी एक भाषा में ही लिखी जाती है और इसमें अनुवाद का आधार ग्रहण किया जाता है। भारतीय साहित्य के अध्ययन में अनुवाद के महत्व का एक और पक्ष है प्राचीन भारतीय साहित्य के और विशेष रूप से संस्कृत वांग्मय के अध्ययन का। यह पक्ष वस्तुतः परंपरा की जानकारी और उससे जीवंत संपर्क स्थापित करने से जुड़ा है। मध्यकालीन भारतीय साहित्य में यद्यपि सीधे–सीधे भाषांतर की परंपरा नहीं थी, फिर भी उस युग के सभी संत भक्त कवियों ने प्राचीन ज्ञान के साहित्य और दर्शन को संस्कृत में पढा उसका अवगाहन किया और लोक भाषाओं में उसे प्रस्तुत किया। इस तरह मौलिक सृजन में छायानुवाद जहां–तहां रहा। प्राचीन ज्ञान और साहित्य की परंपरा लोक भाषाओं के माध्यम से आधुनिक काल के साथ प्रवाहित हुई। उसमें इन आंशिक अनुवाद व्याख्यानों की भूमिका मुख्य रही और साझी परंपरा को मुखर करने में अपने ढंग से क्रियाशील रहे। भारतीय साहित्य के अध्ययन में अनुवाद के महत्व को तीसरे रूप में हम प्राचीन वांग्मय के आधुनिक अध्ययन में अनुवाद की भूमिका को देख सकते हैं। "अनुवाद के संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस कर्म के प्रति यह आम धारणा है कि यह मौलिक रचना की तुलना में द्वितीय

*** सहायक प्रोफेसर, अनुवाद अध्ययन विभाग, अनुवाद एवं निर्वचन विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र।**

श्रेणी की योग्यता या कर्म है, मुक्त रहना अच्छे अनुवादक होने की प्राथमिक आवश्यकता होती है। इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि अनुवादक रचनाकार की अपेक्षा अधिक भाषाओं का जानकार तो होता ही है, प्रसंग भेद से, उसमें नाना रूपों और संदर्भों के भाषिक प्रयोगों के अनुरूप अपनी भाषा को ढालने, उसका प्रयोग करने और यथावश्यक नये शब्दों का निर्माण करने की क्षमता भी होती है। उसकी गति एकाधिक विषयों में होती है और उनके अनुसार वह भाषा–प्रयोग में विविधरूपता लाने में सक्षम होता है।"[2] इसके लिए हमें पाश्चात्य विद्वानों द्वारा संस्कृत साहित्य के अध्ययन के प्रयासों और परंपरा को और भारतीयों द्वारा अध्ययन के प्रयासों को देखना होगा। ब्रिटिश शासकों को भारतीय प्राचीन ज्ञान के प्रति सहज और प्रबल जिज्ञासा रही जिसके चलते उन्होंने संस्कृत भाषा सीखी और उससे अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन आदि भाषाओं में अनुवाद किए। इस तरह भारत में अनुवाद सर्वमान्य मूल स्रोत रहा है। संस्कृत वांग्मय के अंतर्गत वैदिक साहित्य के प्रायः सभी अंगो का अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं में पूर्णतः तथा अंशतः अनुवाद हो चुका है। विदेशी अनुवादकों में मैक्समूलर, विल्सन, ग्रिफिथ, मैकडॉनल्ड आदि का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अंग्रेजी के अतिरिक्त जर्मन में भी काफी अनुवाद कार्य हुआ है किंतु भारतीय वांग्मय के अध्ययन में विशेष योगदान अंग्रेजी अनुवादकों का ही माना जाता है। अन्य विदेशी भाषाओं के अनुवाद हमारे देश की जिज्ञासाओं को सुलभ नहीं रहे। उपनिषदों का अनुवाद तो 17वीं शताब्दी में दाराशिकोह ने किया था लेकिन वह केवल संग्रहालय या पुरातत्व विद्या की ही वस्तु है। अंग्रेजी में जी. ए. जैकब ने ग्यारह उपनिषदों का जो अनुवाद प्रस्तुत किया था वही वास्तव में भारतीय साहित्य के अध्ययन के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ। ज्ञान के साहित्य के अतिरिक्त संस्कृत के ललित साहित्य के ग्रंथों के अनुवाद की भी एक अच्छी परंपरा रही है। प्राचीन काव्य ग्रंथों में रामायण, महाभारत और भागवत, भारत की सभी भाषाओं के आदर ग्रंथ रहे हैं। अंग्रेजी में रामायण का पद्यबद्ध अनुवाद आर.टी.एच.ग्रिफिथ ने किया और गद्य अनुवाद भारतीय लेखक मन्मथनाथ ने किया। संपूर्ण महाभारत का अंग्रेजी अनुवाद प्रतापचंद्र राय ने ग्यारह भागों में प्रस्तुत किया और उसके विभिन्न प्रकरणों के अनुवाद अनेक भाषाओं में समय–समय पर किए गए। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध रहा महाभारत और भगवद् गीता का अनुवाद जिसके अनुवाद देश–विदेश की अनेक भाषाओं में किए गए। गीता के अनुवाद की परंपरा सदियों से चली आ रही है और वर्तमान में अंग्रेजी तथा विभिन्न भारतीय भाषाओं में आज भी चल रही है। लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, राधाकृष्णन जैसे युग पुरुषों ने इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है। अनुवाद के अतिरिक्त ग्रंथों के रूपांतरण भी सभी भाषाओं में हुए हैं। आधुनिक युग में भारतीय भाषाओं का पारस्परिक संबंध घनिष्ठ होता गया है और इसके साथ अनुवाद का क्षेत्र भी बढ़ता गया है। वैसे तो कई शताब्दी पूर्व रामचरितमानस के एकाधिक अनुवाद भारत के अधिकांश भागों में हो चुके थे।

बहुभाषिक समाज को संपर्क सूत्र में बांधने और एकीकृत राष्ट्र के रूप में संगठित करने के लिए अनुवाद आवश्यक होता है। जिस भाषा को राजभाषा के रूप में अपनाया गया है वह भाषा राजनीति के स्तर पर देश और समाज को एकीकृत करती है। बहुभाषी समाज के लिए लोगों को सामाजिक–सांस्कृतिक और भावनात्मक स्तर पर भी एकता के सूत्र में पिरोना आवश्यक है। उन्हें परस्पर निकट लाने और एकता के सूत्र में बांधने में अनुवाद बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। राष्ट्रीय स्तर का कोई संदेश सूचना या कार्यकलाप विभिन्न भाषा–भाषियों के बीच अनुदित होकर पहुंचता है। उनकी तरफ से विभिन्न भाषाओं में प्रस्तुत प्रतिक्रिया अनुवाद के माध्यम से राष्ट्रीय स्तर पर एकीकृत होती है। यह बात अभी तक स्पष्ट हो चुकी है कि बहुभाषिक समाज में अनुवाद बहुत जरूरी है। किसी एक भाषा की केंद्रीयता को स्वीकार कर लेने पर भी उस भाषा में अधिकाधिक अनुवाद भारतीय भाषा–भाषियों को आश्वस्त करता है और साथ ही साथ भाषा में परस्पर अनुवाद सांस्कृतिक एकता को रेखांकित करता है। इतना ही नहीं अनुवाद विभिन्न भाषाओं की परस्पर एकता को भी सामने लाता है और बारीक अंतर को भी उद्घाटित करता है। अनुवाद की प्रक्रिया में विभिन्न भारतीय भाषाओं के बीच समानता और असमानता के काफी बिंदु उभर कर आते हैं। एक देश की भाषाएं लाख अलग–अलग हों लेकिन उनमें शब्द भंडार तथा वाक्य रचना के नियमों में काफी समानता होती है। इसलिए संपर्क भाषा हिंदी में अनुवाद की समस्या वैसी नहीं मानी जा सकती जैसी विदेशी भाषाओं से

हिंदी अनुवाद की होती है। ऐसे ही बहुत से शब्द भारतीय भाषाओं में समान है लेकिन वर्तनी में अंतर होता है।

सभी भारतीय भाषाओं से हिंदी में अनुवाद पर व्यवस्थित रूप से काम करने पर न केवल इस बहुभाषिक समाज में भाषा के द्वारा विचारों के आदान–प्रदान की कई समस्याएं सुलझ सकती हैं बल्कि भारतीय भाषाओं के बीच संवाद में गति आ सकती है जो उनके पारस्परिक संबंधों को प्रगाढ़ बना सकती है। उनके शब्द भंडार की व्यापकता और अभिव्यक्ति क्षमता की ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय–सांस्कृतिक एकता के विभिन्न पहलू उभर कर सामने आ सकते हैं लेकिन जहां दूसरी भाषाओं से हिंदी में अनुवाद की बात सोची जा रही है उसी तरह हिंदी से दूसरी भारतीय भाषाओं में अनुवाद और भारतीय भाषाओं के पारस्परिक अनुवाद पर भी ध्यान देना जरूरी है। संपर्क भाषा हिंदी के विकास में भारतीय पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के पीछे काफी जोर दिया गया है और उसका लाभ भी मिला है।

भारत में ही नहीं पूरे विश्व में अनुवाद की परंपरा बहुत पुरानी है। भारत की वर्तमान स्थिति के संदर्भ में तो इसका महत्व और भी बढ़ गया है। तभी तो "हिंदी के क्षेत्र में कार्य करने वाली सरकारी तथा गैर सरकारी सभी संस्थाएं तथा व्यक्ति इस दिशा में पूर्ण रूप से प्रयत्नशील है। हिंदी में अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं में अनेक अनुवाद छप रहे हैं। प्रयत्न यह है कि हिंदी के पाठकों को किसी भी विषय में अद्यतन सामग्री मूल के रूप में उपलब्ध हो ताकि वह उस विषय में अब तक हुए विकास की जानकारी प्राप्त कर आगे बढ़ सके और कुछ मौलिक चिंतन कर संसार को उस विषय में कुछ नया दे सकें। इस दृष्टि से अनुवाद का महत्व अधिक है।"[3]

इतना ही नहीं भारत के प्रत्येक क्षेत्र के निवासियों में भावात्मक एकता के सूत्र दिन–प्रतिदिन दृढ़तर हो और ज्ञान–विज्ञान का अभिनव स्पंदन सामान्य जनता तक पहुंचता रहे इसके लिए अनुवाद अनिवार्य हो गया है। "ज्यों–ज्यों अंग्रेजी का महत्व भारत में कम होता जाएगा और अंग्रेजी पुस्तकालय की भाषा बन कर रह जाएगी, अनुवाद की आवश्यकता भी बढ़ती जायेगी। वैज्ञानिक, तकनीकी, शैक्षणिक और व्यवसायिक क्षेत्र में विकासशील देशों में अनुवाद का महत्व बढ़ रहा है। इस कारण से विकासशील देश भी यंत्रानुवाद की दिशा में बढ़ रहे हैं। वैज्ञानिक सूचनाओं के आदान–प्रदान में राजनीतिक और कूटनीतिक व्यवहार में अनुवाद की अनिवार्यता स्वयं सिद्ध है। विकासशील देशों के लिए पाठ्य ग्रंथ निर्माण में भी अनुवाद का ही सहारा लिया जा रहा है अर्थात वैज्ञानिकों, तकनीकी विशेषज्ञों, राजनीतिज्ञों, कूटनीतिज्ञों और पत्रकारों का काम अनुवाद के बिना असंभव सा बन गया है।"[4] अनुवाद साहित्यिक तथा सांस्कृतिक वैभव का संबंध मापक है। यह राष्ट्रीय संस्कृति को विदेशी भाषाओं से आयात किए गए विचार वैभव से अधिकाधिक प्रस्फुटित होने का पर्याप्त अवसर देता है। वैज्ञानिक सभ्यता के इस युग में संसार की प्रगति गतिविधि की जानकारी उपलब्ध कराता है और राष्ट्रीय प्रतिभा को एकांतिक अनुदान तथा कट्टरपंथी राष्ट्रवादी निष्ठा से बंधने नहीं देता।

अनुवाद आज अपने सैद्धांतिक संदर्भ में बहुआयामी और प्रयोजन में बहुमुखी हो गया है लेकिन अनुवाद की सार्थकता और व्यवहारिकता में जो संवर्धन हुआ उसी अनुपात में उसके सिद्धांतों पर गहराई से चिंतन नहीं हुआ। प्राचीन भारतीय साहित्य में अनुदित साहित्य प्रायः उपलब्ध नहीं है। इसका मुख्य कारण यह माना जा सकता है कि उस काल में साहित्य और ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में भारत विश्व का सर्वाधिक विकसित देश था। यद्यपि ज्योतिष, ज्यामिती आदि क्षेत्रों में भारत को बाहर से जो नई जानकारी मिली, उसे आत्मसात करके भारतीय भाषा में स्वतंत्र रूप से लिपिबद्ध किया गया। इस प्रकार विदेशी कृतियों का अनुवाद उस काल में उस दृष्टि से नहीं हुआ जिस दृष्टि से अरब, चीन आदि देशों में भारतीय ग्रंथों का अपनी भाषाओं में अनुवाद किया। बाद में, लौकिक संस्कृत में जो अनुवाद हुए, वे प्रायः अंतःभाषिक, अंतरभाषिक और अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद थे। तत्कालीन ऋषि, आचार्य आदि काव्य का गद्यान्वय भी लिखवाते थे। विधान्तरण के कारण ये गद्यान्वय अंतःभाषिक अनुवाद कहलाते हैं। शब्दकल्पद्रुम कोश में मूल पाठ में अवधारित अर्थ होता है। उसी भाषा में उसके पुनः कथन को भी अनुवाद कहा गया है। इस दृष्टि से भाष्य तथा टीका को भी अनुवाद की श्रेणी में रखा जा सकता है। इन दोनों के रूप समान हैं लेकिन आर्ष

ग्रंथों अर्थात वेदों की व्याख्या को भाष्य कहा गया है और लौकिक (क्लासिकल) संस्कृत के ग्रंथों की व्याख्या को टीका। वस्तुतः ये दोनों हैं ही अंतःभाषिक अनुवाद। वेदों का सर्वप्रथम भाष्य ब्राह्मण ग्रंथों में मिलता है, जिनमें वेद मंत्रों की व्याख्या मूलतः यज्ञ संबंधी विभिन्न विधियों को ध्यान में रखकर की गई है। इनके साथ–साथ यास्क ने वेद मंत्रों की व्याख्या नैरुक्त, वैयाकरण, ऐतिहासिक, याज्ञिक, पूर्व याज्ञिक, परिव्राजक, नैदान, आत्मप्रवाद और अध्यात्म नौ पद्धतियों से बताई है। "यास्क के बाद सातवीं शताब्दी तक अनेक भाष्यकारों ने वेदों का भाष्य किया लेकिन वे आज उपलब्ध नहीं है। इनमें स्कंदस्वामी, नारायण और उद्‌गीथ के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके बाद माधव भट्ट, वेंकट माधव, आनंद तीर्थ, आत्मानंद आदि ने ऋग्वेद का पूर्ण रूप से अथवा आंशिक रूप से भाष्य किया। चौदहवीं शताब्दी में सायणाचार्य ने ऋग्वेद पर जो भाष्य लिखा और 19वीं शताब्दी में स्वामी दयानंद सरस्वती ने वेद मंत्रों की जो व्याख्या की, वे भाष्य के सुंदर उदाहरण हैं।"[5]

भारतीय अनूदित साहित्य को बांध पाना संभव कार्य नहीं है। भारत में अनुवाद कर्म की परंपरा उतनी ही प्राचीन है, जितनी मूल इतिहास लेखन की। अतः अनुवाद का इतिहास लेखन बड़ा कठिन और चुनौतीपूर्ण कार्य है। वास्तव में भारत के बहुभाषी देश होने के कारण अनेक भाषाओं और बोलियों के इस देश में अनुवाद की इतिहास भी संस्कृत के वैदिक–औपनिवेशिक युग में प्रारंभ हो जाता है। ये अनुवाद भारतीयों तथा विदेशियों द्वारा पूरे मनोयोग से किए गए है। यह भी उल्लेखनीय है कि एक–एक रचना के कई–कई अनुवाद भिन्न–भिन्न अनुवादकों द्वारा हुए हैं। लेकिन एक विडंबना यह है कि भारतीय स्वतंत्रता से पूर्व हिंदी भाषा में साहित्यकारों ने संस्कृत, अंग्रेजी बांग्ला, मराठी आदि भारतीय भाषाओं के साहित्यों का अनुवाद किया था, लेकिन स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद हिंदी भाषी साहित्यकारों और अनुवादकों ने भारतीय भाषाओं से बहुत ही कम मात्रा में अनुवाद किया जबकि हिंदीतर भाषी साहित्यकारों और अनुवादकों ने अपनी–अपनी भाषाओं के साहित्य का अनुवाद स्वयं किया है। वास्तव में लक्ष्य भाषा अनुवादक की मातृभाषा अथवा प्रथम भाषा हो तो उसे अनुवाद करने में अधिक सुविधा होती है और अनुवाद में सहजता और स्वाभाविकता आने की अधिक संभावना रहती है। इस ओर ध्यान देने की अत्यंत आवश्यकता है।

संदर्भ–सूची :–

1. कुमार, सुरेश (2005). *अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा,* नयी दिल्लीः वाणी प्रकाशन, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ 21।
2. जैन, निर्मला (2018). *अनुवाद मीमांसा,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 79।
3. संपादक खेमाणी, आनंद प्रकाश एवं वेद प्रकाश (1964) (सं.). *अनुवाद कला : कुछ विचार,* दिल्लीः एस.चन्द एंड कम्पनी प्राक्कथन।
4. गोपीनाथन, जी. (2005). *अनुवाद सिद्धांत और प्रयोग,* नई दिल्लीः लोक भारती प्रकाशन पृष्ठ 14।
5. गोस्वामी, कृष्ण कुमार (2014). *अनुवाद विज्ञान की भूमिका,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 433।

दलित साहित्य की समाजशास्त्रीय दृष्टि का अनुशीलन

अमृत लाल जीनगर*
डॉ. विदुषी आमेटा*

साहित्य का समाजशास्त्र वस्तुनिष्ठता एवं आत्मनिष्ठता के बीच सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश करता है। यद्यपि साहित्य किसी पद्धति विचारधारा, संस्कृति एवं समाज से विमुख नहीं हो सकता। चिन्तन एवं विचार के स्त्रोत वही से निकलते हैं। व्यक्ति और समाज के इन रिश्तों की सही सन्दर्भ में तलाश साहित्य का समाजशास्त्र करता है। दलित साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन इसी क्रम में समाज के मेहनतकश वर्ग की यथार्थ प्रस्तुति है। हिन्दी में दलित साहित्य का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में अध्ययन का नितान्त अभाव रहा है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर के योगदान और शिक्षा प्राप्ति से आई साहित्यिक–जाग्रति के पश्चात धीरे–धीरे दलित साहित्य का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाने लगा है जिससे दलित जीवन के प्रश्न, उनका भीषण स्वरूप, उनके विरूद्ध संघर्ष आदि की व्याख्या दलित साहित्य में हो रही है। साहित्यकार सामाजिक जीवन में व्याप्त तुच्छता, विषमता, अन्तर्द्वन्द्व, अमानवीयता का यथार्थ चित्रण अपनी रचनाओं में कर रहे हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि भी एक ऐसे ही प्रसिद्ध दलित साहित्यकार है, जिन्होंने समाजशास्त्रीय दृष्टि से अपने साहित्य में दलित समाज की त्रासदी का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

शब्द कुँजी – साहित्य, दलित, दृष्टिकोण, समाजशास्त्र, अध्ययन, सामाजिक यथार्थ।

आरम्भिक काल में साहित्य का संसार सिर्फ कला और सौन्दर्य के सहारे था, लेकिन आज स्थिति बदल चुकी है। अब साहित्य, कला और सौन्दर्य के स्थान पर समाज की सामाजिक संरचना, राजनीतिक परिवेश, सांस्कृतिक संस्थाओं, धार्मिक भावनाओं, आर्थिक स्थितियों आदि से बहुत दूर तक प्रभावित हो रहा है। वर्तमान में संस्कृति और साहित्य साधना का क्षेत्र मात्र प्रतीकात्मक वस्तुओं का बाजार–सा प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति में साहित्य को उसकी मूलभूत सामाजिकता से उसकी अस्मिता के सम्बन्ध की पहचान कराने वाली दृष्टि का विकास ही साहित्य का समाजशास्त्र के रूप में हुआ है। साहित्य का समाजशास्त्र एक व्यापक विषय है। यह समाज की अन्तः क्रियाओं का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करता है। यह समाज के सभी पक्षों का अध्ययन कर उसके व्यवहारिक रूप को समाज के समक्ष लाता है। इसमें समाज के विविध पहलुओं का विवेचन किया जाता हैं। समाजशास्त्र जब अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ सामने आता है, तो उसके समक्ष समाज का कोई एक विशिष्ट समूह ही नहीं होता है बल्कि वह समूचे समाज को सम्बोधित करता है। समाजशास्त्र का अध्ययन मानव जीवन के सामाजिक जीवन से जुड़ा रहता है। इसमें मानव व्यवहार का ताना–बाना विद्यमान होता है। इसका उद्देश्य सामाजिक अर्थात सार्वजनिक होता है। इसमें व्यक्तिपरकता को नाममात्र भी स्थान नहीं है। समाज परिवर्तनशील है। साहित्य के समाजशास्त्र में साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से सामाजिक परिवेश और परिवर्तन को रेखांकित करता है। इसमें समाज के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डाला जाता है, जो समाजशास्त्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। समाजशास्त्र में साहित्य के माध्यम से सामाजिक जीवन को प्रस्तुत किया जाता है। साहित्य सामाजिक यथार्थ एवं सम्भावनाओं की प्रतिध्वनि है, वह अपने केन्द्र में मानव को रखता है। साहित्यकार समकालीन सामाजिक व्यवस्था की अभिव्यक्ति अपनी रचना में करता है। साहित्य सामाजिक जीवन को उन्नति का मार्ग दिखाता है। समाजशास्त्र की आधारभूत सामाजिक व्यवस्था बाह्य दृष्टि से साहित्य को प्रभावित करती हैं। समाज में सदस्यों के हित का पोषण किया जाता है, यह कार्य साहित्य में भी किया जाता है। इस कारण समाज की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियों को आधार बनाकर साहित्य का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में अध्ययन का प्रयास किया जाता है।

*** शोधार्थी, हिन्दी विभाग, माधव विश्वविद्यालय, पिण्डवाड़ा (सिरोही) राजस्थान।**
*** अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, माधव विश्वविद्यालय, पिण्डवाड़ा (सिरोही) राजस्थान।**

साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन में सामाजिकता का गहराई से अध्ययन किया जाता है। साहित्य में सामाजिक जीवन की विविध घटनाओं को उजागर किया जाता हैं। साहित्य का सम्बन्ध काफी हद तक सामाजिक जीवन से होता है। इस सन्दर्भ में डॉ. नगेन्द्र ने कहा है कि– ''कर्ता, कृति और पाठक के त्रिकोण रूप साहित्य के सामाजिक परिवेश का विश्लेषण और संश्लेषण ही साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन है।''[1] इस प्रकार साहित्य के समाजशास्त्र में समाज का गहराई से अध्ययन किया जाता है। अतः समाज के बिना साहित्य का कोई महत्त्व नहीं है।

साहित्य और समाज अन्तर्ग्रंथित होते हैं। अतः साहित्य का समाजशास्त्र समाज के यथार्थ से टकराता है। वहीं से वह अपनी ऊर्जा ग्रहण करता है। समाज की विविधता एवं जटिलता साहित्य को अपने ढंग से प्रभावित करती है। साहित्य की निर्मिति में जीवन के अनुभव बड़े महत्त्वपूर्ण होते हैं। इन्हीं अनुभवों से साहित्य अपने सामाजिक सौन्दर्य का सृजन करता है। साहित्य का समाजशास्त्र जीवन यथार्थ चित्रण के क्रम में दलित समाज में व्याप्त विसंगतियों शोषण, अत्याचार, उत्पीड़न, भ्रष्टाचार के विरूद्ध आवाज उठाता है। देवेश ठाकुर कहते है कि – ''साहित्य किसी न किसी स्तर पर सामाजिक यथार्थ से जुड़ा होता है। इतना ही नहीं साहित्यिक रचना और उसके कथ्य तथा समाजशास्त्र का स्त्रोत मूलतः समान होता है और यह स्त्रोत मात्र 'समाज' है।''[2] अतः साहित्य और समाज का सम्बन्ध गहरा है।

दलित साहित्य अध्ययन की सर्वश्रेष्ठ पद्धति 'समाजशास्त्रीय दृष्टि' है। इस दृष्टि को ध्यान में रखते हुए साहित्य का अनुशीलन अपेक्षित है। समाज के अनेक घटक हैं। समाज एक व्यक्ति से नहीं, अनेक व्यक्तियों के समूह से मिलकर बनता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से दलित साहित्य सामाजिक सौन्दर्य को स्थापित करने हेतु कटिबद्ध है, जिसमें समस्त जाति, धर्म, लिंग, पंथ और समाज की एकता को समाहित किया गया हैं। प्रचलित वर्तमान हिन्दी समीक्षा में नए सिद्धान्तों में दलित साहित्य का समाजशास्त्र प्रमुख है। दलित साहित्य की समाजशास्त्रीय अध्ययन पद्धति विकसित करने में दलित साहित्यकारों के लेखन ने समाज और साहित्य के प्रत्येक सम्बन्ध पर समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विचार किया है, जो दलित साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन की दशा एवं दिशा का मार्गदर्शन कर रहा है।

दलित साहित्य के प्रेरणा स्त्रोत महान समाजशास्त्री डॉ. अम्बेड़कर ने भारतीय समाज व्यवस्था का यथार्थवादी चित्रण किया है। उन्होंने जाति एवं वर्ण व्यवस्था का विरोधकर समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। साथ ही समाज की वास्तविकता को उजागर कर जाति एवं वर्ण व्यवस्था को समाज विरोधी बताया है। उनका समाजशास्त्रीय अध्ययन समता, स्वतन्त्रता एवं बन्धुता की पैरवी करता है। इस सन्दर्भ में डॉ. डी. आर. जाटव ने कहा है कि– ''डॉ. अम्बेडकर का समाजशास्त्र निष्ठुर एवं अरूचिकर भले ही लगे, किन्तु उसमें उदारता, स्वतन्त्रता, समता तथा बन्धुता की भावनाएँ अन्तर्निहित अवश्य है।''[3] डॉ. अम्बेडकर दलित समाज के उन्नयन तथा समृद्धि के लिए पूर्णतः समर्पित थे। उन्होंने सामाजिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाकर समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि साहित्य विश्लेषण का महत्त्वपूर्ण अंग है। साहित्य के समाजशास्त्र में साहित्य और समाज के सम्बन्धों को जोड़ते हुए समाजशास्त्रीय अध्ययन की आवश्यकता महसूस की गई। क्योंकि दलित समस्या का अध्ययन एक ओर जहाँ सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक कारणों की खोज करता है। वही दूसरी ओर साहित्य का समाजशास्त्र साहित्यिक कृति की व्याख्या की माँग भी करता है तथा साहित्य के अस्मिता की पहचान भी। इस स्थिति में साहित्य का अध्ययन समाजशास्त्र से जोड़कर करना दलित साहित्य की अस्मिता की पहचान करना है। इस तरह समाजशास्त्रीय दृष्टि साहित्य विश्लेषण की महत्त्वपूर्ण अंग बनी है। इस सम्बन्ध में बाबू गुलाबराय ने लिखा है कि– ''समाजशास्त्रीय विश्लेषण पद्धति एक वैज्ञानिक पद्धति है, वह तथ्यों के अवलोकन परीक्षण एवं विश्लेषण की प्रणाली है, तर्काश्रित है तथा वस्तुनिष्ठ अध्ययन में निष्ठा रखती है। वस्तुनिष्ठता से उसका आशय, एक ऐसी योग्यता से है, जिसके द्वारा अनुसंधानकर्ता स्वयं को उन दशाओं से पृथक रख सके, जिनका कि वह स्वयं अंग है तथा किसी तरह के लगाव अथवा भावना के स्थान पर पक्षपात रहित तथा पूर्वाग्रहों से मुक्त तर्कों के आधार पर विभिन्न तथ्यों को उनके स्वाभाविक रूप में लक्षित करने से है।''[4]

साहित्य का समाजशास्त्र वस्तुतः आधुनिक युग में दलित साहित्य की वास्तविक और प्राकृत स्थिति को वस्तुगत ढंग से समझने की चुनौती का वैचारिक स्तर पर सामना करने की संघर्षपूर्ण प्रक्रिया की देन है। साहित्य का समाजशास्त्र साहित्य को न तो दैवी उन्माद मानता है और न अलौकिक काव्यास्वाद। वह इनके स्थान पर साहित्य को विवेकशील सामाजिक मनुष्य का रचनाकर्म स्वीकृत करता है। इस सम्बन्ध में ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते है कि– ''जब हम हिन्दी साहित्य का विश्लेषण करते हैं तो कुछ विशिष्ट स्थितियाँ पाते हैं, जैसे भक्ति एवं चारण भावनाएँ हिन्दी साहित्य में प्रबल रूप से उभरी हैं जो पलायन और स्थितियों के अनुकूलन से उत्पन्न होकर साहित्य की धारा बनी हैं और चमत्कारिक सम्भावनाओं का इन्तजार करती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। यही स्थिति आजादी की लड़ाई के दौरान 'छायावाद' की है जो एक प्रकार का पलायन ही है। निज वेदना में समाज की पीड़ा, दुःख–दर्द गौण हैं। इसके विपरित दलित साहित्य समाज के दुःख–दर्द से जूझकर मनुष्य की लड़ाई लड़ता है।''[5]

दलित साहित्य में दलित व्यक्ति अपने शोषित, पीड़ित, उपेक्षित, प्रताड़ित, अपमानित होने की गाथा एवं इतिहास की अभिव्यक्ति पाता है। इस सन्दर्भ में निरंजन कुमार अपनी पुस्तक 'मुनष्यता के आईने में दलित साहित्य का समाजशास्त्र' में लिखते हैं कि– ''समाज और इतिहास दलितों के लिए जितना बर्बर और अमानवीय रहा, उसके विरूद्ध उनकी प्रतिक्रिया आक्रोशपूर्ण और एक उन्माद के रूप में रही, यह स्वाभाविक ही है बल्कि एक सीमा तक नैतिक भी है।''[6] आज भी सवर्णों के आदर्श के रूप में वेद, पुराण, गीता, रामायण, मनुस्मृति सहित अनेक धर्मग्रंथों को माना जाता हैं। लेकिन सम्पूर्ण दलित साहित्य इन सभी धर्मग्रंथों का पुरजोर विरोध करता हैं। दलित समाजशास्त्रीय दृष्टि की मान्यता है कि ये धर्मग्रंथ समतावादी नहीं हैं बल्कि ब्राह्मणवादी हैं।

भारतीय समाज में वर्ग एवं वर्ण व्यवस्था ने सदियों से दलित समाज को टुकड़ों में बाँटकर उनके मानवीय सरोकारों को छिन्न–भिन्न किया है। हजारों साल से अंधेरे में बंद दलित समाज शिक्षा से वंचित रहा है। दलित साहित्य इन शोषित, पीड़ित, लोगों की इच्छाओं, आकांक्षाओं का यथार्थ चित्रण करने वाला साहित्य है। दलित साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन समाज में व्याप्त वर्ग व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था से मुक्ति का मार्ग खोलता है। जयप्रकाश कर्दम कहते हैं कि– ''दलित साहित्य सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना से बंधा है। वह ऐसे किसी विचार का समर्थन नहीं करता है, जो हिंसा, अलगाव या असमानता को जन्म देता या पोषण करता हो।''[7] दलित साहित्य को अपनी भूमिका पूर्ण ईमानदारी एवं जिम्मेदारी से निभाकर शोषणमुक्त समाज की परिकल्पना साकार करनी होगी।

दलित साहित्य, एक सामाजिक आन्दोलन है। दलित समाजशास्त्र सामाजिक व्यवस्था का निर्मूलन चाहता है, वह सामाजिक परिवर्तन चाहता है। समाजशास्त्रीय पहलुओ को ध्यान में रखकर यदि देखा जाए तो समूचा दलित वर्ग साहित्य में अपनी जीवटता के कारण हजारों साल से जुझता रहा है। चाण्डाल, अस्पृश्य, अन्त्यज, डोम आदि को मानवीय गरिमा से बाहर रखा गया है। उनकी तुलना कुत्तों, गधों और अन्य जानवरों से की गई है। मानवीय अधिकारों से प्रताड़ित कर उनके अस्तित्व पर प्रश्न–चिह्न लगा दिया गया। इस सन्दर्भ में मराठी के लेखक शरण कुमार लिंबाले लिखते हैं कि– ''सामाजिक बहिष्कार, अलग पनघट, अलग श्मशान, अलग बस्ती, किराए पर घर न मिलना, जाति छिपाना, सार्वजनिक स्थान से प्रवेश के लिए मनाही, दलित स्त्रियों पर होने वाले अन्याय, मृत जानवर को खींचना, फाड़ना, नाई द्वारा बाल न काटना आदि अनुभव एक सरीखे हैं।''[8] ऐसी अमानवीय और क्रूर व्यवस्था जिस समाज में व्याप्त हो, उस समाज के साहित्य में इस पीड़ा की अनुगूँज आवश्यक है। दलित साहित्य का समाजशास्त्र समाज की इस वेदना को प्रत्यक्ष करता है।

दलित साहित्य समाजशास्त्रीय दर्पण है। दलित साहित्य की दृष्टि में अतीत एक स्याह पृष्ठ है, जहाँ सिर्फ घृणा, द्वेष और अमानवीयता है, उदात्त समाज के मानवीय सम्बन्धों की गरिमा का खण्डन है। दलित समाज की प्रत्येक घटना, प्रसंग और क्रियाकलाप दैहिक वासना बनकर रह गए हैं। दलित साहित्य अतीत के इस खोखलेपन से परिचित हैं। अतीत के आदर्श उसे झूठे और छद्म लगते हैं जिसे दलित साहित्य

उतारकर फेंक देना चाहता है। डॉ. गंगाधर पानतावणे दलित साहित्य की विषयवस्तु पर विचार करते है कि– ''दलित साहित्य हमारे समाज का दर्पण है, जो हमने देखा है, अनुभव किया है, भोगा, जाना समझा, उसका अंकन उत्कटतापूर्वक हुआ है। दलित का निर्मूलन हमारे साहित्य का हथियार है। इसलिए सर्वव्यापी क्रान्ति का यह आह्वान करता है।''[9] जिससे भारतीय समाज की सच्ची और सजीव पहचान बन सके। दलित साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन इस उदात्त भाव को मुखरता से अभिव्यक्त कर समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है।

साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन दलित समाज के विविध पक्षों का सूक्ष्मता से अध्ययन कर मानव जाति के लिए मंगल कामना करता है। दलित साहित्य समतामूलक समाज की स्थापना का लक्ष्य लेकर चला है इसके लिए व्यावहारिक मूल्यबोध का क्रियान्वित होना जरूरी है। यह मूल्यबोध भाषा के प्रसंग में भी दिखाई देना चाहिए। प्रश्न केवल मौजूदा यथार्थ का नहीं है प्रश्न उस यथार्थ का भी है जिसकी रचना करने की जिम्मेदारी सवर्णों ने उठाई है। समाजशास्त्र ही एक ऐसी पद्धति है जिसके माध्यम से दलित साहित्य को नयी सोच, नया विचार, नयी धारा और नया आयाम मिला है। दलित साहित्य की समाजशास्त्रीय दृष्टि दलितों को मुख्यधारा से जोड़कर सामाजिक न्याय और सम्मान दिलाने की पक्षधर है। डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर 'हिमायती पत्रिका' में लिखते हैं कि– ''दलित साहित्य ने देश में एक नई क्रान्ति को जन्म दिया है, वह है सामाजिक समता की क्रान्ति।''[10]

दलित साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन एक अलग ही साहित्यिक समाजशास्त्र की रचना करने की ओर अग्रसर है। अम्बेडकरवादी हिन्दी दलित साहित्यकारों ने दलित साहित्य एवं दलित समाज के लिए एक नए समाजशास्त्र को स्वीकार किया है। वे सामाजिक संरचनाओं के आधार पर वैज्ञानिक ढंग से अपने साहित्य में समाज के मेहनतकश वर्ग की यथार्थ प्रस्तुति कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में 'वर्तमान साहित्य' पत्रिका में हरपाल सिंह 'अरूष' ने लिखा हैं कि– ''अम्बेडकरवादी समाजशास्त्रीय के आधार पर अब जो साहित्य लिखा जा रहा है, वह सामाजिक संरचनाओं का अध्ययन वैज्ञानिक तरीकों से करता है, जो सामाजिक स्थापनाओं में क्रियाशील साम्बन्धिक अन्तर्विरोधों को अभिव्यक्त करता है।''[11] दलित लेखक समाज की पीड़ा को आक्रोश में बदलकर साहित्यिक अभिव्यक्ति को एक नया रूप दे रहा है।

दलित साहित्य की समाजशास्त्रीय दृष्टि समाज में व्याप्त खोखले आदर्शों, मानव–विरोधी मूल्यों, असमानता पर आधारित समाज व्यवस्था का विरोध करती है। समाज व्यवस्था की जड़े जीवन की गहरी परतों में छीपी हुई थीं। दलित चेतना ने सदियों से शोषित, प्रताड़ित, अपमानित, साहित्यिक, संस्कृति से वंचित दलित समाज को साहित्य से जोड़ना शुरू किया है। जिससे दलित साहित्य उसकी निजता को पहचानने की अभिव्यक्ति बन गया है। आज हाशिए पर स्थित दलित समाज की पीड़ा साहित्य के माध्यम से समाज के सम्मुख आई है, जो सामाजिकता की पराकाष्ठा है। सदियों से दबा हुआ उनका आक्रोश साहित्य में फूटा है। जिससे भाषा और कला की परिस्थितियाँ उसे सीमाबद्ध करने में असफल हो गई है। इस सम्बन्ध में डॉ. हरिनारायण ठाकुर का कथन है कि– ''दलित चेतना, साहित्य के क्षेत्र में 'दलित साहित्य', संस्कृति और समाजशास्त्र के क्षेत्र में 'दलित विमर्श' एवं दलित अध्ययन तथा राजनीति के क्षेत्र में 'सामाजिक न्याय और सत्ता विमर्श' के रूप में हो रही है।''[12]

साहित्य का समाजशास्त्र मात्र यथार्थवाद का समर्थन करता है। इसके अन्तर्गत ईश्वर, कल्पना, अलौकिकता आदि को नाममात्र भी स्थान नहीं हैं। इसमें सिर्फ समाज की वास्तविकता, परम्परा, परिवर्तन, नई दिशा आदि पर विशेष बल दिया जाता हैं। यह सामाजिक गतिविधियों के विज्ञानशास्त्र के रूप में हमारे सामने आता है। साहित्यकार अपने साहित्य में समाज का मूल्याँकन करने वाले परीक्षक के रूप में दिखाई देता है, वह दलित समाज की समस्याओं को ढूँढकर उनका समाधान खोजने का अथक प्रयास करता है। यथार्थवादी साहित्य के सम्बन्ध में प्रो. चमनलाल ने लिखा है कि– ''दलित साहित्य यदि यथार्थवादी साहित्य की विश्वदृष्टि से स्वयं को जोड़ता है तो जाहिर कि वैचारिक स्तर पर उसकी प्रगतिशील या मार्क्सवादी दृष्टि सम्पन्न, ब्लैक साहित्य व स्त्रीवादी या स्त्री केन्द्रित साहित्य से भी निकटता बढ़ेगी क्योंकि ये सभी

साहित्यिक प्रवृत्तियाँ भी यथार्थवाद को या कला के लिए बजाय कला जीवन के लिए के सिद्धान्त का प्रतिमान अपने लिए जरूरी मानते है।''[13] इस प्रकार यथार्थवाद के समर्थन में दलित साहित्य में समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण को स्थापित किया जा रहा है।

आज दलित साहित्य की प्रत्येक विधा में साहित्य का समाजशास्त्र अपने दृष्टिकोण को स्थापित कर रहा है। साहित्य की समाजशास्त्रीय दृष्टि में आत्मकथा को विशेष महत्त्व दिया गया है क्योंकि आत्मकथा दलितों की स्वानुभूति होती है, जो भुक्तभोगी या भोगे हुए लोगों के जीवन का साहित्य हैं, जो सामाजिक यथार्थ को व्यक्त करते हुए मानवीय समता, स्वतन्त्रता, बन्धुता पर आधारित है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' मोहनदास नैमिशराय की 'अपने–अपने पिंजरे', सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत', श्यौराज सिंह 'बेचेन' की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर', कौशल्या बैसन्ती की 'दोहरा अभिशाप', सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द', तुलसीराम की 'मुर्दहिया' आदि आत्मकथाओं में दलित जीवन की त्रासदी तथा दलित समाज की विडम्बनाओं को गहरे यथार्थभाव के साथ अभिव्यक्त करते हुए साहित्य में मानवतावादी दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयास किया है।

दलित साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन में अध्येता दलित साहित्य को आधार बनाकर दलित समाज के सभी पक्षों का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में विस्तृत अध्ययन करता है। इसमें दलित समाज और उसकी सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि विविध परिस्थितियों का रेखांकन कर समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जाता है। अतः दलित साहित्य की समाजशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन करने से पूर्व भारतीय समाज व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, लिंगभेद, विषमताओं, भेदभावों, पूँजीवादी सोच, ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण, अन्तर्विरोधों, मनःस्थितियों आदि का गहन विश्लेषण करना होगा तथा भारतीय सामाजिक–राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में दलित साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन करना होगा, तभी दलित साहित्य का सही और यथार्थवादी मूल्याँकन सम्भव होगा।

दलित साहित्य की समाजशास्त्रीय दृष्टि से अनुशीलन करने पर ज्ञात होता कि वर्तमान में दलित साहित्य को नया आयाम मिल रहा है। इसके ऐतिहासिक विकास क्रम से पता चलता है कि इसकी निरन्तरता में लगातार नवीनता आई है। इसका दायरा कई मायनों में विस्तृत हुआ है। दलित साहित्य एक तरफ जहाँ अपना भौगोलिक विस्तार कर अखिल भारतीय स्वरुप ग्रहण कर रहा है, वहीं इसमें विधागत समृद्धि के साथ–साथ कलात्मक ऊँचाई भी आई है। विषय–वस्तु के स्तर में भी उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ हैं। साहित्यकारों का अनुपात विविध सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाला हुआ है। दलित साहित्य का समाजशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन करने पर मुझे भारतीय दलित समाज के यथार्थ जीवन को समझने में बहुत बड़ी सफलता मिली है। यही कारण है कि प्रस्तुत शोधपत्र में दलित साहित्य का अध्ययन समाजशास्त्रीय विधानों पर किया गया है।

दलित साहित्य का अध्ययन समाजशास्त्रीय दृष्टि से करना आवश्यक है क्योंकि देश–काल, वातावरण का प्रभाव समाज पर पड़ता है। इस प्रभाव से समाज प्रखर बनकर परिवर्तित होता है। साहित्यकार समाज को जिस कल्पना और संवेदना से देखता है तथा उसका कलात्मक रूप साहित्य में प्रस्तुत करता है वही उसका समाजशास्त्र होता है और वही उसकी समाजशास्त्रीय दृष्टि भी। इसलिए साहित्यकारों ने समाजशास्त्रीय दृष्टि से केवल दलित साहित्य को ही प्रभावित नहीं किया है बल्कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य के स्वर को एक नयी दिशा प्रदान की है। साहित्यकारों ने साहित्य में समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण का उपयोग कर दलित साहित्य के सामाजिक सरोकारों में पर्याप्त वृद्धि की है। साहित्य की सामाजिक उपादेयता व सामाजिक दृष्टिकोण सामाजिक परिवेश से जुड़ाव पर निर्भर करती है। अतः कह सकते है कि साहित्यकार का समाज से जुड़ाव जितना अधिक गहरा होगा, दलित साहित्य का सामाजिक सरोकार भी उतना ही अधिक महान होगा।

हिन्दी दलित साहित्य की समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रणाली विकसित करने में दलित रचनाकारों जैसे ओमप्रकाश वाल्मीकि, शरण कुमार लिंबाले, जयप्रकाश कर्दम, निरंजन कुमार, डॉ. हरिनारायण ठाकुर आदि

की समाजशास्त्र विषय के सन्दर्भ में लिखी गई पुस्तकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही हैं। उनके लेखन ने समाज और साहित्य के प्रत्येक सम्बन्ध पर समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विचार किया है, जो इक्कीसवीं सदी में दलित साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन की दशा एवं दिशा का मार्ग दर्शन कर रहा है। वर्तमान में साहित्य का दलित समाजशास्त्र अपनी नयी सैद्धान्तिकी गढ़ रहा है। साहित्य का यह नया समाजशास्त्र एक नए सौन्दर्य–बोध से सम्पन्न है, जहाँ दलित समाज की चिन्ता एवं उनके समस्त मुद्दे चिन्तन एवं साहित्य रचना के केन्द्र में हैं। इस प्रकार साहित्य समाज से निरपेक्ष नहीं हो सकता। सामाजिक मूल्य साहित्य के समाजशास्त्र द्वारा संरक्षित एवं संवर्धित होते रहते हैं।

स्पष्टतः दलित साहित्य जीवन के प्रश्न, उनके भीषण स्वरूप, उनके विरूद्ध संघर्ष आदि का यथार्थ रूप प्रत्यक्ष कर रहा है। दलित साहित्यकार सामाजिक जीवन की विषमता, अन्तर्द्वन्द्व व अमानवीयता का सजीव चित्रण साहित्य में करते हुए इसकी समूल समाप्ति हेतु कटिबद्ध है। समाजशास्त्रीय सन्दर्भों में यह साहित्य अपनी क्रान्ति चेतना के साथ चुनौती दे रहा है, जो समता, स्वतन्त्रता, बन्धुता और न्याय की पक्षधरता से निर्मित होती हैं। सामाजिक समानता के आधार पर समाजशास्त्रीय दृष्टि साहित्य के विवेचन, विश्लेषण में एक नवीन सिद्धान्त की स्थापना कर रही है। इस प्रकार दलित साहित्य के माध्यम से हमें समाज और वस्तुजगत को वैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय ढंग से समझने की कोशिश करनी होगी तथा मनुष्य की स्वतन्त्रता, गरिमा और व्यक्तित्व का विकास करने के लिए समान अधिकारों जैसे मानवीय मूल्यों की पक्षधरता स्थापित करनी होगी। तभी दलित साहित्य की समाजशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन करना सही मायने में सफल सिद्ध होगा।

निष्कर्ष :– साहित्य के समाजशास्त्र की मुख्य प्रवृत्ति समग्रतावादी है, वह साहित्य के सभी रूपों और पक्षों को समग्रता में समझने पर बल देता है। साहित्य के समाजशास्त्र का उद्देश्य किसी वर्ग विशेष से लगाव अथवा किसी की उपेक्षा करना नहीं है। साहित्य के केन्द्र में मनुष्य है, उसके सपने हैं, उसकी जिजीविषा है, उसका कल्याण है। ऐसे में समाज के दलित, पिछड़े, शोषित, उपेक्षित एवं हाशिए के लोगों के समक्ष किसी भी प्रकार के शोषण के विरोध में साहित्य का समाजशास्त्र खड़ा होता है। समाजशास्त्रीय अध्ययन में मानवमूल्य एवं विश्वबन्धुत्व की भावना पर विशेष बल दिया जाता है। दलित साहित्य का अध्ययन करते समय इन मूल्यों को प्रधानता दी गई हैं। परम्परा से दलितों को शिक्षा से दूर रख गुलाम बनाया गया था लेकिन डॉ. अम्बेडकर के योगदान से दलितों में परिवर्तन हुआ। जिससे दलित साहित्यकारों ने सवर्ण साहित्य को नकारकर दलित साहित्य का सृजन किया। यह साहित्य, दलित समाज की पीड़ा, वेदना, शोषण आदि का पुरजोर विरोधकर मुक्ति की कामना करता है। इस प्रकार दलित साहित्य की समाजशास्त्रीय दृष्टि का मुख्य लक्ष्य साहित्य के सामाजिकता की व्याख्या करना है। अतः दलित साहित्य का समाजशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन करना महत्त्वपूर्ण है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. डॉ. नगेन्द्र, साहित्य का समाजशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1982, पृ. सं. 5।
2. देवेश ठाकुर, साहित्य की सामाजिक भूमिका, अरविंद प्रकाशन, मुम्बई, 1989, पृ. सं. 46।
3. डॉ. डी. आर. जाटव, डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर के समाजशास्त्रीय विचार, समता साहित्य सदन, जयपुर, 1996, पृ. सं. 126।
4. बाबू गुलाबराय, साहित्य और समीक्षा, बाबू गुलाबराय ग्रंथावली, आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली, 2005, पृ. सं. 42।
5. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृ. सं. 23।
6. निरंजन कुमार, मनुष्यता के आईने में दलित साहित्य का समाजशास्त्र, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ. सं. 181।
7. जयप्रकाश कर्दम, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, दलित साहित्य सृजन के संदर्भ, पुरूषोत्तम सत्य प्रेमी (संपादक), कामना प्रकाशन, काठमाण्डू 1999, पृ. सं. 43।
8. शरण कुमार लिंबाले, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. सं. 43।
9. गंगाधर पानतावणे, अम्बेडकरवाद दलित साहित्य की प्रेरणा : शिखर की ओर, डॉ. एन. सिंह (संपादक), पृ. सं. 300।
10. सोहनपाल सुमनाक्षर, हिमायती पत्रिका, अंक 21, सितम्बर (प्रथम), 2014, पृ. सं. 1।
11. हरपाल सिंह 'अरूष', वर्तमान साहित्य पत्रिका, अप्रैल 2009, पृ. सं. 48।
12. डॉ. हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ. सं. 11।
13. प्रो. चमनलाल, दलित साहित्य एक मूल्यांकन, राजपाल एण्ड संस, नई दिल्ली, 2009, पृ. सं. 30।

नालन्दा का चुना गच निर्मित बौधिसत्व प्रतिमा

डॉ. संजय कुमार*

बुध परिवार के सदस्य के रूप मे बोधिसत्वों के अंकन के अतिरिक्त बोधिसत्व के बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त प्रतिमाएं नालन्दा में बोधिसत्व संस्कृति के क्रमशः बढ़ रहे महत्व का संकेत देती है। ये प्रतिमाएं यह भी संकेत देती कि महायन के मौलिक अभिप्राय के रूप में त्राणकर्ता की अवधारना ने कला शिल्पी तथा इसके संरक्षक के मन पर गहरे प्रभाव चिन्हे छोड़े। इन प्रभाव चिन्हो ने ही नालन्दों के कलाकारों की उत्प्रेरक 'शक्ति के रूप में कार्य किया। कलाशिल्पियों न केवल विभिन्न बोधिसत्वों का रूपांकन की नहीं किया अपितु प्रत्येक के लिए स्वंतत्र ताखे भी प्रदान कियें। इस देवता के त्रानकर्ता के रूप में प्रस्तुत करने पर कलाकार द्वारा विशेष बल दिये जाने का निश्चित संकेत उन कुछेक प्रतिमाओ से प्राप्त होता है। जिनमें बोधिसत्व के साथ गौण आकृतियों का भी अंकन हुआ है। बोधिसत्वों के सबसे अधिक सरल रूपांकनों के किनारे स्तूपो पर अंकित बोधिसत्व प्रतिमाएं है। यहां ढॉचे पर सबसे अधिक सरल रूपांकनो मे किनारे के स्तूपों पर अंकित बोधिसत्व प्रतिमाएं है। यहां पर ढॉचे पर सबसे निचला चबुतरा तीन अलग–अलग कोष्ठों में विभाजित है। इनमें मेहरावदार मध्यवर्ती चबूतरा बुद्ध प्रतिमा है। चौकोर पर्श्ववर्ती ताखे पर प्रत्येक में द्विभजीय बोधिसत्व है, जो सीधे आधार पीठ पर खड़े हुए है। यद्यपि दोनों सामान्य रूप से अभंग स्थिति में है। परन्तु दोनो की मुद्राये तथा प्रकार एक दुसरे से भिन्न है।

वामपार्ष्व वाले बोधिसत्वो का दक्षिण कर वरद मुद्रा को प्रदर्शित करता है। जबकि दुसरे कर में यह बोधिसत्व कमल की एक लम्बी नाल पकड़े हुए है। यह कृषकाय कमलदंड पादपीठिका पर विद्यमान एक लघु परन्तु भंग रूप में रूपांकित पुष्पगुच्छों के वाहर निकलता हुआ दिखलायी गयी है। गांठ की लूप को दक्षिण जानुमंडल पर देखा जा सकता है। परिधान का लहराता हुआ छोर दक्षिण चरण के सहारे नीचे की ओर उतरता हुआ दिखलायी देता है। प्रतिमा के रूपांकन में कोई कलाकार के अव्यव संगति उचित संतुलत चक्रदार गति के रूपांकन की अलंकृत पटिटका के छोरों के रेखांकन में यह बात पुरी तरह से स्पष्ट है। रूपांकन विवरणो में कतिपय भाग में स्थित बोधिसत्व के रूपांकन से अत्यधिक साम्य प्रतीत होता है। उनके उठे हुए दाहिने हाथ का कोन यह संकेत देता है कि उसमे या तो पुष्प धारण किया हुआ था अथवा चवर। दुसरा हाथ ढीले–ढीले रूप से जंघा पर न्यस्त है। धोती के भग्न टखनों के बीच में भव्य घुमावदार प्लेटों के रूप में अंकित है दोनो बोधिसत्व एक ही प्रकार के अनुपात विधान के अभिव्यंजनक है तथा प्रतिमा पुंज के भव्य रूपांकन को व्यक्त करते है। अनलंकृत पृष्ठ भूमि, आभूषणो के अत्यल्प प्रयोग, ये दोनो तथ्य स्वयं प्रतिमा की गुणवता को अधिक अच्छें तौर पर समझने में सहायता देते है। समस्त विग्रह में व्याप्त मंद–गतिक मसुन्ता के बावजुद इस कलासरचना का बल एवं शक्ति धड़ के रूपांकन–संक्षिप्ती करण कर दी गयी है। आयत एवं मांसल स्कन्धों तथा विशाल मांसपेशी युक्त वक्षस्थल द्वारा बलशीलता का भाव सुव्यक्त दिया गया है। बलिष्ठ अंगो का सुदृढ़ वक्ष के साथ सुन्दर सामंजस्य भी कलात्मक है। एक अन्य बौधिसत्व की वह खड़ी प्रतिमा और भी अधिक महत्वपूर्ण है जिसके दोनों पार्ष्वो पर घुटने को टेके हुए आकृतियों है। बौधिसत्व के बाम पार्ष्व वाली आकृति की अंजिल मुद्रा से यह अनुमान किया जा सकता है कि यह आकृति देवता का नमन कर रही है। इस समय मं अपर्याप्त अथवा लुप्त शिर के पीछे वाला प्रभामण्डल यह सुचचित करता है कि यह आकृति किसी मानव का न होकर किसी दैविक सत्व की कोई स्वरूप है। बौधिसत्व के कन्धे के उपर की ध्यान मग्न दो आकृतियां ध्यानी बुद्धो की है।

इस स्थल के उत्खन्न के उपरांत मनमाने ढंग से की गयी मरम्मत के कारण के परिचारकों की भांति इस ताखें की प्रधान प्रतिमा का स्वरूप बेतुका और बचकाना सा लगने लगा है। अतः शैलीगत विवेचन

*** सहायक प्राध्यापक, प्राचीन इतिहास विभाग, किसान कॉलेज, सोहसराय, नालंदा–बिहार।**

के लिए बौधिसत्व का वर्तमान स्वरूप न केवल निरर्थक ही है अपितु गुमराह कर देने वाला भी है। परंतु तो भी अनुबंधिक प्रतिमाओं के प्रस्तुती करण की योजना तथा उनके प्रतिमा शास्त्रीय निहीतार्थ को निकालने के लिए इन पैनल को पुरी तरह नकारा भी नहीं जा सकता। यह आवश्यक नहीं है, कि इससे तिथि निर्धारण संबंधी कोई भिन्न तात्पर्य निकले। परंतु यह आगे विचारमान विषयवस्तु के निश्चित रूप से अधिक विस्तृत संबंध कोई भिन्न तात्पर्य निकलें। परंतु यह आगे विचारमान विषयवस्तु के निश्चित रूप से अधिक विस्तृत संस्करण के साथ अत्यंत निकटवर्ती रूप में संबंध है। आगे दर्शक सिद्ध हो सकता है। दोनों कलाकृतियों का सामूहिक साक्ष्य आज के किसी भी अविचारपूर्ण दर्शक के लिए एक चेतावनी के रूप में कोई करेगा। एक मेहराव युक्त ताखे पर अवस्थित पदमपाणि बौधिसत्व कुल की प्रतिमा संरचात्क दृष्टि से परिनिहित तथा प्रतिमाशास्त्रीय दृष्टि से उतने महत्व की है। यह महान स्तूप के बाहरी भाग के विपरीत दीपंकर बुद्ध तथा राहुल–प्रवज्या के कथानकों के ठीक बीच में स्थापित है। इस प्रतिमाकंन की जो थोड़ी सी छति हुई है वह मुख्य रूप से सबसे नीचे गौण आकृतियों के सिरों तक ही सीमित है। स्मारक के निचले चबूतरे पर अपनी अवस्थिति के कारण ही संभवतः यह प्रतिमा फलक आश्चर्यजनक तथा लगभग तरोताजा रूप में अभी तक सुरक्षित रह सका है। इस बात का सहज अनुमान किया जा सकता है कि इस स्तुप के विखण्डन का फैलाव विशाल संरचना की उपर की बढ़ रहीं उचाई के समानुपात में हुआ है। चुंकि यह ताखा सबसे अधिक टिकाउ सबसे निचले चबुतरे पर अवस्थित था। अतः सबसे कम क्षति उठानी पड़ी तथा पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग को इसको संरक्षण हेतु विशेष यत्न नहीं करना पड़ा। परिणामस्वरूप यह प्रतिमांकन कलात्मक कौशल के सबसे अधिक विश्वसनीय सूची पत्र के रूप में अभी विद्यमान है। तथा यह नालन्दा के चुना गच प्रतिमा शिल्प के सभी कालों में दृश्य प्रतिमा शास्त्रीय कल्पना प्रवनता का भव्यतम प्रदर्शन है।

इन संरचना में पदमपाणि बौधिसत्व की प्रधान प्रतिमा सुअस्पष्ट त्रिभंग स्थिति में खड़ी है। दक्षिण नितंव के सूक्ष्म उभार द्वारा इस स्थिति कों तीव्रतर बना दिया गया है। बौधिसत्व का एक वरद् मुद्रा में तथा दूसरा आयास रहित रूप में कमलनाल पकड़े हुए एक दुसरे कर को चर्तुभुजाय रूप में न्यस्त पटिट्का को आकस्मिक रूप से ठीक–ठीक करते हुए दिखलाया गया है। खिले हुए पुष्प की लंबा तना पाद पीठिका पर स्थिर पत्र गुच्छ के एक लघुपुंज में से निकलता हुआ अंकित किया गया है। पतले कमल डंटल के उर्ध्वाविमुख उभार की पूर्ण विकसित कमलपुष्प के रूप में परिणति कुछ ऐसी है। जिसमें ऐसे सामान्य रूप से सामने की ओर चित्रित ने करके सुस्पष्ट पार्श्व दृश्य के रूप में अंकन द्वारा करूणा के अधिष्ठाता पदमपाणि के प्रति सम्मान में अर्जित पुष्प का अर्थ विशुद्धीकृत किया गया है। इस प्रतिमा के चारों ओर अराधक जनों, अलंकरन साधनों तथा अन्य लक्षणों का लय बुद्ध व्यवस्थित अंकन उपर की ओर से करूणा पूर्ण भाव से अवलोकन कर रहे ध्यानी बुद्धों का दोहरा रूपांकन तथा सबसे बढ़कर बोधिसत्व की ओर मुडें मुख वाले तथा बोधिसत्व द्वारा अपने एक कर में गृहीत कमलपुष्प द्वारा यह अंकन स्पष्ट रूप सें कमल के समानीय परमापाणि अवलोकितेश्वर का सबसे अधिक न्यस्त संगत कलात्कम प्रतिचित्रण माना जा सकता है।

अंजलि मुद्रा युक्त तथा घुटनों के बल पर बैठी दो नारियों द्वारा आधारित दो बौधिसत्व अन्य विभिन्न आकृतियों से परिवृत है। उनमें दो देवियां बोधिसत्व के पार्श्व भागों में पदमपीठ के उपर खड़ी हुई है। उनके पुष्पमय पीठ समान चबुतरे से निकले है। इनके अतिरिक्त एक के उपर एक–दूसरे नारी देवयां भी बौधिसत्व के दोनों पार्श्व पर अवस्थित है। उन्हें ताखे की पार्श्व भितियों पर रूपांकित किया गया है। इनमें से प्रत्येक पदमपीठ पर है। तथा इनके कुछ पीछे अंडाकार प्रभाववाली अंकित है। जहां खड़ी नारी आकृतिया कमल के लक्षणों से युक्त है। वही बैठी हुई नारियो के हाथ विभिन्न मुद्राओ में है। हो सकता है कि घुटनों के बल बैठी नारी आकृतियां अराधिकाओं की हो परन्तु अन्य देवी आकृतियां संभवतः नारी बोधिसत्व हो। इस षिल्प खड़ की सबसे उपरी भाग में, ताखे के मेहराव के समीप बौधिसत्व के गोलाकार प्रभाभमण्डल पार्श्वो पर ध्यान कर रहें बुद्ध के एक–एक आकृतियाँ अंकित है।

बौधिसत्व के अपेक्षाकृत एकहरे शरीर में शास्त्रीय परिष्कार एवं कोमलता की छाप स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। रूपांकन साफ सुथरे होते हुए भी अधिक विधिपरक है। अर्ध उन्मिलित नेत्रों में

प्रतिबिंबित मुखमंडल की आभा बौधिसत्व की महाकारूणिक प्रकृति को उद्भासित कर रहीं है। केषगुच्छ मजबुती के साथ जटाजुट के रूप में पुंजीकृत है तथा बोधिसत्व के अधिष्ठाता बुद्ध अमिताभ के आसन के रूप में प्रयुक्त है। घुंघराले किनारे वाले तीन लंबा लटे प्रतिमा के दोनो कन्धों को विभूषित कर रहीं है। बोधिसत्व एक सर्पाकार यज्ञोपवित धारण किये हुए है। इसके मध्य भागों में एक नलिकाकार बक्सुआ से सुशोभित है। नालन्दा स्थल में उस समय तक बची हुयी चुना गच की प्रतिमाओं के बीच केवल इसी एक चुना गच प्रतिमा में बोधिसत्व को पवित्र यज्ञोपवित्र धारण किये हुए दिखलाय गया है। आश्चर्य की बात यह है कि अलंकृत कटिबंध के समीप यह पवित्र सुत्र बक्सुआ के बगल में एक छोटा से फंदा बनाता हुआ पट्टिका के उपर पुनः प्रकट हो गया है।

बौधिसत्व कुछ एक रत्नों से भी जटिल है। आभूषणों में केवल एक मुक्ता माला कण्ठ को विभूषित कर रहीं है। यद्यपि प्रतिमा में बाजुबंद का जोड़ा है किन्तु भुजाओं के उपरी भाग में कंगनों के न रहने से प्रतिमा का हलकेपन एवं चीलेपन का प्रभाव ओर जोरदार बन गया है। कण्ठहार एवं यज्ञोपवीत को छोड़ शरीर भाग अनलंकृत है। बोधिसत्व के पैरों से अत्यधिक सटी हुई धोती के शैली पूर्ण प्लेट नीचे पादनली तक पहुंच रहें है। पारदर्शी धोती है। लपेटयुक्त पटिट्का जंघाओं के चारो ओर चतुर्भुजाकार में दर्शायी गयी है। इसे बाएं ओर चित्रित एक मजबुत गांठ द्वारा दृढता से बांध दिया गया दिखलाय गया है। इसके उपरान्त परिधान की अतिरिक्त लम्बाई को विस्तृत भंगो में नीचे की ओर लटकते हुए छोड़ दिया गया है।नारियों के धड़ों के रूपांकन में विषाल स्तनों एवं फुले हुए उदरों के लक्ष्णों के साथ भारी भरकमपन एवं मांसलता पर विशेष बल दिया गया है। साथ ही प्रभावली मणिच्यूत आकृतियां को अत्यधिक रत्नों से अलंकृत नही किया गया है। जहां बोधिसत्व एक अनलंकृत पादपीठा पर खड़े हुये दिखलाया गया है। वही ठीक इससे एकदम विपरीत रूप में उनके पार्ष्ववर्ती दैवी विग्रहों को पुष्पमय पीठों पर ठीक किया गया है। सबसे मजेदार बात यह है कि विभिन्न पादभपीठों की डण्डियों (नालियों) को संगीत की लय के तर्ज पर एक–दूसरे के साथ जोड़ दिया गया है। कुल मिलाकर यह प्रतिमा एक सिद्धहस्त कलाकार की एक उल्लेखनीय कलाकृति है। यह संरचना बहुत हद तक भीड़भाड़ से भरी रहते हुये भी पुरी तरह से संन्तुलित एंव सुसंगठित है। ताखे में उपलब्ध थोडी सी भी जगह का उपयोग न्यायसंगत ढंग से किया गया है। जहां प्रधान देवता को सामने के भाग में दिखलाया गया है वहीं गौण आकृतियों में तीन–चौथाई को पार्ष्वभाग में रूपांकित किया गया है। ताखे की बगल को संकीर्ण दीवालो पर एक के उपर एक को व्यवस्थित रूप से रखकर इन गौण आकृतियों द्वारा भर दिया गया है। स्वरूपों की विविधता के बावजूद इन सभी में केवल एक ही संगीतात्मक लयात्मकता भर दी गया है, जो इन प्रतिमाओं के एक सुसंगत इकाई के रूप में बोध सकी है। मुल रूप से इस प्रतिमा से द्वादशभुजी अवलोकितेश्वर की पाषाण–प्रतिमा की संरचना के लिये प्रेरणा–सुत्र प्राप्त हुये होंगें।

धर्मचक्र–मुद्रा से युक्त बोधिसत्व को एक दूसरी प्रतिमा (फलक) के रूपांकन विवरणों में उपर चर्चित प्रतिमा से यद्यपि अल्प अन्तर है। परन्तु यह भी मुख्य बातों में उपर चर्चित बोधिसत्व–प्रतिमा के ही वर्ग की है। पर्यक स्थिति में बोधिसत्व सुन्दरतापूर्वक निर्मित एक विशाल कमलपुष्प के वृन्त (जोड़ी) पर आसीन है। माप में कुछ ही छोटे परन्तु स्वरूप एवं आकार में एक जैसे बुद्धों के दो पुष्पपीठ भी इसी प्रतिमा में है। ये दोनों बुद्ध–प्रतिमाएं वरद–मुद्रा में है तथा पर्याप्त उंचाई पर रखी गयी है। घुटने के बल बैठी दो नारी–आकृतियां है। दोनों के हाथ प्रार्थना के भाव को प्रकट करते हुए अन्जलि–मुद्रा में है। ये दोनों प्रधान प्रतिमा के दोनों पार्ष्वो पर कुछ नीचे की ओर अंकित है। इनमें से दाहिने पार्ष्व वाली अधिक अच्छी स्थिति में दीख रही नारी–प्रतिमा गोल आकार वाले कुण्डल धारण किये हुए है। यह घुँघराले केशों से युक्त, तथा जंजीर से युक्त एक आभूषण धारण कये है। प्रार्थना के भाव को व्यक्त कर रहे इस नारी के जुड़ें हुए करतल साथ ही साथ एक लहरदार कमल की डंडी को भी पकड़े हुए है।

इसी प्रकार धर्मोपदेश की मुद्रा में दिख रहे बोधिसत्व के कर भी एक लम्बे पदमनाल को पकड़े हुए है। यद्यपि कमल खिली हुई दशा में नहीं दिख रहीं है। परन्तु इसे बोधिसत्व अवलोकितेश्वर के प्रतिमा शास्त्रीय अंकनों में अनिवार्य कमलपुष्प ही होना चाहिए। अपने अध्यात्मिक अधिष्ठाता (ध्यानी बुद्ध) की मूर्ति

द्वारा इनकी पहचान सुनिश्चित होती है। यहां बोधिसत्व के शीर्ष के अलंकरण के उपर अमिताभ बुद्ध आसीन है। यद्यपि प्रतिमा बहुत अधिक क्षतिग्रसत हो चुकी है फिर भी ऐसा लगता है कि यहां बोधिसत्व का रूपांकन त्रिस्तरीय मुकुट के साथ किया गया था। इस मुकुट के मध्यभाग में ठीक ललाट के उपर एक मध्यवर्ती रत्न था तथा दोनों पार्श्वो पर अनुलग्नक भी थें। मुकुट के अतिरिक्त लक्षण की उपस्थिति तथा यज्ञोपवित के यहां न होने को छोड़ की बोधिसत्व–प्रतिमा तथा इस प्रतिमा के रत्न एवं अलंकार एक दम समान रूप से कर–मुद्राओं, अलंकरण–विवरणों तथा मुख के भाव में कुछ अन्तरों के रहने पर भी करूणा के अधिष्ठाता अवलोकितेश्वर के ये दोनों ही रूपांकन लयात्मकता एवं सन्तुलन के समान से युक्त है। दोनो ही उदाहरणों में सुडौल रूप से गढ़ी गयी अनुषागिंक प्रतिमाओं की प्रधान प्रतिमा के साथ संगति अत्यन्त कुशलतापूर्वक बैठा दी गयी है। आसीन आकृति के लिये ताखे की समुची उंचाई की आवष्कता नहीं थी। फलस्वरूप केवल परिचारकवृन्द की संख्या कम से कम कर के रखी गयी है अपितु दर्शक का ध्यान अधिक बेहतर रूप से प्रधान प्रतिमा पर ही केन्द्रित कराने पर भी बल दिया गया है।

थोड़ें से दीर्धीकृत अनुपात मे होने पर भी यह बोधिसत्व प्रतिमा शास्त्रीय लक्षणों को अभिव्यक्त करती है। अलंकरीय विवरणों के मामले मे यह लगभग मुक है फिर भी आकृति गत निगूढ़ता से रहित है। इस प्रतिमा के रूपांकन की प्रमुख विशिष्टता इस बात में है कि इसमें समस्त विग्रह की मन्द प्रवाह मयी मसृणता द्वारा भरी गया सुपरिभाषित गोल–मटोल खाका मुखरित है। मूर्तिशिल्पी का स्वाभिकता–प्रेम पद्मपीठ के रेखांकन में जीतना अधिक सुस्पष्ट होकर सामने आया है। संभवतः उतना अधिक अन्य किसी भाग के अंकन में नही हो सका है। इस प्रतिमाखण्ड में पद्मपीठों के तीन अंकनों में से प्रत्यके में पुष्पलंकरण को रूपांकन पूर्व निपूणता के साथ हुआ है। इसमें अलग–अलग कमलदलों के अंकनों की कोमलता के साथ–साथ समग्र कमल पुष्प के रूपांकन पर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया है। कुल मिलाकर यह प्रतिमांकन चुना गच की प्रतिमाओं के शिल्पी की भव्यतम कृति है तथा उससे नालन्दा की मूर्तिकला सबसे गरिमामय चरणों में से एक के कालनिर्धारण के लिए महत्वपूर्ण सुत्र भी प्राप्त होतें है।

जहां एक स्वंतत्र उपसा देव में अवलोकितेश्वर को महान लोकप्रियता प्राप्त है वहीं प्रज्ञा एवं विद्या के अधिष्ठाता देव मञजूश्री को नालन्दा के संदर्भ में विशिष्ठ स्थिति प्राप्त है क्योंकि महाविहार होने के साथ–साथ नालन्दा का संस्थान सुप्रसिद्ध विद्या केन्द्र भी था। वस्तुतः यहां से प्राप्त मन्जूश्री प्रतिमाओं की बड़ी संख्या तथा विविधता रूपता यह संकेत देती है कि वे सभी कालों में यहां पर अत्यधिक समाहित थें। तथा चुना गच कला के चरण इस प्रवृति का अपवाद नही हो सकता था। इस देवता का प्रथम प्रतिमांकन सौभाग्यवश अधिक क्षतिग्रस्त नहीं है। तथा प्रतिमांकन कला की दृष्टि से चुना गच समाग्री के सर्वोतन कलांकनी में से एक है (फलक)। समुचे परचय के प्रंषसनीय रूपांकन द्वारा तथा बदामी आंखो में जीवन्त अभिव्यक्ति भरते हुए मन्जुश्री के सुदृढ़ विग्रह का सुव्यक्त एवं वर्तुलिकित खाका आसामान कामोतेजक लचीलेपन से परिपूर्ण है। सुक्ष्ममा के साथ अंकित रत्नालंकरण बोझिलता को न लाकर प्रतिमा के सौन्दर्य की श्री वृधि ही करते हुए प्रतीत होते है। अपनी उपाधि 'कुमार' को सार्थक करते हुए मन्जूश्री बहुमूल्य एवं राजकुमारों द्वारा धारण दिये जाने वाले आभुषण धारण किये हुये है। वे बड़े आकार के कर्ण चक्र वाजुबन्द कंगन तथा करधनी धारण किये हुए, जो सभी रत्न जटित है। व्याघ्रनख के जोडें नलिकाकार रक्षायन्त्र तथा चक्राकार नीचे लटक रहे रत्न से जड़ा हुआ उनका कण्ठहार सबसे अधिक अलंकृत है। तीन स्तरों वाला मुकुट का आकार एवं स्वरूप तो सबसे अधिक उल्लेखनीय है। मध्यवर्ती रत्न तथा उभय पार्श्वो पर स्थित एक एक अर्धचन्द्र से मुक्त शिरों भूषण की उंचाई जान–बूझकर इस प्रकार से नियन्त्रित किया गया है ताकि इस बोधिसत्व का विशिष्ट चिन्ह त्रिशिखा तिरोहित न हो सकें।

मन्जुश्री के दूसरे प्रतिमा शास्त्रीय लक्ष्ण यह है कि उनका एक कर वरद् मुद्रा में रहता है तथा दुसरे में कोई एक अन्य वस्तु रहती है। य़द्यपि बाएं कर का निचला अर्धभाग पूरी तरह से क्षतिग्रस्त है परन्तु यह लगभग निश्चित है कि इस कर में नीलकमल रहा होगा। यह पुष्प कन्धे के उपर प्रभावली के किनारे अभी भी दृष्टिगत होता है। किसी सुस्पष्ट प्रतिमाशास्त्रीय अभिप्राय के बिना फलक की प्रतिमा के सम्बध में उपर

चर्चित एक विशाल तोषक तथा हाथी दांतो का जोड़ा उस सिहासन के भाग के रूप में अंकित है, जिस पर राजकुमार के रूप में परिकल्पित मन्जुश्री के आसीन होने का सर्वथा स्वाभाविक दावा बनता है। संरक्षण की समस्त व्यवस्थाओं के बावजूद इसी बोधिसत्व की एक अन्य अत्यधिक क्षतिग्रस्त प्रतिमा भी यहां विचारणीय है। प्रतिमाशास्त्रीय तथा अलंकरण के विवरणों में यह मूर्ति वाले प्रतिमा से अत्यधिक अन्तर प्रदर्शित नहीं करती, फिर भी इसके रूपांकन में अत्यधिक प्रभावशाली मूर्तिकरण की मूर्तिशिल्पी की अभिलाषा सुस्पष्ट है। पूर्व प्रतिमा के समान अधिक दीर्घाभर न होते हुए भी इस प्रतिमा के सुवर्तुलाकृत खाकों सहित भारी भरकम अवयव एक अधिक सुदृढ़ शारीरिक विग्रह की अभिव्यक्ति करते है। अन्तर्निस्युत भारीपन के बावजूद यह आकृति स्वाभाविकता से रहित नहीं है। धड़का हलका केन्द्रीय उभाड़ तथा वक्षस्थलीय मांसपेशियों (पुट्टों) का सुक्ष्म रेखांकन इस प्रतिमा की जीवन्तता में चार चांद लगाता है। चतुराई भरें तरीके द्वारा प्रतिमा के उदर में जो मृदुल उदग्रता प्रदर्शित की गयी है, उससे इसकी जीवन्तता और अधिक मुखरित हो गयी है। नाभि की ओर एक उदरबन्ध (वस्त्रपट्टिका) को बोध से तथा नाभि की सतह पर इसमें गांठ लगाने से न केवल उदर से पसली तन्त्र को पृथक रूप सें दर्शाने में सहायता मिली है। अपितु इससे दोनों के आकार मत अन्तर एवं स्पर्शीय गुणवता भी सुप्रकाशित हो गई है। चुना प्रस्तर प्रतिमांकन के एक ही चरणों में किसी समान विषयवर दो प्रकार के रूपांकनों से नालन्दा की कलासृजनात्मिकता प्रतिमा की समृद्धि को स्पष्ट रूप सें कह दिया गया है। इसके बाद में विवेच्य प्रतिमा के संबंध में यह तथ्य देखा जायेगा कि तक्षशिला' की चुना गच की कलाकृतियों के कलाशिल्पी आत्मसंतुष्ट प्राकृतिक थें। परन्तु नालन्दा के स्थानीय कला शिल्पी इस से सर्वथा भिन्न प्रतीत होते है। उन्होंने एक सामान्य विषयवस्तु के रूपांकन में रूपसम्बन्धी अनेक प्रयोग बार बार कियें। फलस्वरूप नालन्दा की कला में शैलीगत ठहराव कभी भी नहीं आ सका।

अभी अभी कुरूप मुख वाले मन्जुश्री की प्रतिमा के अंकन में जिस रूझान को देखा गया उसकी ओर अधिक सुस्पष्ट अभिव्यक्ति एक दूसरे बोधिसत्व के रूपांकन में दिखलायी देती है। वे पदमपीठ पर आसीन है और उनके मुड़े हुए चरण विषु वज्रमयी (कठोर) स्थिति से सर्वथा विपरीत एक के उपर एक करके विन्यस्त है। चूंकि प्रतिमा की दाहिना जंघा थोड़ी सी उपर की ओर उठी है, अतः इसी के समान अनुपात के हिसाब से धड़ का उभार बाई ओर अंकित है तथा इसी के अनुपात से थुलथुल उदर का कुछ आगे की ओर निकलते हुए दिखलाया गया है। रेखांकित बायी कलाई तथा कर्णवत रूप से न्यस्त रूप से न्यस्त केहुनी भव्यता के साथ इस आकृति की स्थिति को सन्तुलित करती है।

मन्जुश्री की इससे पूर्व में निर्दिष्ट प्रतिमा के ही समान इस प्रतिमा का दक्षिणी कर भी वरद मुद्रा में है जबकि इसके वाम कर लें कमलपुष्प का चिन्ह है। कर्ण कुण्डल तथा उदर बन्ध भी दोनों ही एक जैसें ही है, परन्तु अन्य अनेक मामलों में दोनों के बीच बहुत से अन्तर भी देखें जा सकता है। नागवलय, एकावली तथा विशेष रूप से बोतल की काग को निकालने वाले पेंच की तरह बालों की अतिभव्य लटों का इस प्रतिमा मे जो सम्मिलन है उससे किसी अन्य बोधिसत्व के लक्षणों का संकेत भी प्राप्त होता है। केवल जटाजूट मात्र अवलोकितेश्वर के परिचायक है परन्तु पुष्प के सबसे उपरी भाग के खण्डित हो जाने के कारण इस देवता का सही पहचान करने में बाधा उत्पन्न हो गयी। चूंकि यह पूर्ण–विकसित कमल जैसा नही दीखता तथा इसके उपरी भाग पर सूच्याकार चिन्ह अभी भी देखे जा सकते है अतः यह भी सम्भव है कि इस इस पुष्प के उपर कभी कए लघु स्तूप स्थित रहा होगा, जो कि भावी बुद्ध मैत्रेय का विशिष्ट कलात्मक प्रतीक है। यदि यह अनुमान तनिक भी आकारयुक्त है तो तात्कालिक तौर पर इस प्रतिमा को मैत्रेय बोधिसत्व का प्रतिमा कहा जा सकता है। जैसा कि उपर उल्लेख किया जा चुका है, नालन्दा की चुना– गच कलाकृतियों के बीच कुछ नारी आकृतियां भी विभिन्न स्वरूपों में मिली है। अधिकतर मामलों की कलाकृति में चाहे वह बुद्ध से संबंधित हो अथवा बोधिसत्व से, इन नारियों की भूमिका मुख्य रूप से केवल परिचारिक के रूप तक ही सीमित है। किसी भी नारी का स्वतन्त्र आराध्य देवी के रूप में स्वतन्त्र रूप से रूपांकन नालन्दा की चुना गच प्रतिमाओं में स्पष्ट रूप से अतिविरल रूप में ही है। इसी श्रेणी का एक दुलभ रूपांकन बैठी हुई तारा के रूप में माना जा सकता है जो कि एक समूचे मेहराबदार ताखे पर एवं अकेली ही

कब्जा जमाये हुई है। अत्यधिक क्षतिग्रस्त बाम करतल, स्तनों एवं सिर वाली यह प्रतिमा सौभाग्यवश अभी तक बची हुयी है। इस प्रतिमा का आसन सबसे अधिक क्षतिग्रस्त रूप में है। परन्तु अलंकरण–विवरणों, प्रतिमाशास्त्रीय लक्षणों एवं रूपांकन की रूप रेखा के मामलों में इस प्रतिमा में अभी भी इस अध्ययन के लिये उपयोगी बहुत कुछ मौजूद है।

एक के आगें दूसरे चरण के रखे जाने के रेखांकन से युक्त तारा की यह आकृति पूर्ण विकसित गोलाकार कमल की गद्दी पर आसीन है। अपेक्षाकृत निचले तथा कमलदलों की केवल एक पंक्ति से युक्त इस पदमपीठ से ताखे की लगभग समुची चौडाई घेर ली गयी है। वृताकार प्रभावली से मण्डित तारा का दक्षिण कर वरदमुद्रा में है जबकि उनके दूसरे कर में अधखिला कमलपुष्प है। यद्यपि वाम करतल इस समय पूरी तरह से भग्न हो चुका है परन्तु कमल की लम्बी डण्डी (नाल) के रूपांकन से इसके धारक के विषय में सन्देह करने की बहुत कम संभावना रह जाती है। हाथी में पाये जाने वाले चिन्हों तथा सिर के पीछे की प्रभावली से इस आकृति के दैवी–विग्रह होने का संकेत देती है। समस्त ताखे पर अकेले प्रतिष्ठित होने वाली बौद्ध देवकुल की एकमात्र महत्वपूर्ण देवी की तात्कालिक पहचान तारा के ही एक रूप में की मे की जा सकती है।

इस सर्वोत्कृष्ट बौद्ध देवी की चुना–गच से निर्मित यह एकमात्र प्रतिमा सुरूचिपूर्ण रूप सें साधारण परिधानों एवं आभूषणों से अलंकृत है। वह कम से कम दो बिना सिले हुए वस्त्रखण्डों से आच्छादित है जिनमें एक शरीर के उपरी भाग को तथा दूसरी भाग को आवृत किये हुए है। दाहितनी घुटनों के पास वाले सिखरों को छोड़ आधोवस्त्रों के छोर से निर्मित हूए है, पारदर्शी धोती अधिकतर भंगों से रहित है। बायें हाथ के उपरी भाग में दिख रही नाशपाती के आकार की भंगी की गांठ वाले का प्रदर्शी चादर से प्रतिमा का धड़ कर्ण रेखावत रूप में आवृत है। वक्षस्थल के उपर की वी (अ) आकार को एक पतली रेखा ब्लाउज (अंगवस्त्र) का अंकन मानी जा सकती बशर्ते की यह दुसरे कण्ठाहार का अंकन हों। ये आड़ी–तिरछी देखाओं स्तनों के काट कर मिलायी किये हुए वस्त्राच्छादन के निचले सिरे के रूप में प्रतीत होती है चूंकि स्वयं वक्षस्थल का बहुत बड़ा भाग विलुप्त है। अतः इस देवी के परिधानों के स्वरूप का सहीं–सहीं विनिश्चय नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार प्रतिमा के सिर के अत्यधिक क्षतिग्रस्त हो जाने के कारण आभूषणों का कोई सुस्पष्ट चित्र भी प्राप्त करना कठिन है फिर भी यह बात तो निश्चित ही लगती है कि इस प्रतिमा के सिर पर मुकुट था। भले ही उसका आकार कुछ भी क्यों न रहा हो। अभी भी पहचानने योग्य आभूषणों में बडें आकार के गोल कान के कुण्डल एक तार वाला मोती का कण्ठाहार तथा अपेक्षाकृत साधारण ढंग के कंगन सम्मिलित है। यह अनुमान करना सर्वथा युक्तिसंगत होगा कि यह देवी कंगन तथा नुपूर धारण किये हुए थी। उसी प्रकार यह निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है कि वह एक लंबी जंजीर से भी जटित थी। यज्ञोपवित को धारण करने के ही ढंग पर बाये कंधे से वक्रवत रूप में दाहिने कटिप्रदेश तक लटकी उभरी हुई रेखा बुने हुए चादर का किनारा न धोकर कोई स्वतन्त्र आभूषण ही अधिक प्रतीत हो रहा है।

प्रर्याप्त रूप में दृश्य तथा आशिंक रूप से पुननिर्मित आभूषणों एवं परिधानों का प्रचय इतनी अधिक मात्रा नहीं है जिससे यह इस कलाकृति में बोझिलता लादे अथवा प्रतिमा के शारीरिक विग्रह का अस्पष्ट बना दे। बाहय लक्षण किसी भी रूप में आराध्या देवी के रूपांकन में अत्यधिक रूप में नहीं है। न ही ये उस देवी के संबंध प्रतिमाशास्त्रीय मापदण्ड में आवश्यक माने गये। बाहय लक्षण के सीमा का उल्लंघन करते है। यह प्रतिमा धार्मिक कल्पना प्रवणता के पूर्वाधार के रूप में महत्वपूर्ण होने के साथ–साथ अपने समय की प्रतिमांकन कला का एक अभिलेख भी है। इस ढांचे (मूर्ति) में समृद्ध नारी रूप के अंकन के प्रति मूर्तिशिल्पी का पक्षपात सुस्पष्ट है। विशाल वक्षस्थल तथा क्षीण कटिप्रदेश द्वारा मुखरित अधिक विशिष्ट रूप के निचले भागों से यह बात सुप्रकाशित हो गयी है। बैठने के विचित्र एवं बेढंगे तरीके के ही कारण कुछ हद तक प्रतिमा का उदर विशाल तथा आवश्कता से अधिक आकार का बन गया है। यदि देवी खड़ी हुई रहती अथवा वज्रपर्याकांसन में बैठी होती तों मेरुदण्ड की लम्बाकार स्थिति से उदर की अतिरिक्त स्थूलता स्वाभाविक हो गयी होती। अनुपात एवं विस्तार के मामलों में यह प्रतिमा उन्ही शास्त्रीय नियमों की प्रष्टि

करती है। जिनका अनुसरण नालन्दा में ही प्राप्त खडी हुई तारा एवं तथाकथित वज्रशाकरदा (फलक) प्रतिमाओं के रुपांकन में हुआ है। ताखे की भीतर इस तारामूर्ति के साथ कोई भी अन्य मूर्तियॉ नही है। परन्तु मेहराब के निचले भाग के उपर मानवीय सिरों का एक अदभुद युग्म रुपांकित हैं। भ्रकुटि तने हुए चेहरे फुली हुई आखें और क्रोध से भभकते नथुने के कारण इन आकृतियों को साधारण मानवों की आकृतियां मानना संभव नहीं है। बिल्कुल एक जैसे होने के कारण इन्हें न राहु और केतू माना जा सकता है और न सूर्य एवं चन्द्र जैसे किसी दैवी ग्रहों का जोडा। यहां यह ध्यातव्य है कि मन्जुश्री प्रतिमा के ताखे के मेहरव के उपर में ठीक इसी स्थान पर सिंहों के दो सिर अंकित है। स्थान की इस समानता के आधार पर तारा मूर्ति के ताखे के शीर्ष भाग पर रूपांकित इन दोनों विलक्षणों मुखौटों को भी सिंह का रूपांकन मानने की संभावना भी बनती है। वस्तुतः इस पद्धति के प्रारम्भ होने के चिन्ह सारनाथ तथा अन्य स्थानों की गुप्त कला–परम्परा में और भी अधिक पूर्वकाल में खोजे जा सकते है।

छठी–सातवीं सदी के इन्ही गुप्तकालीन प्रतिमाशास्त्रीय स्त्रोंतों के साथ सम्बन्द्ध एक दुसरा कलांकन भी नालन्दा की चुना गच कलाकृतियों के बीच मिला है। यह घोड़े के खुर जैसे एक ताखे के अन्दर की मानवीय आकृति के धड़ का उपरी भाग है। जा कि पुष्पालंकरणों द्वारा अलंकृत है। (फलक) यद्यपि यह स्वयं में कोई आराध्य वस्तु नहीं है। परन्तु यह स्तूप के बाहरी भाग को रखने वाले ताखे तथा कोने को स्तूपों के ताखों के बीच के अन्यस्त है। भले यह अलंकरण मात्र क्यों न हो फिर भी इसके स्वरूप का विशेष कर मानवीय आकृति के स्वरूप का रेखाकंन नालन्दा महाविहार के चुना–गच प्रतिमा कला की शैली के काल निर्धारण के इस संबंध में महत्वपूर्ण प्रकाश डालने में उपयोगी है। यद्यपि ये विशिष्टताएं नालन्दा की पाषाण एवं चुना निर्मित कलांकनों में एक सुनिश्चित प्रकृति के विकास चिन्ह देखे जा सकते है। विकास के ये चिन्ह प्रतिमाओं की भाव–भंगिमाओं, मुद्राओ तथा कुछ अन्य विवरणों में पहचाने जा सकते है। नालन्दा के पुरातात्विक स्थल से प्राप्त पांचवी सदी ई0 के अन्तिम चरण की बुद्ध प्रतिमा के दक्षिण कर को अभय मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है तथा लखनउ संग्रहालय में सुरक्षित मथुरा से प्राप्त एक अन्य प्रतिमा में भी वाम कर की यही स्थिति देखी जा सकती[1]। वाम कर की इसी प्रकार की स्थिति पश्चिम भारत के अजन्ता जैसे गुफा मन्दिरों[2] में भी प्रायः देखने को मिलती है। और अधिक परीक्षा किये जाने पर यह प्रतित होता है कि इस अंक के। रूपांकन में चुना–गच प्रतिमा शिल्पी ने विशेष रूप से गंगा के दोआबा के मुर्तिकलाकेन्द्रों की शैली की अपेक्षा अजन्ता की कलाशैली का ही अधिक अनुसरण किया है। सारनाथ की मुर्तिकला के नमुनों में बुद्ध प्रतिमाओं का वाम कर जहां द्विसिरस्नायु के अधिक अनुसरण किया है। सारनाथ की मुर्तिकला के नमुनों में बुद्ध प्रतिमाओं का वाम कर जहां द्विसिरस्नायु के अधिक निकट खींच कर रखा गया है। वहीं लगभग अजन्ता की कला–शैली के नमूनों किये गयें है। मथुरा तथा सारनाथ की प्रतिमाओं–प्रद्धति से सर्वथा भिन्न वाम कर का यह विन्यसन–प्रकार नालन्दा में ग्रहण किया गया प्रतीत होता है। सम्भवतः प्रारम्भिक पाल–कालीन अनेक पूर्वी भारतीय प्रतिमाओं के[3] कलांकन को भी नालन्दा ने प्रभावित किया होगा।

नालन्दा के पुरातात्विक स्थल से प्राप्त बुद्ध की पाषाण प्रतिमा की कठोर भाव भंगिमा की तुलना में चुना–गच की बुद्ध प्रतिमाओं की भाव भंगिमा एकदम शान्त है। गति के संकेतक नितम्ब के कोमल स्पन्दन के अंकन द्वारा प्रतिमा की स्वाभाविकता बढ़ गयी है। निःसन्देह रूप से विश्रान्ति की यह भंगिता सारनाथ कला–शैली के समुन्नति काल में पहले से ज्ञात थीं। अजन्ता गुफा 19 के उदाहरणों से प्राप्त अनुमान की पुष्टि हो जाती है कि समय के बीतने पर इस भाव–भागिमा की और अधिक व्यापक तौर पर ग्रहण किया जा यदि हम इस अनुशीलन केवल तो मगध क्षेत्र की बुद्ध मूर्तियों तक सीमित कर दे इस समय पटना संग्रहालय में सुरक्षित तेलहाड़ा की अभिलेखयुक्त बुद्ध प्रतिमा से अधिक महत्वपूर्ण मूर्ति शायद ही कोई अन्य मिलेगी। अत्यन्त सादे एवं अनलंकृत प्रभामण्डल से युक्त तथा उर्णा के संसूचक चिन्ह के रूप में उत्खनित वृत से युक्त यह प्रतिमा सारनाथ की गुप्तकला तथा नालन्दा की चुना गच मुर्ति शिल्प कला के माध्यम के कालक्रम निर्धारण में मील का पत्थर सिद्ध हो सकती है। अभिलेख की लिपि के स्वरूप के आधार पर तेलहाड़ा की यह बुद्ध प्रतिमा छठी सदी ई0 के अन्तिम चरण से पूर्वकाल की नहीं मानी जा सकती है।[4] नालन्दा की चुना

गच की बुद्ध–प्रतिमा के प्रभामण्डल भी तेलहाड़ा की बुद्ध–प्रतिमा के प्रभामण्डल के समान ही अनलंकृत है परन्तु चुना गच की बुद्ध प्रतिमाओं की उर्णी अधिक प्रयासपूर्वक उभरी हुयी है। अतः चुना गच की नालन्दा की बुद्ध प्रतिमाओं से कुछ ही समय के बाद की मानी जा सकती है।

यहा यह ध्यात्वय है कि नालन्दा के चूना गच प्रतिमाओं के ताखो पर भी इसी प्रकार के तकियें की प्रयोग कम से कम तीन उदाहनणों में हुआ है। य़द्यपि इस उपकरण की उत्पति सारनाथ[5] की गुप्तकालीन मूर्ति–शिल्प–कला में खोजी जा सकती है, परन्तु यह पाल–पूर्णकालीन एवं प्रारंभिक पालकाल की विहार की कुछ मुर्ति में सामान्य विशिष्टता बन गयी[6]। नालन्दा के चुने–गच की दो प्रतिमाओं को तकियों के ऊपर एक जोड़ हाथी दांत के रूप में एक अतिरिक्त विशिष्ट चिन्ह चिन्ह का भी अंकन किया गया है। प्रतिमाओं के कन्धों की बराबरी पर अधिक उंची सतह पर इन हाथी दांती का रखा जाना इस बात का संकेत करता है कि ये स्वयं सिंहासन के ही भाग है। देवता के पृष्टभाग को सहारा देने वाली तकिया ढांचे वाले किसी उपकरण के बिना अपने स्थान पर नहीं रखी जा सकती थी। संभवतः यह अंकन विष्णु की दो कांस्य–प्रतिमाओं में समान प्रकृति वाले रूपांकन का ही विकसित संस्करण है। इनमें से एक बांग्लादेश में[1]कुमारपुर में प्राप्त कुछ उतरकाल की प्रतिमा है जब कि दुसरी नालन्दा की ही पालकालीन[7] प्रतिमा है। दोनो ही उदाहरणों में हाथी दांत का प्रतीक चिन्ह अथवा लक्षण प्रभामडल के साथ ठीक उसी रूप सें जुडा हुआ है जैसा कि नालन्दा की चुनागच की प्रतिमाओं में किन्तुकांस्य प्रतमाओं में यह देवता के कन्धे की पीछे वाले अनुप्रस्थ दण्ड (आड़ी–तिरछी लकड़ी) के साथ स्पष्ट रूप सें जुड़ा हुआ है। दोनों कांस्य–प्रतिमाओं में ताम्रधातु के दो भिन्न प्रकार इस बात का प्रकाषित करते है कि इस प्रतीक चिन्ह के अंकन में कालनक्रम में रूपान्तरण हो गया। नालन्दा की चूना गच प्रतिमाओं में इस चिन्ह का प्राकृतिक आकार संभवतः इस कारण हो सकता है क्योकि काल श्रेवेश–विन्यासन के अंकन में दो अन्य बातें भी यहां ध्यान में रखने योग्य है। ये नालन्दा के प्रलम्बपाद् बुद्ध की प्रतिमाओं की बायीं कलीई के उपर तथा प्रलम्ब मान चरणी एवं चिवर के फीतें जैसें छोर के बीच में अंकित केन्द्रीभुत रेखाओं की कतारें। सारनाथ की प्रतिमाओं रूप में औरंगाबाद[8] की गुफा सं0 2 में प्राप्त होती है। नालन्दा की चुना–गच प्रतिमाओं की कालक्रमगत–स्थिति के मूल्याकंन में बोधिसत्व–प्रतिमाओं का अत्याधिक महत्व है। जैसा कि उपर देखा जा चुका है कि बुद्ध के परिचारक के रूप में अंकित ने होने की स्थिति में बोधिसत्वों को रूपांकन प्रायः अपने निजी समूह के साथ किया गया है। यह बात केवल अवलोकितेश्वर एवं मञजुश्री तक ही सीमित नही है। इन बोधिसत्वों का विभिन्न मुद्राओं, लक्षणों एवं आभूषणों के साथ खड़ी हुयी अथवा आसीन स्थिति में जो भी रूपांकन है उनसें शैलविरक समृद्ध सामग्री प्राप्त होती है। किसी भी एक बोधिसत्व के मूर्तिशास्त्रधारित प्रभेद तथा रूपांकन योजना के यदा कदा शक्तियों के स्वरूप एवं रूपांकन शैली के विकास का अधिक स्पष्ट चित्र प्राप्त करने के लिये नालन्दा की अपेक्षा कृत बहुत अच्छी हालत में प्राप्त पदमपणि की प्रतिमा के मध्य विद्यमान सम्बन्ध की हमेशा की जोश सबसे अधिक महत्वपूर्ण आधार माना जा सकता है। दोनों मुर्तियों की तुलना की उपयुक्ता में अन्तर्निहित अनेक बातों में से समुची संरचना की चौखट के रूप प्रयुक्त ताखों के प्रकार, प्रधान प्रतिमा का Stance तथा हाथ द्वारा पकड़ें गये कमल को रूपांकन की पार्ष्वाकंन प्रद्धति विशेष रूप से उल्लेखनीय है करूणा के अधिष्ठाता (बोधिसत्व अवलोकितेश्वर) के वरद मुद्रा वाले दक्षिण कर से समीपवाहीनी घुटना टेके हुये नारी की स्थिति भी प्राथमिक तौर पर भिन्न नहीं है। रूपांकन के तरीकों में इस प्रकार को प्रभावमयी समानता के रहने परी भी दोनों प्रतमिओं के रूपांकन एवं अलंकरणात्मक विवरणों इनते ही महत्वपूर्ण अन्तर भी है। यद्यपि दोनों ही तरल एवं प्रवाहमयी आभा नहीं है परन्तु अवयव संतुलन में विर्स्तीर्ण होने से क्षीण अंको से युक्त तथा आर्थिक सूक्ष्मता के साथ रूपांकन है stance वाला नालन्दा की प्रतिमा अतिरिक्त बल एवं स्फुर्ति से संबलित है। शिरोभूषा, वेषभुषा एवं अलंकरण के प्रकारों में विभिन्न भी समान रूप सें उल्लेखनीय है। बालो के गुन्छे यद्यपि कम घने है परन्तु कन्धें पर फैले हुये है बोधिसत्व के अधिष्ठाता बुद्ध की लघु– प्रतिमा ठीक ललाट के उपर विन्यस्त न होकर घुंघराली जटाओं के जूट के शीर्ष पर और अधिक उपर प्रदर्शित की गयी है। लम्बी वस्त्रपटिट्का के भारी भरकम छोर लगभग भूमि को छुते हुए दिखलाये गये है। अनलंकृत कटिबंध

के स्थान पर एक अलंकृत कटि पट्टिका है। जिसके वकसुए के आसपास यज्ञोपवित की गांठ अन्तरनिविष्ट है।

प्रतिमांकन में अनतरनिविष्ट किये गये उनके विकास चिन्हों के अलोक में यह कहना सर्वथा उचित है कि चुना–गच वाली सारनाथ की अपनी प्रतिरूप पाषाण प्रतिमा की अपेक्षा प्रर्याप्त रूप सें उतरकाल की होनी चाहिए। सारनाथ की पाषाण निर्मित पूर्व उदाहरण वाली प्रतिमा का समय सामान्यता पॉचवी सदी बतलाया गया है। प्रतिमा शास्त्र परक विवरणों के विस्तारों तथा अलंकरणों के उन्मुक्त प्रयोग के कारण चुना गच वाजी प्रतिमा स्पष्ट रूप सें कुछ उतर काल वाली सारनाथ में बोधिसत्व की एक अन्य प्रतिमा से अधिक समीप कही जा सकती है। इन दोनों ही प्रतिमाओं में सामान्य रूप सें शृंखलायुक्त कटिबंध के आरपार यज्ञोपवित के सुकुमार धागे है जोकि रत्न जटित वकलस की दाहिनी ओर स्थित है। दोनों ही प्रतिमाओं में समान रूप में प्रधान के दोनों पार्श्वो पर एक एक कमल पर एक–एक नारी देवियों का विन्यसन भी कम महत्वपूर्ण नही है।

परन्तु रूपांकन के दृष्टिकोण से सारनाथ प्रतिमा के दृढ़ एवं कठोर स्वरूप स्पष्ट रूप से नालन्दा की चुनागच प्रतिमा की आकृतियों की कोमलता एवं भव्यता से रहित है। इस मामले में नालंदा की पदमपाणि बोधिसत्व की प्रतिमा, औरंगाबाद की गुफा संख्या –2 की बोधिसत्व की खड़ी हुई प्रतिमा[9] के अधिक समीप है जिसकी तिथि सारनाथ की बौधिसत्व की प्रतिमा कम से कम पचास वर्ष पूर्व से है। इस शिल्प खंड की प्रासंगिकता आरे की अधिक महत्व इस तथ्य से बढ़ जाता है कि इसे एक छिछली कोठरी के प्रवेश द्वार के द्वारा के दाहिनी ओर उत्कीर्ण किया गया। पूजागृह के अन्दर प्रलंबपादासन स्थिति में उपदेश दे रहे बुद्ध को स्थापित किया गया है जो कि नालन्दा स्तुप के ताखो में स्थापित बुद्ध प्रतिमाओं के लगभग सामानान्तर है। चुना गच मूर्तिकला के ओर कुछ व्यक्तिगत अंकन ऐसे है जिसका परीक्षण किया जाने पर समुचे चरण के तिथी निर्धारण पर अनावश्यक प्रभाव पड़ता है। परन्तु यहां विचार की जा रहीं, प्रतिमाओं के रूपांकन में बरदमुद्रा वाले एक अन्य बोधिसत्व की पदमपीठ को पॉचवी सदी की गुप्तकला के प्रतिमांकन का उदाहरण भ्रम पूर्ण ढंग से माना जा सकता है[10]। यदि चैत्य की खिड़की के दोनों पार्श्वो पर पाटकल गुच्छें का विकासत स्वरूप न रहा होता तो ताखे के अन्दर वाले मानवीय बच को (फलक 27) आसानी के साथ गुप्तकालीन मान लिया जाता। इसी प्रकार नालन्दा के दो बोधिसत्वों की प्रतिमाओं की उदर पट्टिका एक ऐसा विशेष लक्षण है जो छठी–सातवीं सदी की अनेक पूर्वी भारतीय प्रतिमाओं, मनियार मठ की चुना गच से निर्मित नटराज की प्रतिमा तथा मुंडेश्वरी की पाषाण निर्मित हारपाल की प्रतिमा में पाया जाता है[11]।

नालन्दा के मंजुश्री की प्रतिमा की नाभि के ठीक उपर पायी जाने वाली तीन प्रकार प्रलंबान रखाऍ इस क्षेत्र की कई अनेक प्रतिमाओं से मिलती जुलती है। ये रेखाएं संभवतः उदर के ऐसे मांसन भग्न है जो चुस्त गांठ के दबाब के कारण बन गयी है। इस पद्धति का प्रयोग इस समय वास्टन संग्रहालय में सुरक्षित है[12]। सारनाथ के उपर गुप्तकालीन अवलोकितेश्वर के बच के रूपांकन मे भी हुआ है तथा बंगलादेश के महास्थाल से प्राप्त[13](टेराकोटो) मृदभांड से निर्मित सूर्य के रूपांकन में भी हआ है। नारी आकृतियों को भी रूपांकन में भी सम समायिक रूपांकन का रूझान पहले के परंपराओं के प्रभाव से पुरी तरह मुक्त नही था। तथ्य यह कि जब किन्हीं आकृतियों को अनेक आकृतियों के समूह वाली रचना में प्रस्तुत किय जाता था। जौसे कि पदमपणि प्रतिमा के आकृति वर्ग में हुआ है, तब प्रतिमा में अंकित आकृतियों पांचवी सदी के अंकन पद्धति में ही रूपांकित की गयी प्रतीत होती है। परन्तु इसी प्रमिमांकन में यह बात भी दिखलाई पड़ती है कि नारियों अवयव संतुलन एवं रूपांकन के मामले में स्पष्ट रूप सें दो विभिन्न मापदंड लागू कियें गयें है। उदाहरण के लिए बैठी हुई आकृतियों दो लगातार पीडियों असमानुपातिक रूप सें लंबे धड़ वाली तथा अन्यधिक क्षीण अवयवों वाली है जबकि दूसरी ओर खड़ी हुई प्रधान देवी तथा घुटना टेकी हुई उसकी पार्श्वती नारी प्रतिमा अधिक समानुपातिक रचना तथा भव्यता के साथ गढी गयी है।

चुना गयी से निर्मित दूसरी नारी प्रतिमाओं से विपरीत भरकम आकार होने के बावजूद तारा की आकृति कोमलता के भाव से रहित नही है। लंबे चौड़ें धुल–घुल उदर के कारण तारा की यह प्रतिमा

संभवतः छठी सदी के उतरकालन में गढ़ी गयी देवगढ़ की प्रतिमा से यह मिलती जुलती है[14]। अपने चौडें और गोल आकार वाले कंधे और भारी भरकम भुजाओं के कारण तारा की यह प्रतिमा स्वयं तारा के पाषाण निर्मित मंदिर संख्या दो से जुड़ी हुई गचलम्बी की प्रतिमा से बहुत दुर नही रखा जा सकता [15]। जिसे सांतवी सदी में रखने में प्रायः अधिकतर बिद्वान सहमत है।

संदर्भ–सूची :–

1. मार्शल, जे0 एच0 हैक्सिला, एन इल्यूस्ट्रेट इकाउन्ट ऑफ आर्क्योलॉजिकल एक्सकेवेसन्स विट्वीन इयर्स 1913 एण्ड 1934, खण्ड 3 फलक 96 वां।
2. पाल प्रतापादित्य,दी आर्टस ऑफ नेपाल, खण्ड 1 फलक– 18।
3. प्लेश्च, एच0 तथा इजबोर्ग आई0 एफ0 3एच0 अजन्ता, फलक 40।
4. पल प्रतापादित्य, दी आर्टस ऑफ नेपाल, खण्ड 1 फलक – 18।
5. प्लेश्च,एच0 तथा इजबोर्ग आई0 एफ0 3 एच0 अजन्ता,फलक 46।
6. हार्ले, जेम्स, सी,'' गुप्त स्कल्पचर ऑफ दी फोर्थ टु दी सिक्स्थ टु दी सिक्स्थ सेन्टरीस ए0 डी0 फलक 70।
7. फलीट, जॉन इन्सिक्रपसन ऑफ अर्ली गुप्त किंग्स एण्ड देयर सक्सेयर्स बो0 च0 खण्ड 3 पृ0 274 तथा आगे।
8. ऐसर 1906 – 07 फलक 20, 3।
9. ऐसर 1980 फलक 78,79,181।
10. सी लेंविग 1966 फलक 12।
11. बेनर 1977 फलक 44।
12. लेविन 1966 फलक 12 दाहिना।
13. बेनर 1977 फलक 22–23और विलियम्स फलक 92।
14. ऐसर 1980 फलक 19 और 47।
15. पाल 1978 नं0 58 फलक 107।
16. ऐसर 1980 फलक 41।
17. पाल 1978 न0 40 पर 91।
18. साहनी 1970 फलक 28।

ဢ★ଓ

भारत में आने वाले प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पर हुए कोरोना महामारी के परिणामों का अध्ययन

डॉ. लक्ष्मीकांत शिवदास हुरणे*

शोध सारांश :– कोरोना के उद्रेक के कारण दुनियाभर की अनेक अर्थव्यवस्थोंपर दीर्घकालीन नकारात्मक प्रभाव पडा है। समूचे विश्वभर में साल 2020 के मार्च से लेकर मई के महिने तक लॉकडाउन लगा रहा, जिसके कारण से उत्पादन ठप हुऐ। सरकारों की आमदनी कम हो गई। लोगों के रोजगार छीन गये, जिससे उनका जीवनमान का स्तर कम हुआ। इन परिणामों के साथ बहुत से देशों मे आनेवाले प्रत्यक्ष विदेशी निवेशों पर भी नकारात्मक प्रभाव पडा। इस साल के जनवरी महिने में आई यूनायटेड नेशन्स की एक रिपोर्ट के अनुसार युके, युएस, ईटली, जर्मनी, ब्राझाल एवं रूस जैसी बडी अर्थव्यवस्थों मे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में जबरदस्त गिरावट दर्ज कराई गई। दुनियाभर के देशों मे एफडीआई की बढोतरी 42 प्रतिशत की गिरावट हुई तो इसके विपरीत भारत में आनेवाले विदेशी निवेश में 13 प्रतिशत की बढोतरी हुई है। लेकिन सबसे ज्यादा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश प्राप्त करने वाले देशों की सूची में चीन ने पहले स्थान पर अपना कब्जा कायम रखा। प्रस्तुत शोध कार्य में यही जानने का प्रयास किया गया है की, कोरोना महामारी के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था में आनेवाले प्रत्यक्ष विदेशी निवेशों पर क्या प्रभाव पडा है।

शब्द संकेत :– *भारतीय अर्थव्यवस्था, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश, यूएन रिपोर्ट आदि।*

शोध कार्य की पार्श्वभूमि :– कोरोना वायरस महामारी से लडने के लिए भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने देशवासियों की स्वास्थ्य सुरक्षा को ध्यान में रखकर समूचे भारतवर्ष में 21 दिन के कड़े लॉकडाउन की घोषणा तारीख 24 मार्च 2020 को कर दी थी। जिसके परिणामस्वरूप कुछ अच्छे तथ्य सामने आये थे, जैसे की कोरोना वायरस को रोकने में कुछ हद तक भारत ने सफलता पा ली थी। इसके बावजूद भी बाद में कोविड–19 ने पुरे देशभर में हाहाकार मचा दिया था। इस साल भी मार्च–2021 के प्रारंभ से ही कोरोना वायरस की वजह से संक्रमित लोगों की संख्या एवं मृतकों की संख्या आसमान छू रही है। जिससे न चाहते हुए भी बहुत से राज्यों ने अपनी सीमाओं मे फिरसे लॉकडाउन लगा दिया है। ऐसी विपरीत परिस्थितीयों में भारत की अर्थव्यवस्था डगमगा रही है। गत आर्थिक वर्ष समाप्त होते होते, फरवरी 2021 में औद्योगिक उत्पादन की दर भी 3.6 प्रतिशत तक गिर गई थी जो पीछले साल सबसे कम रहीं।

इस बीच ध्यान देने वाली बात यह रही की भारत में आनेवाले प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पर भी कोरोना महामारी का प्रभाव दिखाई देना चाहिए था। लेकीन कोरोना वायरस महामारी के बावजूद विदेशी संस्थागत निवेशकों का भारतीय अर्थव्यवस्था एवं यहाँ के उद्योगों पर भरोसा कायम रहा है। जिसकी वजह से प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में विगत वर्षों की तुलना में कोई कमी नहीं आई है। भारत सरकार के वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय ने यह जानकारी दी है, गत आर्थिक वर्ष 2020–21 के अप्रेल से नवंबर महिनों के कालखंड में आई विदेशी निवेश की रकम विगत वर्षों की तुलना में अधिक है। इस दौरान विदेशी निवेशकों का रुझान भारत के डिजीटल सेक्टर एवं एनर्जी सेक्टर सर्वाधिक रहा। डिजीटल सेक्टर में हुए निवेशों के अंतर्गत इन्फॉर्मेशन कंसल्टिंग, ई–कॉमर्स प्लेटफॉर्म, डेटा प्रोसेसिंग सर्विस और डिजिटल पेमेंट्स के क्षेत्र में बड़ी संख्या में सौदे हुए।

एफडीआई का अर्थ :– सरल शब्दों में कहा जाये तो, एक देश की कंपनी, या व्यक्ति का किसी अन्य देश की कम्पनियों में या व्यवसायों में किया गया निवेश, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश यानी एफडीआई कहलाता है। ऐसा निवेश करने से निवेशकों को दूसरे देश की उस कंपनी या व्यवसाय के प्रबंधन में अधिकार प्राप्त होते हैं। सामान्यतः किसी विदेशी निवेश को एफडीआई का दर्जा प्राप्त होने के लिए विदेशी निवेशक को किसी

*** सहायक आचार्य : वाणिज्य, श्री व. ना. कला व अ. ना. महाविद्यालय, मंगरुलपीर जि. वाशिम (महाराष्ट्र)**

कम्पनी के न्युनतम 10 प्रतिशत शेयर खरीदना पड़ता है। इसके साथही उसे निवेश वाली कंपनी में मताधिकार भी प्राप्त होता है।

प्रस्तुत शोध कार्य के उद्देश्य :–

1. कोरोना महामारी से भारत में आनेवाले एफडीआई में हुए बदलावों की जानकारी लेना।
2. भारत में आए एफडीआई की तुलना अन्य विकसित राष्ट्रों से करना।
3. भारत सरकारी की एफडीआई नीति का समझने का प्रयास करना।

विधितंत्र :–

प्रस्तुत शोध कार्य को पूरा करने के लिए विविध पुस्तकें, पत्रिकाएं, समाचार पत्र एवं इंटरनेट पर उपलब्ध रिपोर्ट एवं सूचनाओं का सहारा लिया गया है, यानि इस वर्णनात्मक शोध कार्य के लिए द्वितीयक सूचनाओं एवं तथ्यों का आधार हैं। जिसमें आरबीआई बुलेटिन, औद्योगिक नीति एवं संवर्धन विभाग के दस्तावेज, विश्व निवेश रिपोर्ट, वाणिज्य मंत्रालय के प्रेस नोट्स आदि स्त्रोतों का उपयोग किया गया है।

शोध कार्य का महत्व :–

प्रस्तुत शोध कार्य भारत में विविध देशों से आ रहे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के बारे में तथ्य प्रदर्शित करता है। तथा कोविड–19 लॉकडाउन के बीच विभिन्न देशों मे जा रही एफडीआई पर भी यह शोध कार्य प्रकाश डालता है। एफडीआई बढने से रोजगारों के अवसर उत्पन्न कराने के लिए यह शोध कार्य के माध्यम से दिए गये कुछ सुझाव उपयोग में लाये जा सकते हैं।

शोध कार्य की मर्यादायें :–

प्रस्तूत शोध कार्य में सिर्फ कोविड–19 की वजह से उत्पन्न विपरीत परिस्थितीयों के बीच विभिन्न देशों मे जा रही एफडीआई पर विचार किया गया है। द्वितीयक समंको का आधार होने की वजह से रोजगार संबंधी जानकारी प्रत्यक्ष मजदूरों से या उनके नियोक्ताओं से नहीं ली गई।

भारत में आनेवाले प्रत्यक्ष विदेशी निवेश संबंधित तथ्य :–

1. 'यूनायटेड नेशन्स कॉन्फ्रेन्स ऑन ट्रेड एंड डेवलपमेंट-UNCTAD' द्वारा जारी किये गये एक रिपोर्ट के अनुसार दुनियाभर में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश मे गत आर्थिक वर्ष में 42 प्रतिशत की गिरावट देखी गई है। सन 2019 में यह निवेश 1.5 लाख करोड डॉलर का था जो सन 2020 में 859 अरब डॉलर तक नीचे आया। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के इनफ्लो में सबसे ज्यादा गिरावट विकसित देशों में देखी गई है।
2. युरोप समेत दुनियाभर के कई देशों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश नकारात्मक हुआ है, यानि उसमें भी गिरावट हुई है। युएसए में आनेवाला प्रत्यक्ष विदेशी निवेश कुल 49 प्रतिशत घटकर 134 अरब डॉलर तक निचे आया है। लेकिन चीन एकमात्र ऐसा विकसित देश था जहाँ एफडीआई इनफ्लो में बढोतरी हुई और वह एफडीआई के मामले में शीर्ष स्थान पर बना रहा।
3. भारत सरकार के वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय के अनुसार अप्रैल से नवंबर 2020 इन आठ महिनों में 4.26 लाख करोड का एफडीआई भारत में आया। जो विगत किसी भी आर्थिक वर्ष के पहले आठ महिनों मे आये एफडीआई की तुलना में सर्वाधिक है। साथ ही ईक्वीटी मार्केट यानि शेअर बाजार में आई एफडीआई की रकम 3.20 लाख करोड है, जो आर्थिक वर्ष 2019–20 की तुलना में 37 प्रतिशत अधिक है।
4. यूएन की रिपोर्ट के अनुसार, वर्ष 2018 में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की रकम 42 अरब डॉलर थी, जिसने भारत को 12 वें स्थान पर पहुंचाया था। इसमें वर्ष 2019 में बढोतरी होकर भारत में आई एफडीआई की रकम 51 अरब डॉलर हुई, जिसके कारण दुनिया एफडीआई पानेवाले शीर्ष देशों की सूची में 9वां स्थान पर रहा। कोरोना महामारी के दौरान वर्ष 2020 में भारत में आए एफडीआई का इनफ्लो 13 प्रतिशत बढकर 57 अरब डॉलर रहा। इसका यह अर्थ निकलता है की, भारत में निवेश के लिए विदेशी निवेशकों की रूची बढ रही है। इस कारण से भारत की अर्थव्यवस्था में सुधार होगा एवं रोजगार के अवसर बढेंगें।

5. भारत दुनियाभर में सबसे ज्यादा एफडीआई इनफ्लो पाने वाले देशों की सूची में तिसरे पायदान पर रहा, जबकी चीन ने पहला स्थान प्राप्त किया, जिसमें इनफ्लो का प्रमाण बहुत ज्यादा था जिसमें 4 प्रतिशत की बढोतरी के साथ विदेशी निवेशकों ने 163 अरब डॉलर का निवेश किया। वहीं अमेरिका में 134 अरब डॉलर का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश आने से अमेरिका दूसरे नंबर पर रहा।
6. भारत सरकार चीन से आ रही एफडीआई पर कुछ हद तक कम करना चाहती हैं, वहीं अमेरिका से भारत में आनेवाला विदेशी निवेश बढता जा रहा है। कोरोना काल में अमेरिकी कम्पनियों ने भारत में 40 अरब डॉलर से अधिक निवेश किया जिसमें वॉलमार्ट, फेसबुक, गूगल और इंटेल आदि दिग्गज कम्पनियां शामिल हैं।
7. विदेशी निवेशकों ने कोरोना महामारी के दौरान दिसंबर 2020 में भारत में लगभग 68,558 करोड़ रुपये का निवेश किया। डिपॉजिटरी के रिकार्ड के अनुसार, विदेशी पोर्टफोलियो निवेशकों (FPI) दिसंबर में शेयर बाजार में 62,016 करोड़ रुपये, जबकि बांड एवं अन्य प्रतिभूतियों में 6,542 करोड़ रुपये का विदेशी निवेश किया।
8. कोरोना काल में चीन से भारत में लगभग 12 हजार करोड रुपयों का विदेशी निवेश आया है, जबकी 100 से अधिक मात्रा में चीनी निवेशकों के एफडीआई प्रस्ताव भारत सरकार के पास पहुँच चुके हैं, जिस पर सरकार विचार कर रही है।
9. अमेरिका के साथ साथ पश्चिम एशियाई एवं सुदूर पूर्व के देशों के निवेशकों का भी भारत के प्रति विश्वास बढ रहा है, और वे भी भारत में निवेश कर रहे हैं।
10. केंद्र सरकार के अनुसार अप्रैल से नवंबर 2020 इन आठ महिनों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश 22 प्रतिशत बढ गया है। यह आंकडे दर्शाते हैं की, भारतीय अर्थव्यवस्था में कोरोना काल के बाद पुनः उंचा उठने की क्षमता है।
11. सीआईआई के 'पार्टनरशिप समिट–2020' को संबोधित करते हुए, वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री श्री पियूष गोयल ने कहा कि आज भारत में एफडीआई इनफ्लो का प्रमाण बढ रहा है। क्योंकि भारत की एफडीआई नीति दुनियाभर में सबसे सुविधाजनक और अनुकूल नीतियों में से एक है।
12. प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने कहा है की, उनकी सरकार उद्योग, कारोबार एवं उत्पादन के मामले में भारत को आत्मनिर्भर बनाने की ओर ले जा रही है। इस आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना में विदेशी निवेश से रोजगार को बढावा मिलेगा।

भारत सरकार की एफडीआई नीति के प्रमुख अंश :–

किसी भी विदेशी नागरिक या कम्पनी को भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश करने के दो प्रकार मान्य किये गये हैं। जिसमे से पहला प्रकार है, भारतीय रिजर्व बैंक के कार्यालयों में एफडीआई संबंधी दस्तावेज जमा कर अपना निवेश करना। इसे स्वचालित मार्ग (Automatic Route) कहा जाता है। इस प्रकार में एफडीआई के लिए भारत सरकार या भारतीय रिजर्व बैंक से पूर्व अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होती है। दूसरे प्रकार है, सरकारी मार्ग (Government Route) जिसमें विदेशी निवेशक भारत सरकार के माध्यम से विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड (Foreign Investment Promotion Board-FIPB) की संमती प्राप्त कर भारतीय कम्पनियों मे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश कर सकतें है। भारत सरकार ने निम्नलिखित उद्योगों में एफडीआई की मंजूरी दे दी है।

1. भारत सरकार ने डिजिटल मिमिया में 26 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति दी है। यह एफडीआई समाचार एजेंसियां, समाचार, करेंट अफेयर्स ब्रॉडकास्टींग करने वाली वेबसाईट, ऐप एवं अन्य डिजिटल प्लेटफार्म के लिए मंजूर होगी। इससे विदेशी नियंत्रण वाले डिजिटल मिडीया पर अंकुश लगाने भारत सरकार का विचार है।
2. रक्षा मंत्रालय ने रक्षा के क्षेत्र में भी एफडीआई को कुछ शर्तों के आधार पर अनुमति दी है। डिफेंस सेक्टर में उपयोग में होनेवाली वस्तुएं बनाने वाली कम्पनियों को रक्षा क्षेत्र में स्वचालित मंजूरी मार्ग से 74 प्रतिशत तक मंजूरी दी गई है। इस क्षेत्र में एफडीआई को मंजूरी देने से पहले रक्षा विभाग राष्ट्रीय सुरक्षा हित के बारे में विचार करेगा।

3. कोरोना महामारी के दौरान भारत सरकार ने एफडीआई के बारे एक महत्वपूर्ण निर्णय लिया था। जिसमें भारत के साथ जमीनी सीमा से सटें हुऐ देशों की कम्पनियां एवं निवेशक भारत सरकारी की अनुमति के बाद ही भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश कर सकेंगे। इस नियम पर चीन ने आपत्ति जताई थी, जबकी इसी तरह के निर्णय कई युरोपियन देशों ने पहले से ले रखें हैं।
4. कोयला उत्खनन, कोल बेड मिथेन, भूमिगत कोयला गैसीकरण आदि क्षेत्रों मे एफडीआई को मंजूरी देने पर केंद्र सरकार विचार रह है। साथही में इस क्षेत्र में निजी पूंजिपतीयों का सहयोग लेना भी विचाराधीन है।
5. सन 2021–22 के बजट भाषण मे वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने कहा था की, उनकी सरकार बीमा कम्पनियों में एफडीआइ की सीमा 49 प्रतिशत से बढाकर 74 प्रतिशत करने जा रही है। जिसे बादमें मंत्री परिषद ने मंजूरी दे दी है।
6. वस्तु विनिमय, स्टॉक एक्सचेंज, पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस शोधन, निजी सुरक्षा एजेंसियां और नागरिक उड्डयन आदि क्षेत्रों में 49 प्रतिशत तक के प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को मंजूरी दी गई है। जबकी अगर कोई प्रवासी भारतीय (एनआरआई) नागरिक उड्डयन उद्योग में निवेश करना चाहता है, तो उसे 100 प्रतिशत की मंजूरी मिलती है।
7. निजी क्षेत्र की बैंकींग कम्पनियों में 74 प्रतिशत का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश एवं विदेशी संस्थागत निवेश मंजूर किया गया है। लेकिन 49 प्रतिशत से अधिक राशी के निवेश के लिए विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड की मंजूर आवश्यक कर दी गई है। इसके अलावा सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में भी 20 प्रतिशत का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश सरकारी रूट के माध्यम से किया जा सकेगा।
8. सूचना एवं प्रसारण क्षेत्र में भी कुछ मर्यादाओं के साथ एफडीआई को मंजूरी दी गई है। जिसमे एफएम रेडियो, न्यूज एंड करंट अफेअर्स टीवी चैनलों में सरकारी मार्ग के माध्यमसे 49 प्रतिशत एफडीआई की अनुमति है। वहीं नॉन–न्यूज एंड करंट अफेयर्स टीवी चैनलों के अप–लिंकिंग में स्वचालित मार्ग के तहत 100 प्रतिशत तक एफडीआई की अनुमति है।
9. एकल ब्रांड वस्तूओं की खुदरा बिक्री, दूरसंचार सेवाऐं, फार्मा सेक्टर, रेलवे के बुनियादी ढांचो का निर्माण, विकास संबंधित निर्माण परियोजनाएं के लिए 100 प्रतिशत एफडीआई मंजूर है लेकिन 49 प्रतिशत से अधिक निवेश के लिए FIPB की मंजूरी लेनी पडेगी। वहीं मल्टी ब्रांड वस्तूओं की खुदरा बिक्री के लिए 51 प्रतिशत निवेश मंजूर किया गया है, जिसे निवेश के लिए FIPB की मंजूरी लेनी पडेगी।
10. उपग्रह का प्रक्षेपण एवं संचालन क्षेत्र में FIPB के माध्यम से 74 प्रतिशत विदेशी निवेश किया जा सकता है। पावर एक्सचेंज क्षेत्र में कुल 29 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश मान्य है।

निष्कर्ष:

1. भारत सरकार द्वारा नियमित रुप से एफडीआई नीति में सुधार, सुलभ एवं सरल निवेश प्रक्रिया और व्यापार में सुगमता लाने जैसे उठाए गए कदमों का ही परिणाम है कि देश में आ रहे एफडीआई प्रवाह बढ़ गया है।
2. केंद्र सरकार की विदेशी निवेशकों को आकर्षित करनेवाली नीतियों कारण देश में आनेवाले एफडीआई में लगातार सकारात्मक वृध्दी देखी जा सकती है।
3. भारत में वर्ष 2020 में आनेवाली एफडीआई की तुलना चीन या अमेरिका से की जाये तो भारत का इनफ्लो चीन के मुकाबले मात्र 34.97 प्रतिशत एवं अमेरिका के मुकाबले 42.53 प्रतिशत है। इसका अर्थ यह होता है की, विदेशी निवेशकों को भारत में एफडीआई के लिए अधिक प्रेरित व आकर्षिक करना पडेगा, जिससे अर्थव्यवस्था को और गती मिल सके।
4. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश अर्थव्यवस्था में बढत लिए महत्वपूर्ण अंग होता है, क्योंकि, यह गैर–कर्ज वित्त का स्त्रोत है। एफडीआई के बढने से अनेकों कारोबारों के लिए जरुरी रकम मिलती हैं एवं देश में रोजगार के अवसर भी बढते हैं।
5. इसके अलावा, जुआ, सट्टेबाजी, लॉटरी व्यवसाय, निधि कंपनी, चिटफंड, रियल एस्टेट और तंबाकू–सिगरेट आदि क्षेत्रों का कारोबारों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश अभी प्रतिबंधित है और भविष्य में भी इनमें प्रतिबंध कायम रखने की जरुरत है।
6. प्रस्तुत शोध कार्य के दौरान सामने आयें तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है की, कोरोना महामारी का भारत या चीन में होने वाले प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पर कोई अनुचित प्रभाव नहीं पड़ा है।

सुझावः

1. भारत में आनेवाली एफडीआई के माध्यम से औद्योगिक दृष्टी से पिछडे हुए राज्यों एवं जिलो में उद्योग शुरू करने को बढावा दिया जाये। जिससे इन इलाकों के लोगों को रोजगार के अवसर प्राप्त हो सकते हैं।
2. भारत में दुर–दराज के इलाके, जनजातीय एवं पहाडी क्षेत्रों में शिक्षा विषयक आधारभुत सुविधाऐं, स्वास्थ्य सुविधाऐं उपलब्ध कराने के लिए एफडीआई भेज रहें विदेशी निवेशकों को अपने निवेश का कुछ हिस्सा खर्च करने को कहा जाये, जिससे इस क्षेत्र के लोगों के जीवनमान में सुधार आ सके।
3. मेक इन इंडिया कार्यक्रम के अंतर्गत अधिक से अधिक विदेशी कम्पनियों को उनके उत्पादों का उत्पादन भारत में करने के लिए प्रोत्साहित किया जाये, जिससे रोजगारों मे बढोतरी हो सके।
4. रिटेल सेक्टर में आनेवाली एफडीआई से भारत के खुदरा व्यापारीयों को नुकसान न पहूंचे इस बात का भी सरकार को ध्यान रखना चाहिए। नहीं तो बडी कम्पनियां अपने रिटेल स्टोअर से कम किमतों में माल बेचकर बाजार की प्रतिस्पर्धा एवं छोटे व्यापारीयों को खत्म कर सकती हैं।
5. एफडीआई का प्रमाण अधिकतम होने से देश में रोजगार के अवसर बढने के साथ साथ, किसानों की स्थिति मे सुधार आयेगा, सरकारी दफ्तरों में होनेवाला भ्रष्टाचार खत्म हा सकेगा और विदेशी मुद्रा के भंडार में भी वृध्दी होगी।

संदर्भ–सूची :–

1. Wikipedia contributors. (n.d.). प्रत्यक्ष विदेशी निवेश. Wikipedia: The Free Encyclopedia. Retrieved on May 20, 2021, from https://bit.ly/2SebyV1
2. *India third largest recipient of FDI in 2020: Report*. (n.d.). Moneycontrol.Com. Retrieved on May 20, 2021, from https://www.moneycontrol.com/news/business/economy/india-third-largest-recipient-of-fdi-in-2020-report-6838161.html
3. PTI. (2020, June 16). *India 9th largest recipient of FDI in 2019, will continue to attract investments: UN*. Economic Times. https://economictimes.indiatimes.com/news/economy/indicators/india-9th-largest-recipient-of-fdi-in-2019-will-continue-to-attract-investments-un/articleshow/76400055.cms?from=mdr
4. हेमंत सिंग (2017, February 28), भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा. Archive.Org. https://web.archive.org/web/20170906014928/http://www.jagranjosh.com/general-knowledge/foreign-direct-investment-limit-in-the-different-sectors-of-the-indian-economy-in-hindi-1488265763-2
5. Bhasin, N. (2017). *Foreign Direct Investment (FDI) in India Since 1991*. New Century Publications, New Delhi.
6. Madhusudana, H. S. (2019). *Foreign direct investment (FDI) and ease of doing business in India*. New Century Publications, New Delhi
7. Bhasin, N. (2012). *Foreign direct investment (FDI) in India: Policies, conditions & procedures*. New Century Publications, New Delhi
8. United Nations Conference on Trade and Development. (2020). *World investment report 2020: International production beyond the pandemic*. United Nations.
9. Rakhi. (2020). FOREIGN DIRECT INVESTMENT (FDI) IN INDIA. *International Journal of Creative Research Thoughts*, *8*(8), 3313-3316
10. Merajothu, D. (2020). An empirical study on Foreign Direct Investments Impact on Economic Growth of India. *SSRN Electronic Journal*. 8-11 https://doi.org/10.2139/ssrn.3598037
11. Comparative analysis of foreign direct investment in Indian banking sector. (2020). *Journal of Critical Reviews*, *7*(07). 64-69 https://doi.org/10.31838/jcr.07.07.12

कोरोना काल और महिलाएँ

डॉ. चित्रा माली*

लॉकडाउन की अवधि और अनलॉक की प्रक्रिया और फिर लॉकडाउन की प्रक्रिया दुबारा शुरू हो गई है, इस अवधि में कई मुद्दों पर लिखा गया और वेबिनार की एक बाढ़ सी आई, जो कई लोगों के दबे हुए ज्ञान को बाहर ले आई जिससे हम सभी सराबोर हो गए। ज्ञान की इस धारा से लगातार जो मुद्दा नदारद रहा, वह था महिलाओं और कामकाजी महिलाओं का, जो उन्हें वर्क फ्रॉम होम में उन्हें किस तरह की परेशानियां आईं उनसे रूबरू करवा रहा था, इस पर बात का न होना नया नहीं था क्योंकि यह सामाजिक पितृसत्तात्मक सोच का ही परिणाम था, जिसमें महिला श्रम और उत्पादन प्रणाली में उसके योगदान को लगातार नजरअंदाज किया जाता रहा है। इसका ताजा उदाहरण हम अप्रवासी मजदूरों की संख्या और उन पर किए गए कार्यक्रमों के जरिए देख सकते है, इसमें कहीं भी महिला मजदूरों या कामगारों की संख्या का अलग से कोई उल्लेख नहीं किया गया, हम उस मजदूरों की भीड़ में भी महिलाओं को उन मजदूरों के परिवारों का हिस्सा मात्र समझ रहे थे जो उनके साथ महज चल रहा था। हमारा इस पर ध्यान ही नहीं गया कि ये महिलाएं सिर्फ परिवार का हिस्सा न होकर अपने परिवार के लिए धनार्जन भी कर रही होंगी, जिससे देश की आर्थिक स्थिति में भी बहुत बड़ा न सही, कुछ तो योगदान रहा होगा। इसी तरह घरेलू श्रम को भी श्रम की श्रेणी से परे रखा गया है, घर में काम के घंटों का निर्धारण और किसी भी प्रकार के वेतन की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती है, परिवार जो एक संस्था है उसमें कुछ नियम कायदे पहले से विद्यमान रहते हैं जिसमें पति और पत्नी के बीच एक अलिखित करार किया जाता है, जिसमें पति के द्वारा बाहर के कार्य और पत्नी के द्वारा घर के काम और बच्चों के लालन पालन की जिम्मेदारी रहती है, मार्क्सवादी नारीवादी क्रिस्टीन डेल्फ़ी का मानना है कि "घरेलू श्रम पूंजीवादी समाज के लिए एक सामाजिक सांस्कृतिक पीढ़ी तैयार कर रहा है, वह भी एक पूंजी का निर्माण कर रहा है, पर इसके लिए उसे कोई क़ीमत नहीं मिल रही है इसलिए घरेलू श्रम को निश्चित ही सामाजिक विस्तार देते हुए उसके श्रम का मूल्य तय किया जाना चाहिए, "क्रिस्टीन डेल्फ़ी का कहना सही है लेकिन हमारे भारतीय परिवारों में इस श्रम को परिवार के प्रति स्नेह और प्रेम से जोड़कर तथा नैतिकता के साथ पेश किया जाता है जिसमें किसी भी प्रकार के प्रतिरोध की गुंजाइश बहुत कम रहती है, ऐसा भी नहीं है कि ये महिलाएं सिर्फ घरेलू कार्य ही करती हैं,इसके साथ ही वे पारिवारिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बाहर के कार्यों में भी भागीदारी का निर्वहन करती हैं, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों के असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत सभी वर्गों की महिलाओं को इसमें शामिल किया जा सकता है, कई नारीवादी आंदोलनों ने महिलाओं के घरेलू श्रम को उचित श्रम मूल्य प्रदान करने की हिमायत की है और मुद्दा भी बनाया है लेकिन अभी यह राह दूभर है, नवउदारवादी कालखंड में भी महिलाओं को सस्ते श्रमिक के तौर पर घर की दहलीज से बाहर लाया गया किंतु उसमें भी उसके श्रम, उत्पादन, पुनरुत्पादन की अनदेखी लगातार की गई। हम विक्टिम फेमिनिस्म (उत्पीड़ित नारीवाद) के अनुसार जो यह मानता है कि वे शक्तिहीनता से तादात्म्य स्थापित कर लें चाहे वह उस शक्ति की कीमत पर ही क्यों न हो, जो महिलाओं के पास है। यह नारीवाद लिंग के आधार पर निर्णय लेने के लिए अभिशप्त है। यह बच्चों के लालन पालन की नारी क्षमता का आदर्शीकरण करता है और इस बात को पुरूष पर श्रेष्ठता का प्रमाण मानता है। यह सीधे सीधे सत्ता व प्रभाव हासिल करने की अपेक्षा अप्रत्यक्ष प्रभावों या लोगों की राय को अपने पक्ष में करने पर निर्भर करता है। यह नेतृत्व की निंदा करता है और गुमनामी को महत्व प्रदान करता है। यह आत्म बलिदान की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करता है साथ ही यह समुदाय को 'स्व' से अधिक महत्व देता है। हम इसके आधार पर विश्लेषण करने की बात नहीं कह रहे हैं जिसमें माना जाता है कि महिलाओं को महिला होने के नाते कुछ रियायतें मिलनी चाहिए, जब वे गर्भावस्था, पीरियड्स, अपने दुधमुंहे शिशुओं के साथ, बच्चों के साथ में मीलों पैदल चलते रहने को विवश हो बिना दिशा सूचक यन्त्र के (मैप),

---

*** सहायक प्रोफेसर, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा।**

बिना गूगल मैप के एप्प के जरिए हाइवे पर चलते हुए किसी दुर्घटना की शिकार होती हुई या अपने बीमार पिता को सैकड़ों मील साइकिल पर लादकर ले जाती हुई बच्ची को मिलनी चाहिए, हम सिर्फ पॉवर फेमिनिस्म की बात कर रहे हैं जो महिला और पुरूष में भेद नहीं कर सिर्फ एक मनुष्य होने की बात करता है और समाज से भी यही अपेक्षा करता है कि वह महिलाओं को भी मनुष्य समझे न कि उन पर दया या तरस खाकर उन्हें रियायतें प्रदान करें। शक्ति आधारित नारीवाद महिलाओं के लिए और अधिक की कामना करता है, इसकी विचारधारा लचीली और सभी को साथ लेकर चलने वाली है। इसके महत्वपूर्ण सिद्धान्त निम्न है **1.**महिलाएं भी उतनी ही महत्वपूर्ण हैं, जितने पुरूष। **2.** महिलाओं को अपना जीवन निर्धारित करने का अधिकार है। **3.** महिलाओं के अनुभव मायने रखते हैं। **4.** महिलाओं को अपने अनुभवों के बारे में सच बोलने का अधिकार है और **5.** जो भी उन्हें पर्याप्त नहीं मिल रहा है, वह सब उन्हें मिलना चाहिए यह उनका अधिकार है क्योंकि वे महिलाएं हैं; सम्मान, आत्म सम्मान, शिक्षा, सुरक्षा, स्वास्थ्य, प्रतिनिधित्व और पैसा। लेकिन जैसे ही हम पावर वुमन की बात करते हैं तो लोग उसे धनार्जन से जोड़ लेते हैं और मानकर चलते हैं कि जो महिलाएं नौकरी कर रहीं हैं वह सत्ता पर काबिज हैं और उसे संचालित भी कर रहीं हैं, इसमें कोई दो मत नहीं। आज हम हर क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी को देख रहे हैं लेकिन यह सामाजिक व्यवस्था किस प्रकार दोहरा मापदंड महिलाओं से साथ अपनाती है उसे जानना भी कहीं आवश्यक है, कार्यस्थलों पर अपने आपको अपनी काबिलियत को साबित करने का संघर्ष सेवानिवृत्ति तक चलता रहता है। इसके साथ लगातार यह भी सुनते रहना होता है कि महिला होने का फायदा इनको मिलता है भले ही वह दुगनी मेहनत करे। अमूमन कार्यस्थलों पर पुरुषों की अधिक संख्या रहती है, आपस में लाख द्वेष होने पर भी वे एक साथ महिला के विरुद्ध खड़े हो जाते हैं, यहां जब कभी प्रमोशन की बात हो तो पुरुषों के प्रमोशन सही समय पर हो जाते हैं लेकिन किसी महिला का प्रमोशन होना हो तो वहीं सब एकजुट हो साजिश रचने लगते हैं। चलिए ये तो बात हुई सरकारी संस्थानों की, इसमें भी महिलाओं का जब प्रतिशत निकाला जाए तो सिर्फ 5 से 7 प्रतिशत महिलाएं ही सरकारी संस्थानों में कार्यरत हैं बाकी महिलाएं निजी सस्थानों में हैं जहां उनके शोषण के अलग तरीके हैं।

भारतीय मूल वंश की पावर वुमन इंद्रा नूयी ने The New York Times में एक साक्षात्कार के दौरान जब उनसे प्रश्न किया गया कि कॉरपोरेट जगत में और भी ज्यादा महिलाएं शीर्ष पदों तक पहुँचें इसके लिए क्या करना चाहिए? इंद्रा नूयी का जवाब था– वर्क फोर्स में हर स्तर पर पर्याप्त महिलाएं जुड़ रही हैं। लेकिन जब उनके लेवल 2 या लेवल 3 पर पहुंचने का समय आता है तो वह कई कारणों से नौकरी छोड़ देती हैं। इस स्थिति में सुधार के लिए पक्षपात को खत्म करना होगा, इससे भी ज्यादा यह समझना जरूरी है कि जब तक वे लेवल 2 तक पहुँचती है तो उनका परिवार बढ़ चुका होता है और कई कंपनियों में मातृत्व अवकाश देना आज भी अनिवार्य नहीं है। इसलिए वे नौकरी छोड़ देती हैं और हम पूछते हैं कि वे शीर्ष पदों पर क्यों नहीं पहुँचती। हम ऐसा देश नहीं बना सकते जहां महिलाओं को नौकरी न छोड़नी पड़े। अब हम कोरोना काल में कामकाजी महिलाओं की स्थिति पर बात करते है, पूरे देश में लॉक डाउन के समय वर्क फ्रॉम होम था,उस समय घरों में कार्यरत मददगारों को भी नहीं बुलाया जा सकता था तो महिलाओं को दोहरी जिम्मेदारी निभानी पड़ रही थी, कोरोना काल के पूर्व भी वे दोहरी जिम्मेदारी निभा रही थीं लेकिन उनकी कुछ मदद हो जाती थी मददगारों से, लेकिन इस अवधि में तो यह मदद भी उनसे छीन ली गई। परिवार में खाने की फरमाइश का कार्यक्रम जो वीकेंड पर होता था वह रोज होने लगा। कार्यस्थल के कार्यों के साथ साथ घर के कार्यों का बोझ भी लगातार बढ़ता गया। इसमें महिलाओं के मानसिक और शरीरिक स्वास्थ्य पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा जिसका जिक्र कहीं नहीं है। इस पूरे काल में महिलाओं का जो एक स्पेस था जिसे फेमिनिन स्पेस कहते है वो भी महिलाओं के हाथ से चला गया जिसमें वह विरेचन (केथारसिस) का कार्य करती थी, जिसमें वह आसपास की महिलाओं, अपनी सहेलियों अपने परिजनों से बात कर अपने मन के बोझ को कम करती थी, अपने मन की बातों को साझा करती थी, जहाँ उसे कोई सुनने वाला थाद्य इतने पढ़े लिखे समाज में भी घर परिवार की महिलाओं के मन को जानने उनको समझने

का तौर तरीका अभी तक विकसित नहीं हो पाया है इसका परिणामस्वरूप महिलाओं के मन में कई ऐसी वार्ताओं और बातों का इकट्ठा होना स्वभाविक है जिससे वह कई सारी बीमारियों से ग्रसित भी हो जाती है, यही वह स्पेस था जो महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक था और हेल्थ ड्रिंक का काम करता था, इसी तरह महिलाओं का मायके जाना सामान्य लग सकता है लेकिन वह सामान्य सी लगने वाली क्रिया महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य के लिए कितनी आवश्यक और लाभकारी थी, इसे इस रूप में देखे जाने की जरुरत है, लेकिन यह स्पेस जो उनका था उसके ख़त्म होने पर भी किसी तरह का कोई विमर्श या चर्चा का न होना कोई नई बात नहीं है। हम जिस सामाजिक व्यवस्था में रह रहे हैं वहां महिलाओं के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। इस अवधि के पूर्व कामकाजी महिलाओं का स्थान परिवार में और समाज में अन्य महिलाओं से भिन्न था जिसमें वह अपने लिए कुछ रियायतें ले सकती थी, लेकिन इस अवधि के दौरान वह भी टूटा और घरेलू हिंसा के मामले भी अधिक बढ़े, राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष रेखा शर्मा बताती हैं कि महिला हिंसा के खिलाफ 2,914 शिकायतें राष्ट्रीय आयोग को प्राप्त हुईं जो नवंबर 2018 के बाद सबसे बड़ा आंकड़ा है। 660 घरेलू हिंसा के केस, 493 दहेज उत्पीड़न के मामले, 110 साइबर क्राइम, 146 पुलिस उदासीनता के मामले, 148 बलात्कार करने की कोशिश के मामले, 50 यौन उत्पीड़न के मामले दर्ज किए गए जिसमें सर्वाधिक शिकायत 1,461 उत्तर प्रदेश में दर्ज हुई हैं। रेखा शर्मा यह भी बताती हैं कि सोशल मीडिया में आयोग की सक्रियता से इतनी अधिक शिकायतों को दर्ज किया जा सका। इस अवधि में घरेलू हिंसा बड़ी है इसे नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यौरा भी प्रमाणित करता है। नन्दिता दास ने इस अवधि में एक शार्ट फ़िल्म "लिसन टू हर" बनाई जो हर घर की कहानी को बयां करती है। हमारा समाज कितना संवेदनशील है महिलाओं को लेकर यह उनके निर्णयों से झलकता है, इस अवधि के दौरान महिला श्रमिकों की अनदेखी, उनके श्रम की अनदेखी सरकारी विभागों में कार्यरत महिला कर्मचारी के द्वारा वर्क फ्रॉम होम के साथ पारिवारिक कार्यों की अनदेखी,साथ ही निजी क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की अनदेखी जिसमें वेतन का न मिलना, आधा मिलना या नौकरी से निकाल दिए जाने के भय की अनदेखी, घरेलू कार्यों के संपादन के लिए जो मददगार महिला श्रमिक थीं उन्हें भी अपने कार्यों से मुक्त किया गया उसकी अनदेखी। इस पूरे पेंडमिक में कार्यों का बोझ महिलाओं पर अधिक बढ़ा, चाहे वह कामकाजी महिला हो या घरेलू,भले ही वह किसी भी जाति, धर्म, वर्ग की होद्य इस अनदेखी में एक बहुत ही रोचक बात यह हुई कि टीवी चैनल पर रामायण, महाभारत और कई सारी पौराणिक कथाओं का प्रसारण पुनः आरंभ किया गया, यह सामान्य लग सकता है कि जब नए धारावाहिक नहीं बन पा रहे हैं तो इसमें क्या बुराई है लेकिन यह सब एक हिडन एजेंडे के तहत किया जा रहा था, जिसमें महिलाओं को अपनी सीमा रेखा में रहने और दहलीज न लाँघने की नसीहत भी दी जा रही थी। जरुरत इस बात की है एक संवेदनशील समाज को बनाया जाए जो महिला और पुरुष के सह–अस्तित्व को स्थापित कर सके तथा महिलाओं को दोयम दर्जे का मानने की सोच से मुक्त हो सके। बाजार आधारित अर्थव्यवस्था में भी एक साधारण सा उदाहरण सेल फोन का ही लें, वह भी पुरुषों के हाथों के अनुरूप तैयार किया जाता है यह बहुत ही साधारण लग सकता है लेकिन यह सत्य है क्योंकि इन्हें अधिक मात्रा में पुरूष वर्ग ही खरीदेगा। यह कोरोना काल ही महिलाओं को अधिक प्रभावित नहीं कर रहा है बल्कि कई आपदाएं और विपत्तियां भी महिलाओं पुरुषों से कहीं अधिक प्रभावित करती हैं। आज जरुरत सभी को साथ लेकर चलने की है तथा समाज और संस्थाओं को उनके अनुकूल बनाने की है।

संदर्भ–सूची :–

1. जी.स्टेंडिंग (1989),'ग्लोबल फ़ेमिनाइजेशन थ्रू फ्लेक्शिबल लेबर',वर्ल्ड डेवलपमेंट खंड 17,अंक 7।
2. परमार शुभ्रा (2015),नारीवादी सिद्धांत और व्यवहार,ओरिएंट ब्लैक स्वान प्राइवेट लिमिटेड।
3. साईनाथ पी.और मुखर्जी अनन्या,'घर परिवार में कब मिलेगा बराबरी का हक़ ? बीबीसी हिंदी डॉट कॉम www-bbc-co-uk@hindi@india@11@141@27&psainath&ruaral&women&part&two&pk-24november 2014.
4. वुल्फ नाओमी,(2010).इक्कीसवीं सदी का नारीवाद,पितृसत्ता के नए रूप,अनु.प्रगति सक्सेना,संपा.राजेन्द्र यादव,प्रभा खेतान,अभय दुबे. राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली।
5. जोशी गोपा (2006).भारत में स्त्री असमानता.हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय.दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

माध्यमिक स्तरीय सामाजिक विज्ञान पाठ्य-पुस्तकों में लैंगिक रूढ़िवादिता

जयंती*   डॉ. ज्योति कुमारी**

सृष्टि के सृजन में महिला व पुरूष दोनों ही ईश्वर की सुन्दर कृतियाँ हैं, जो इस दुनिया को मिलकर सुन्दरतम स्वरूप प्रदान करते है। **महात्मा गाँधी के अनुसार** ''हमारे समाज में कोई सबसे अधिक हताश हुआ है तो वे स्त्रियाँ ही हैं और इस वजह से हमारा पतन भी हुआ है। स्त्री व पुरूष में जो फर्क प्रकृति में पहले से है जिसे खुली आँखों से देखा जा सकता है, उसके अलावा मैं किसी किस्म के फर्क को नहीं मानता।'' अर्थात् किसी भी समाज को सुव्यवस्थित, सुनियोजित एवं संतुलित रूप प्रदान करने के लिए पुरूष एवं महिला दोनों की ही सहभागिता को महत्वपूर्ण माना गया है। प्रारंभ में जब जन मानस का उद्भव हुआ उस समय पुरूष एवं महिला के कार्यों में कोई भेदभाव नहीं था। परंतु जैसे–जैसे मानव विकास की ओर अग्रसर होता गया स्त्री और पुरूष के कार्यों में विभाजन का प्रादुर्भाव हुआ तथा परिवार का स्वरूप पुरूष प्रधान आधारित हो गया और तदुपरांत शनैः शनैः सामाजिक परिवेश में लैंगिक (जेण्डर) संबंधित विचारों का उदभव हुआ। वर्तमान में इसका प्रत्यक्ष प्रमाण समाज के विभिन्न पहलुओं में देखने को मिलता है। प्रस्तुत प्रपत्र में माध्यमिक स्तरीय सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तकों में सन्निहित लैंगिक रूढ़िवादिता जैसै संवेदनशील मुद्दों पर विषयवस्तु विश्लेषण के माध्यम से अध्यायवार चर्चा जारी है।

प्रत्यय शब्द :– माध्यमिक स्तर, सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तकें, लैंगिक रूढ़िवादिता, विषयवस्तु विश्लेषण।

पृष्ठभूमि :– प्राचीनकाल से वर्तमान तक यदि स्त्री जीवन का सामाजिक इतिहास का अवलोकन किया जाये तो विदित होता है कि नारी का अस्तित्व आदि से वर्तमान तक उत्थान और पतन के मध्य गतिमान रहा है तथा प्रारंभिक काल से आधुनिक काल तक महिलाओं को अनेक दशाओं से गुजरना पड़ा है। शिक्षा किसी भी व्यक्ति, समाज व राष्ट्र की प्राणवायु एवं उसके सर्वांगीण विकास की धुरी है। उन्नत शिक्षा व ज्ञान–विज्ञान के कारण ही भारत को 'विश्वगुरू' कहा गया है। भारत को 'विश्वगुरू' कहे जाने का कारण यह है कि सम्पूर्ण विश्व में केवल भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ धर्म, आध्यात्म, संस्कार एवं मूल्य आधारित शिक्षा प्रदान की जाती रही है। सर्वप्रथम धर्म एवं आध्यात्म को वैज्ञानिकता प्रदान करने वाले युवा हृदय सम्राट **स्वामी विवेकानन्द** ने सत्य ही कहा था, शिक्षा मात्र सूचनाओं का संग्रह नहीं है।

जो हमारे मस्तिष्क में भर दिए जाए हमें जीवन निर्माण करने वाली तथा संस्कारित शिक्षा की परम आवश्यकता है। ''सामाजिक संरचना व सामाजिक व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंगों में पुरूष की प्रधानता प्रतिबिम्बित रही एवं सामाजिक नियम व परम्पराएँ भी उन्हीं के अनुकूल थी यहाँ तक कि कुछ समय पूर्व तक महिलाओं को अपने पति की सम्पत्ति में अधिकार भी नहीं था। 20वीं सदी का भारत आज आधुनिक इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर गया है, जहां पर महिलायें देश के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। परन्तु सम्मानजनक स्थान पर पहुंचने पर भी उन्हे लिंग–भेद का सामना करना पड़ रहा है जिसका उदाहरण समाज में अपराध–बलात्कार, दहेज प्रताड़ना, दहेज–हत्या के रूप में विद्यमान है। सरकार ने महिलाओं पर बढ़ते अपराधों के प्रति कड़े कानून अवश्य बनाए हैं, परन्तु समाज में शिक्षा का अभाव, अधिकारों के प्रति जागरूकता का अभाव और लचीली न्याय व्यवस्था के कारण महिलाएं शोषण तथा दबाव का शिकार हैं। आज का युग प्रजातंत्रीय शासन प्रणाली का है, जो स्त्री और पुरूष से समान जीवन जीने व उन्नति तथा उत्थान के समान अवसरों की अपेक्षा करता है

*** शोधार्थी, स्कूल ऑफ एजूकेशन, वनस्थली विद्यापीठ, जयपुर, राजस्थान 304022।**
**** असिस्टेंट प्रोफेसर, स्कूल ऑफ एजूकेशन, वनस्थली विद्यापीठ, जयपुर, राजस्थान 304022।**

किन्तु व्यवहारिक दृष्टि से देखा जाये तो विश्व के सभी देशों के संसद में पुरूषों की तुलना में महिलाओं का नेतृत्व नगण्य रहा है। जबकि आज 21वीं सदी का उदय हो गया है जिसमें महिलाएँ पुरूषों के समान कंधे से कंधे मिलाकर काम कर रही है। महिला को जहाँ भौतिक संचालिका तथा सृष्टिकर्त्री माना गया है, वहीं दूसरी ओर पारिवारिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक विकास में उनकी सहभागितापूर्ण स्थायित्व को भी स्पष्ट किया गया है। इन संवेदनशील मुद्दों पर उचित क्रियान्वयन हेतु समय–समय पर शिक्षा के माध्यम से लक्ष्योन्मुख कार्यक्रम संपादन द्वारा सामाजिक स्थायित्व को बनाये रखा गया है। इस प्रकार शिक्षा तथा समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध सर्वविदित है।

उपर्युक्त तथ्यों का सामाजीय परिदृश्य हेतु उचित क्रियान्वयन समाज और शिक्षा को एकरूपता प्रदान करने वाला एकमात्र साधन विद्यालयी शिक्षा द्वारा ही संभव है तथा विद्यालयी शिक्षा को सामाजिक परिवेश के अनुकूल बनाने के लिए पाठ्यपुस्तक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती है। मानव कल्याण व समाज के प्रति तर्कसंगत सोच विकसित करने हेतु माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम में सामाजिक विज्ञान विषय की अनुभूतियाँ और ज्ञान एक समतामूलक तथा शांतिमूलक समाज का ज्ञान आधार तैयार करने की दिशा में अपरिहार्य है। सामाजिक विज्ञान विषय के संदर्भ में **राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (2005)** के अनुसार, 2005 तक प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा में लैंगिक विषमताओं को दूर किया जाएगा और 2015 तक पूर्णतः लैंगिक समानता प्राप्त की जाएगी। उपर्युक्त लैंगिक संदर्भित विचारों के आधारस्वरूप **डिपार्टमेन्ट ऑफ जेण्डर स्टडीज, एन.सी.ई.आर.टी.** द्वारा एनालिसिस ऑफ द 'टेक्स्टबुक्स ऑफ असम, बिहार, छत्तीसगढ़, गुजरात, हरियाणा, हिमाचलप्रदेश,

उड़ीसा, महाराष्ट्र, मणिपुर एवं राजस्थान : एक ओवरऑल रिपोर्ट विषय पर अध्ययन कर पाठ्यपुस्तकों में उपलब्ध सकारात्मक पक्षों को उद्धरित किया तथा जेण्डर समावेशन हेतु पाठ्यपुस्तकों के लिए बेहतर उपायो की खोज की गयी जिससे पाठ्यपुस्तक राष्ट्र निर्माण में एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान कर सके परंतु यह उद्देश्य भी अपने कार्यानुरूप पूर्णतः सफल न हो सकी और विफलता की एक कड़ी के रूप में वर्तमान में भी विद्यमान है। यदि पाठ्यपुस्तकों में पुरुषों की सहभागिता, शौर्य, क्रियान्वयन, सर्वोपरि इत्यादि रूप से परिलक्षित हो तो यह जानना आवश्यक है कि समाज के लघु रूप विद्यालय में विद्यार्थियों के समक्ष पाठ्यपुस्तकों को किस रूप में प्रदर्शित किया जा रहा है क्योंकि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी राष्ट्रीय निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देते है। माध्यमिक स्तर के सामाजिक विज्ञान विषय की पाठ्यपुस्तकों में उल्लिखित लैंगिक रूढिवादिता का अध्ययन कर यह जानने का प्रयत्न किया गया है कि क्या वास्तव में वर्तमान समय में पाठ्यपुस्तकों को लैंगिक निष्पक्षता पर विचार कर प्रस्तुत किया जा रहा है।

उपरोक्त वर्णित विचारों के आधार पर शोधकर्त्री के मन में प्रश्नों का उद्गार हुआ तथा इसके उत्तर ज्ञात करने के उद्देश्य से अग्रांकित शोध समस्या का चयन किया गया।

- क्या माध्यमिक स्तरीय सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में उपलब्ध दृश्यचित्र,भाषा शैली व उदाहरण में लैंगिक रूढ़िवादिता प्रदर्शित हो रही है?
- क्या सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में, विषयवार लैंगिक रूढ़िवादिता संदर्भित विचार, मान्यताएँ,मतभेद इत्यादि में अंतर दृष्टिगोचर है?

शोध समस्या : माध्यमिक स्तरीय सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तकों में लैंगिक रूढ़िवादिता

अध्ययन उद्देश्य :– प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं –

माध्यमिक स्तरीय कक्षा IX की सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तकों का लैंगिक रूढ़िवादिता के संदर्भ में विषयवार अध्ययन करना–

- इतिहास पाठ्यपुस्तक के संदर्भ में।
- राजनीति विज्ञान पाठ्यपुस्तक के संदर्भ में।

प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली

माध्यमिक स्तरीय (Secondary Level) : माध्यमिक स्तर से तात्पर्य केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की कक्षा IX के लिए एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रस्तावित सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तकों से है।

सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तकें (Social Science Textbooks) : सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तकें से तात्पर्य एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रस्तावित कक्षा IX के इतिहास एवं राजनीति विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों से है।

लैंगिक रूढ़िवादिता (Gender Stereotype) : लैंगिक रूढ़िवादिता से तात्पर्य जेण्डर विशेषताओं के बारे में मतभेद तथा व्यक्तियों और समूहों की भूमिका में सरलीकृत सामान्यीकरण विचार है। लैंगिक रूढ़िवादिता सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों ही हो सकता है।

विषयवस्तु विश्लेषण (Content Analysis) : समाजशास्त्र शब्दकोष (2011) के अनुसार ''विषयवस्तु विश्लेषण शोध की एक विधि, एक तकनीक है जिसके द्वारा संचार के लिखित, मौखिक अथवा दृश्यात्मक साधनों में अभिव्यक्ति अन्तर्वस्तु का वस्तुपरक, व्यवस्थित एवं परिमाणात्मक विश्लेषण किया जाता है।''

प्रदत्त प्रस्तुतीकरण विश्लेषण व अर्थापन

प्रस्तुत अध्ययन में उद्देश्यों के प्रकृति के आधार पर माध्यमिक स्तरीय सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तकों में निहित लैंगिक रूढ़िवादिता हेतु विषयवस्तु विश्लेषण विधि का प्रयोग किया गया है तथा न्यादर्श के रूप में एन.सी.ई.आर.टी. प्रस्तावित कक्षा IX की इतिहास व राजनीति विज्ञान पाठ्यपुस्तकों को लिया गया है। अतः प्रदत्त की प्रकृति गुणात्मक है। प्रदत्त संकलन हेतु स्वनिर्मित विषयवस्तु विश्लेषण प्रपत्र को निर्मित किया गया है जिसके आधार पर आंकड़ों को सारणी में क्रमबद्ध किया गया। अंततः प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण व अर्थापन हेतु सरलतम सांख्यिकी प्रतिशत व ग्राफीय प्रदर्शन को प्रयोग में लिया गया है।

प्रदत्तों की प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण व अर्थापन विषयवार निम्न भागों के अंतर्गत प्रस्तुत की गयी है–

भाग–अ इतिहास पाठ्यपुस्तक में अध्यायवार लैंगिक रूढ़िवादिता

भाग–ब राजनीतिविज्ञान पाठ्यपुस्तक में अध्यायवार लैंगिक रूढ़िवादिता

भाग–स सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तकों का विषयवार लैंगिक रूढ़िवादिता समग्र विश्लेषण

भाग–अ : इतिहास पाठ्यपुस्तक में अध्यायवार लैंगिक रूढ़िवादिता

इतिहास पाठ्यपुस्तक का लैंगिक रूढ़िवादिता विश्लेषण के निमित्त कक्षा IX की इतिहास पाठ्यपुस्तक में निहित लैंगिक रूढ़िवादिता को दृश्यचित्र, भाषाशैली व उदाहरण के आधार पर अध्यायवार प्रस्तुत की जा रही है।

तालिका–1 इतिहास पाठ्यपुस्तक में अध्यायवार लैंगिक रूढ़िवादिता

अध्याय शीर्षक	पृष्ठ कुल संख्या	लैंगिक रूढ़िवादिता		
		दृश्य चित्र	भाषाशैली	उदाहरण
1. फ्रांसिसी क्रांति	1–24	✓ (4)	✓ (15)	✓ (20)
2.यूरोप में समाजवाद एवं रूसी क्रांति	25–48	✓ (35)	–	–
3. नात्सीवाद और हिटलर का उदय	49–74	–	✓✓ (67)	✓ (67)
4. वन्य समाज एवं उपनिवेशवाद	75–96	–	–	–
5. आधुनिक विश्व के चरवाहे	97–116	✓ (114)	–	–
प्रतिशत ➡		37.5%	37.5%	25%

नोट : प्रस्तुत अध्याय में दृश्यचित्र, भाषाशैली एवं उदाहरण में उल्लिखित लैंगिक रूढ़िवादिता ✓ चिन्ह तथा ( ) कोष्ठक में पृष्ठ संख्या को प्रदर्शित कर रही है जबकि– चिन्ह लैंगिक रूढ़िवादिता के ना होने के भाव दर्शाती है।

उपर्युक्त तालिका से परिलक्षित होता है कि–

अध्याय–1 शीर्षक : फ्रांसिसी क्रांति

पृष्ठ संख्या–4 के चित्र 2 में बड़े व्यवसायी, व्यापारी, अदालती कर्मचारी, वकील आदि के रूप में पुरूष को दिखाया गया है जो लैंगिक रूढ़िवादिता को प्रदर्शित करती है।

पृष्ठ संख्या–15 के विषयवस्तु की भाषा शैली में पुरूष लाल रंग की टोपी पहनते थे जो स्वतंत्रता की प्रतीक थी लेकिन महिलाओं को ऐसा करने की अनुमति नहीं थी जबकि स्वतंत्रता का प्रतीक नारी–आकृति का था। यह वाक्य लैंगिक रूढ़िवादिता की झलक प्रदर्शित करती है।

पृष्ठ संख्या – 20 के उदाहरण में पुरूष बनो.......एवं स्त्री बनो....... गृहस्थी के काम, मातृत्व के सुखद दायित्व यही तुम्हारे कार्य है तथा पुरूष बनने की इच्छा रखने वाली महिलाएँ निर्लज्ज है। इस वाक्य में लैंगिक रूढ़िवादिता परिलक्षित है।

अध्याय–2 शीर्षक : यूरोप में समाजवाद एवं रूसी क्रांति

पृष्ठ संख्या – 35 के चित्र में पहले विश्वयुद्ध के दौरान सिपाही के रूप में पुरूष को दिखाया गया है जो लैंगिक रूढ़िवादिता को प्रदर्शित करती है।

अध्याय–3 शीर्षक : नात्सीवाद और हिटलर का उदय

पृष्ठ संख्या–67 के विषयवस्तु की भाषा शैली में औरते बुनियादी तौर पर मर्दों से भिन्न होती है। उन्हें समझाया जाता था कि औरत – मर्द के लिए समाान अधिकारों का संघर्ष गलत है। इस वाक्य में लैंगिक रूढ़िवादिता के भाव परिलक्षित है।

पृष्ठ संख्या–67 के विषयवस्तु की भाषा शैली में लड़कियों को यह कहा जाता था कि उनका फर्ज एक अच्छी माँ बनना और शुद्ध आर्य रक्त वाले बच्चे को जन्म देना और उनका लालन पोषण करना है। यह स्थिति लैंगिक रूढ़िवादिता को प्रदर्शित करती है।

पृष्ठ संख्या–67 के उदाहरण में हिटलर द्वारा कहा गया वाक्य : हम इस बात को अच्छा नहीं मानते कि औरत मर्द की दुनिया में, उसके मुख्य दायरें में दखल दें तथा औरते अपने अनंत आत्म बलिदान, अनंत पीड़ा और दर्द के रूप में अपना योगदान देती है। इस वाक्य में लैंगिक रूढ़िवादिता के भाव परिलक्षित है।

अध्याय–4 शीर्षक : वन्य समाज एवं उपनिवेशवाद

वन्य समाज एवं उपनिवेशवाद में पृष्ठों की संख्या 75–96 अंकित है। इसके अन्तर्गत दृश्यचित्र, भाषा शैली व उदाहरण में निहित लैंगिक रूढ़िवादिता प्रदर्शित नहीं हुई है।

अध्याय–5 शीर्षक : आधुनिक विश्व के चरवाहे

पृष्ठ संख्या – 114 के चित्र में योद्धा बनने के लिए युवकों को धार्मिक अनुष्ठानों से गुजरना पड़ता है इस अनुष्ठान के साथ ही वे जीवन के एक नए चरण में पहुँच जाते है जबकि लड़कियों को इस तरह के अनुष्ठानों से नहीं गुजरना पड़ता है। यह वाक्य रूढ़िवादिता को परिलक्षित किये हुए है।

आरेख – कक्षा IX की इतिहास पाठ्यपुस्तक का लैंगिक रूढ़िवादिता सम्रग विश्लेषण

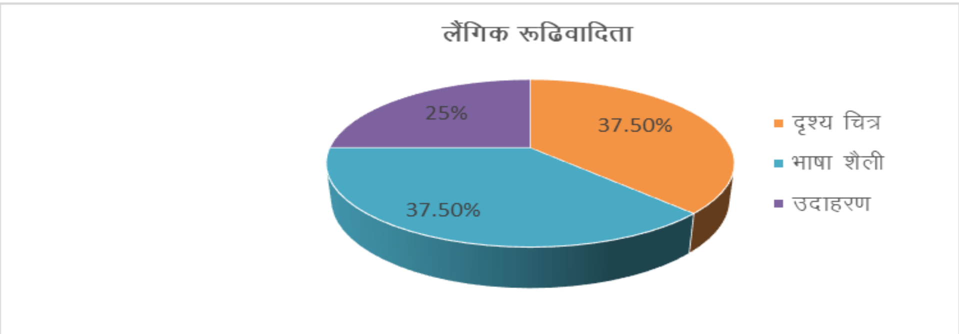

तालिका व आरेख से, कक्षा IX की इतिहास पाठ्यपुस्तक के कुल अध्यायों का लैंगिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण के अध्ययन से पाठ्यपुस्तक में निहित दृश्यचित्र, भाषा शैली व उदाहरण में लैंगिक रूढ़िवादिता का क्रमशः 37.5%,37.5 %, 25% पाया गया है।

अतः परिणामस्वरूप यह कहा जा सकता है कि कक्षा IX की इतिहास पाठ्यपुस्तक में निहित उदाहरण, दृश्य चित्र तथा भाषा शैली में लैंगिक रूढ़िवादिता प्रदर्शित हो रही है तथा इनमें से दृश्य चित्र व भाषा शैली के माध्यम से लैंगिक रूढ़िवादिता की संख्या समान रूप जबकि उदाहरण के माध्यम से लैंगिक रूढ़िवादिता दोनों के तुलनात्मक रूप से कम परिलक्षित है।

भाग–ब

राजनीतिविज्ञान पाठ्यपुस्तक में अध्यायवार लैंगिक रूढ़िवादिता

राजनीतिविज्ञान पाठ्यपुस्तक का लैंगिक रूढ़िवादिता विश्लेषण के निमित्त कक्षा IX की राजनीतिविज्ञान पाठ्यपुस्तक में निहित लैंगिक रूढ़िवादिता को दृश्यचित्र, भाषाशैली व उदाहरण के आधार पर अध्यायवार प्रस्तुत की जा रही है।

तालिका 2 – राजनीतिविज्ञान पाठ्यपुस्तक में अध्यायवार लैंगिक रूढ़िवादिता

अध्याय शीर्षक	पृष्ठ कुल संख्या	लैंगिक रूढ़िवादिता		
		दृश्य चित्र	भाषाशैली	उदाहरण
1. लोकतन्त्र क्या है? लोकतन्त्र क्यों?	1–19	✓✓ (12,15)	✓ (18)	–
2. संविधान का निर्माण	20–35	✓ (34)	✓ (35)	–
3. चुनावी राजनीति	36–59	–	✓ (58)	–
4. संस्थाओं का कामकाज	60–79	✓ (70)	–	✓ (72)
5. लोकतान्त्रिक अधिकार	80–98	✓ (82)	✓ (87)	–
प्रतिशत		50%	40%	10%

नोट : प्रस्तुत अध्याय में दृश्यचित्र, भाषाशैली एवं उदाहरण में उल्लिखित लैंगिक रूढ़िवादिता ✓चिन्ह तथा ( ) कोष्ठक पृष्ठ संख्या को प्रदर्शित कर रही है जबकि– चिन्ह लैंगिक रूढ़िवादिता के ना होने के भाव दर्शाती है।

अध्याय–1 शीर्षक : लोकतन्त्र क्या है? लोकतन्त्र क्यों?

पृष्ठ संख्या– 12 के चित्र में पुरूष को तानाशाही परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट किया गया है जो लैंगिक रूढ़िवादिता की झलक को स्पष्ट करती है।

पृष्ठ संख्या– 15 के चित्र में देश की आजादी का स्वर्ण जयंती पर टिप्पणी किया गया है जिसमें महिला सहभागिता अभाव है जो लैंगिक रूढ़िवादिता को प्रदर्शित कर रही है।

पृष्ठ संख्या– 18 के भाषाशैली में बेटी से बाप : मैं शादी के बारे में तुम्हारी राय सुनना नहीं चाहता। हमारे परिवार में बच्चे वहीं शादी करते हैं जहाँ माँ–बाप तय कर देते हैं। इस वाक्य में लैंगिक रूढ़िवादिता की झलक स्पष्ट हो रही है।

अध्याय–2 शीर्षक : संविधान का निर्माण

पृष्ठ संख्या – 34 के भाषाशैली में 1912 में प्रकाशित 'विवाहित महिलाओं के लिए आचरण' पुस्तक में महिला जाति को शारीरिक व भावनात्मक से नाजुक, आत्मरक्षा योग्य नहीं तथा जीवन भर पुरूषों के संरक्षण में रहने जैसे वाक्य का प्रयोग लैंगिक रूढ़िवादिता को स्पष्ट कर रही है।

पृष्ठ संख्या – 35 के चित्र में महिला सहभागिता का अभाव लैंगिक रूढ़िवादिता की झलक स्पष्ट करती है।

अध्याय–3 शीर्षक : चुनावी राजनीति

पृष्ठ संख्या – 58 के भाषाशैली में औरते उसी तरह वोट देती है जैसा पुरूष उनसे कहते है इसीलिए उनको मताधिकार देने का कोई मतलब नहीं है। इस वाक्य से लैंगिक रूढ़िवादिता की झलक देखने को मिल रही है।

अध्याय–4 शीर्षक : संस्थाओं का कामकाज

पृष्ठ संख्या – 70 के चित्र में मंत्री बनने की होड़ में केवल पुरूषों की संख्या लैंगिक रूढ़िवादिता को स्पष्ट कर रही है।

पृष्ठ संख्या – 72 के उदाहरण से प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के लिए हमेशा पुल्लिंग का इस्तेमाल क्यों होता है... लैंगिक रूढ़िवादिता स्पष्ट हो रही है।

अध्याय–5 शीर्षक : लोकतान्त्रिक अधिकार

पृष्ठ संख्या– 82 के विषयवस्तु की भाषा शैली से औरतों को वैधानिक रूप से मर्दों से कमतर का दर्जा मिला हुआ है इस वाक्य में उन पर कई तरह की सार्वजनिक पाबन्दियाँ बनी है में लैंगिक रूढ़िवादिता की झलक स्पष्ट हो रही है।

पृष्ठ संख्या – 87 के चित्र में खिलाड़ी के रूप में केवल पुरूष पक्ष को प्रदर्शित करना लैंगिक रूढ़िवादिता की झलक को स्पष्ट कर रही है।

आरेख – कक्षा IX की राजनीतिविज्ञान पाठ्यपुस्तक का लैंगिक रूढ़िवादिता सम्रग विश्लेषण

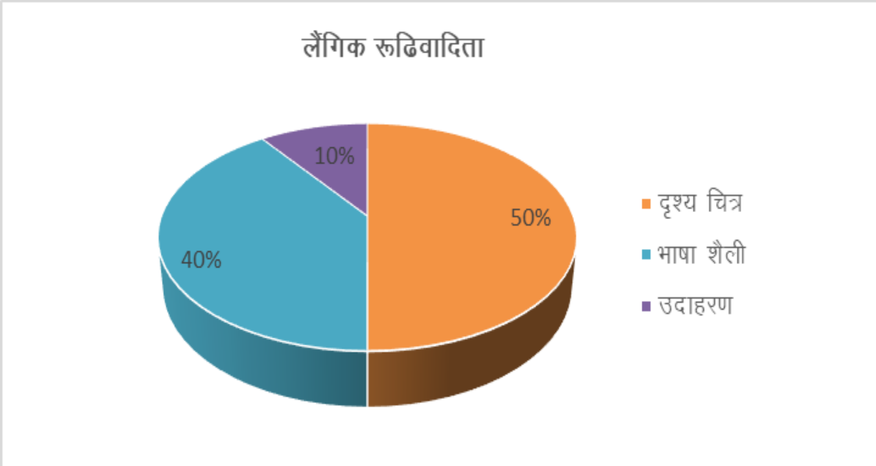

तालिका व आरेख से, कक्षा IX की राजनीतिविज्ञान पाठ्यपुस्तक के कुल अध्यायों का लैंगिक रूढिवादिता में विश्लेषण के अध्ययन से पाठ्यपुस्तक में निहित दृश्यचित्र, भाषा शैली व उदाहरण में लैंगिक रूढ़िवादिता का क्रमशः 50%,40%,10% पाया गया है।

अतः परिणामस्वरूप यह कहा जा सकता है कि कक्षा IX की राजनीतिविज्ञान पाठ्यपुस्तक में निहित दृश्य चित्र में लैंगिक रूढ़िवादिता सबसे अधिक पाया गया तथा इनमें से भाषा शैली के माध्यम से लैंगिक रूढ़िवादिता भी अधिक प्रदर्शित हो रही है जबकि उदाहरण के माध्यम से लैंगिक रूढ़िवादिता की संख्या निम्नतम रूप में परिलक्षित है।

भाग–स : सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तकों का विषयवार लैंगिक रूढ़िवादिता समग्र विश्लेषण

सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तक का लैंगिक रूढ़िवादिता विश्लेषण के निमित्त कक्षा IX की इतिहास व राजनीति विज्ञान पाठ्यपुस्तक में निहित लैंगिक रूढ़िवादिता को दृश्यचित्र, भाषाशैली व उदाहरण के आधार पर प्रस्तुत की जा रही है।

तालिका –3 सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तकों का लैंगिक रूढ़िवादिता समग्र विश्लेषण (प्रतिशत में)

लैंगिक परिप्रेक्ष्य →	लैंगिक रूढ़िवादिता		
सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तकें ↓	दृश्य चित्र	भाषा शैली	उदाहरण
इतिहास	37.5%	37.5%	25%
रा. विज्ञान	50%	40%	10%

आरेख – सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तकों का लैंगिक रूढ़िवादिता समग्र विश्लेषण (प्रतिशत में)

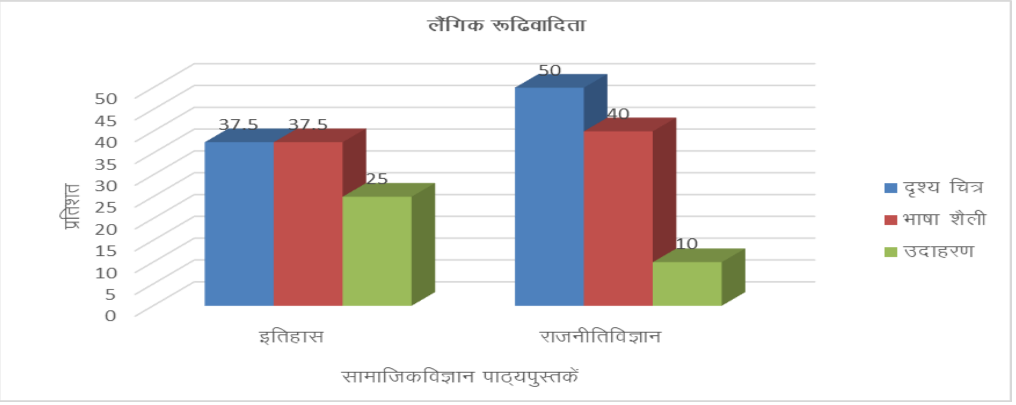

प्रस्तुत आरेख से, सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तकों का विषयवार लैंगिक परिप्रेक्ष्यों में समग्र विश्लेषण के अध्ययन से इतिहास पाठ्यपुस्तकों में उपलब्ध दृश्यचित्र व भाषा शैली में निहित लैंगिक रूढ़िवादिता समान रूप से 37.5% के साथ सबसे अधिक दृष्टिगोचर है। जबकि उदाहरण में 25% के साथ लैंगिक रूढ़िवादिता का स्वरूप परिलक्षित है। राजनीति विज्ञान पाठ्यपुस्तकों_में निहित लैंगिक रूढ़िवादिता दृश्यचित्र में 50% के साथ सबसे अधिक तथा भाषाशैली व उदाहरण में लैंगिक रूढ़िवादिता क्रमशः 40%, 10% के साथ समाहित है।

अतः परिणामस्वरूप यह कहा जा सकता है कि सामाजिक विज्ञान की इतिहास व राजनीति विज्ञान पाठ्यपुस्तकों में से इतिहास पाठ्यपुस्तकों में निहित दृश्यचित्र व भाषाशैली में लैंगिक रूढ़िवादिता समान रूप से सबसे अधिक प्रदर्शित हुई है। इतिहास पाठ्यपुस्तकों के उदाहरण में लैंगिक रूढ़िवादिता दृश्यचित्र व भाषाशैली के तुलना में कम प्रदर्शित हुई है। राजनीति विज्ञान पाठ्यपुस्तकों के दृश्यचित्र में लैंगिक रूढ़िवादिता सबसे अधिक परिलक्षित हुई है। जबकि उदाहरण में सबसे निम्नतम स्वरूप देखने को मिला और इस प्रकार पाठ्यपुस्तक निमार्ण समिति सदस्यों द्वारा इतिहास तथा राजनीति विज्ञान पाठ्यपुस्तकों में उपलब्ध दृश्यचित्र व भाषा शैली में निहित लैंगिक रूढ़िवादिता के प्रति सजगता में कमी प्रतिबिम्बित होती है। इस संदर्भ में पाठ्यपुस्तक निमार्ण समिति, विद्यालयी शिक्षक, अनुसंधानकर्त्ता व सरकारी क्रियाकलाप सदस्यों द्वारा उचित क्रियान्वयन की आवश्यकता है।

निष्कर्ष – प्रस्तुत शोध कार्य के परिणाम आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि इतिहास पाठ्यपुस्तकों में उपलब्ध दृश्यचित्र व भाषाशैली में निहित लैंगिक रूढ़िवादिता के प्रति सजगता में कमी प्रतिबिम्बित होती है। अतः शोधकर्त्री द्वारा इतिहास पाठ्यपुस्तकों के संदर्भ में यह महसूस किया जा रहा है कि इतिहास पाठ्यपुस्तकों में इतिहास पाठ्यपुस्तक निर्माण हेतु सजगता में कमी का आधार वैश्विक परिदृश्य में समय व परिस्थिति अनुरूप सामाजिक व्यवस्थाएँ तथा पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति सदस्यों की तुलनात्मक संख्या में कमी के कारण भी हो सकता है। जबकि राजनीति विज्ञान पाठ्यपुस्तकों में उपलब्ध दृश्यचित्र में लैंगिक रूढ़िवादिता के प्रति सजगता में कमी प्रतिबिम्बित हुई है। अतः शोधकर्त्री द्वारा राजनीति विज्ञान पाठ्यपुस्तकों में निहित लैंगिक रूढ़िवादिता के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि राजनीति विज्ञान पाठ्यपुस्तक निर्माण हेतु सजगता में कमी का आधार राजनीति विज्ञान पाठ्यपुस्तक के अन्तर्गत जाति, धर्म, लैंगिक मसले, चुनावी राजनीति, सत्ता की साझेदारी इत्यादि पक्षों की बहुलता तथा पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति सदस्यों का तुलनात्मक संख्या का अत्यधिक कम प्रदर्शित होना भी हो सकता है। सामाजिक विज्ञान विषय की दोनों पाठ्यपुस्तकों में निहित लैंगिक रूढिवादिता के सन्दर्भ में यह महसूस किया जा रहा है कि सामाजिक विज्ञान विषय की पाठ्यपुस्तकों के निर्माण हेतु सजगता में कमी का आधार विषय की प्रकृति जैसे –समय व परिस्थिति अनुरूप सामाजिक व्यवस्थाएँ आधारित इतिहास पाठ्यपुस्तक, लैंगिक मसले, जाति, धर्म, पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति सदस्यों की संख्या का तुलनात्मक अन्तर के कारण यह स्वरूप प्रतिबिम्बित हो

रही है। अंततः यह कहा जा सकता है कि लैंगिक सुग्राह्यता का ज्ञान बच्चों को देने की आवश्यकता है ताकि सही नींव पर ही मजबूत इमारत का निर्माण हो सके।

संदर्भ सूची :–

1. पाराशर,एस.,व सिंह,एस.(2020). इवेल्यूवेटिंग जेण्डर रिप्रजेन्टेशन इन एन.सी.आर.टी. टेक्सट्बुक्स : अ कन्टेन्ट एनालिसिस. रिसर्च जरनल ऑफ हुमेनेटिज् एण्ड सोशल साइन्सेज्, *11*(4), 323-329. http://dx.doi.org/10.5958/2321-5828.2020.00051.0
2. एटचीसन, ए. एल. (2017). वेअर आर द वुमन? एन एनालिसिस ऑफ जेण्डर मेनस्ट्रीमिंग इन इण्ट्रोडक्टरी पॉलिटिकल साइंस टेक्सटबुक्स. जरनल्स ऑफ पॉलिटिकल साइंस एजूकेशन,*13*(2), 185-199. https://www.tandfonline.com/doi/abs/10.1080/15512169.2017.1279549
3. डावर,एम.टी.,व आनंद,एस. (2017) .जेण्डर रोल्स रिप्रजेन्टेशन एण्ड पोरट्रायलः एन एनालिसिस ऑफ प्राइमरी लेवल एन.सी.आर.टी. टेक्स्बुक्स. स्कूल हेल्थ. आई.जे.एस.एच.डब्लयू, आई.एस.एस.एन:2349-5464, मई–अगस्त2017, वाल्यूम-3, नम्बर-2. https://expressionsindia.org/images/journals/chapters/jul17/2.pdf
4. श्रीवास्तव, डी. एन. (2016), अनुसन्धान विधियाँ, आगरा : साहित्य प्रकाशन
5. शैक्षिक चिन्तन एवं संवाद की पत्रिका. शिक्षा विमर्श. वर्ष–18. अंक–4. जुलाई–अगस्त 2016
6. जेण्डर वायस् इन राज टेक्सटबुक्स सेज एक्सपर्ट्स . टाइम्स ऑफ इण्डिया. जुलाई 2016. पृ.सं. 1.
7. जेन्डर एनालिसिस ऑफ प्राइमरी टेक्स्टबुक्स् ऑफ एन.सी.ई.आर.टी. टेक्स्टबुक्स् : वर्मा कमिटी सुझाव, इण्डियन एक्सप्रेस समाचारपत्र, फरवरी (2014).
8. मेनन, लतिका.(2010). जेन्डर इश्यूज एण्ड सोशल डायनिमिक्स.नई दिल्ली : कनिष्का पब्लिशर्स .
9. कोनेल, आर. डब्लू. (2005), जेन्डर, यू.एस.ए. : पॉलिटी प्रेस
10. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005. नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी.
11. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2000. नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी.
12. लोकतांत्रिक राजनीति–1. कक्षा 9. राजनीति विज्ञान पाठ्यपुस्तक.नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी.
13. भारत और समकालीन विश्व–1. कक्षा–9. इतिहास पाठ्यपुस्तक. नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी.
14. एनालिसिस ऑफ द टेक्स्टबुक्स् ऑफ आसाम,बिहार,छत्तीसगढ, गुजरात,हरियाणा, हिमाचल प्रदेश,ओडिशा, महाराष्ट्रा, मणिपुर एण्ड राजस्थान : ओवरऑल एनालिसिस : नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी. https://ncert.nic.in/dgs/pdf/overallreportDGS_24_8_17.pdf

✿★✿

भारतीय समाज में हिन्दू महिला सम्पति अधिकार
(मिथक व यथार्थ का सामाजिक विश्लेषण)

आभा मिश्रा*

डॉ. विजय कुमार वर्मा**

हिन्दू उत्तराधिकार कानून यह कहता है कि पैतृक संपत्ति में महिलाओं को अब समान अधिकार प्राप्त है, फिर भी महिलाएं पैतृक सम्पति में अपने अधिकारों का दावा करने में हिचकिचाती क्यों है? अवलोकन किया जाए तो यह किसी महिला की निजी स्थिति पर निर्भर करता है अर्थात उसकी पारिवारिक सामाजिक संरचना, वैवाहिक स्थिति आदि। एक दूसरी बात यह भी है कि महिलाएं यह सोचती है कि ऐसा करने पर समाज उनके बारे में क्या सोचेगा और तो और पैतृक घर जाने पर भाई उसे हक लेने वाली समझेंगे या कभी कभार होने वाली सहायता भी न बंद हो जाये। इन सब से परे परिस्थितिवश कभी कोई स्त्री अपना भाग लेना भी चाहती है तो जटिल अदालती प्रक्रिया, वकील कोर्ट कचहरी में दावा करने में लगने वाले पैसे और अंततः इतने लम्बे समय तक चलने वाले मुकदमे जिसमे यह निश्चित नहीं कि उत्तराधिकार कानून होने के बाद भी फैसला महिला के हक में ही हो, क्योकि कानून होने के बाद भी लम्बी और पेचीदा कानूनी प्रक्रिया में हिन्दू महिला सम्पति अधिकार अभी भी एक छलावा ही है।

शब्द संकेत :– हिन्दू महिला, पैतृक संपत्ति, उत्तराधिकार।

किसी भी समाज में स्त्री एवं पुरुष की भूमिका वहां की संस्कृति पर आधारित होती है, चाहे वह पारंपरिक समाज हो या आधुनिक समाज हो। भारतीय समाज परम्परा आधारित समाज रहा है या यूं कहे कि आज भी भारतीय सामाजिक व्यवस्था में परम्परा, रीति रिवाज, प्रथाओं आदि का महतवपूर्ण स्थान है तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। इसी व्यवस्था में स्त्री एवं पुरुष को समाज की परंपरा एवं संस्कृति के अनुसार ही अपने कार्यो का संपादन करना पड़ता है। भारतीय समाज में हिन्दू मान्यताओ में स्त्री को सदैव पूजनीय माना गया है और अन्य धार्मिक सामाजिक प्रयोजनों में स्त्री की सहभागिता आवश्यक थी। संस्कृत का एक श्लोक है कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता' अर्थात जहाँ पर नारी की पूजा होती है वहाँ पर देवताओ का वास होता है, परन्तु यह सब सैधान्तिक रूप में अधिक था व्यावहारिक तौर पर तो एक स्त्री को समाज एवं परिवार में द्वितीयक स्थान ही प्राप्त था। पित्रसत्तात्मक समाज होने के कारण सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन में तुलनात्मक रूप में पुरुषो को ही विशेषाधिकार प्राप्त थे और उत्तराधिकार में यह पीढ़ी दर पीढ़ी पुरुषो को ही हस्तांतरित होते रहे है। ऐसा इसलिए है कि पित्रसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में यह विचारधारा प्रभावी रहती है कि पुरुष महिलाओ से श्रेष्ठ है और महिलाओं पर उनका नियंत्रण होना चाहिए और भारतीय हिन्दू समाज इसी पित्रसत्ता का पोषक रहा है। पित्रसत्ता के कारण ही भारतीय समाज में हिन्दू महिलाएं महत्त्वपूर्ण सत्ता अधिकारों में पहुँच से वंचित ही रही है और इन्ही में से एक महत्वपूर्ण अधिकार है संपत्ति का अधिकार जिस पर हमेशा से पुरुषो का ही स्वामित्व रहा है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार– "दुनिया की 98 प्रतिशत पूंजी पर पुरुषो का कब्जा है, पुरुषों के बराबर आर्थिक और राजनीतिक सत्ता पाने में औरतों को अभी हजार वर्ष और लगेगे" पित्रसत्तात्मक समाज में अब तक यह पूंजी पीढ़ी दर पीढ़ी पुरुषों को उत्तराधिकार में मिलती रही है आगे भी मिलती रहेगी।[1]

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में हिन्दू महिलाओ के संपत्ति के अधिकार पर बात करे तो प्राचीन समाज में उत्तराधिकार के निर्धारण हेतु प्रथागत हिन्दू कानून के दो स्कूल प्रचलित थे– मिताक्षरा एवं दायभाग। इन दोनों विधियों में दायभाग बंगाल में एवं मिताक्षरा सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रचलित कानून था। मिताक्षरा कानून

*** शोध छात्रा, समाजशास्त्र सामाजिक विज्ञानं एवं समाज कार्य विभाग, डॉ शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।**

**** असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र सामाजिक विज्ञानं एवं समाज कार्य विभाग, डॉ शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।**

में सयुंक्त परिवार की जो भी पैतृक सम्पति होती थी उस पर पुरुषो का जन्म से ही अधिकार होता था क्योंकि वह एक पुत्र, पौत्र, परपौत्र के अधिकार से पुरुष दायाद में शामिल होते थे इसमें पुत्रियाँ शामिल नहीं थी। यद्यपि मनुस्मृति में कुछ विशेष परिस्थितियों व उपबंधों द्वारा महिलाओ को सीमित रूप में सम्पति के अधिकार का प्रावधान था परन्तु वो एक मिथक के रूप में ही था वास्तविकता में स्त्री धन या दहेज ही एक हिन्दू स्त्री की संपत्ति होती थी।

स्त्री धन वह धन होता है जो की किसी भी स्त्री को विवाह के समय या पश्चात् पिता, भाई, रिश्तेदार व पति से उपहार स्वरुप मिलता है जिसमे चल अचल कोई किसी भी प्रकार की संपत्ति हो सकती है। मनुस्मृति में मनु ने स्त्री धन में 6 प्रकार की संपत्ति को बताया है जिसमे– विवाह के समय अग्नि के समक्ष पिता आदि द्वारा दिया गया धन (दहेज), गृह प्रवेश व पुत्र जन्म आदि अवसर पर प्राप्त धन, पति द्वारा प्राप्त धन, पिता द्वारा, भाई द्वारा, एवं माता द्वारा दिया गया धन ही शामिल था।[2] इस प्रकार वैदिक कालीन समाज में स्त्री को सीमित रूप में संपत्ति का अधिकार था और मध्यकालीन समाज में उनके इन अधिकारों में ह्रास ही हुआ। ब्रिटिश कालीन समाज में 1874 में विवाहित महिला का संपत्ति का अधिकार अधिनियम आया जिसमे स्त्री धन का विस्तार किया गया और इसमें उपहार के अतिरिक्त व्यवसाय नौकरी या व्यापार से होने वाली आय को भी शामिल किया गया इससे हिन्दू महिलाओ का सम्पति पर स्वामित्व तो बढ़ा पर क्या वह व्यवसाय या नौकरी हेतु उपयुक्त थी या पित्रसत्ता उसे स्वीकृति देती यह एक विचारणीय प्रश्न है। इसी दौरान औपनिवेशिक काल में ही 1937 में "हिन्दू महिला संपत्ति अधिनियम" आया जिसमें हिन्दू विधवा महिलाओं को अपने जीवन काल में पति की संपत्ति में अधिकार प्रदान किया गया। इस अधिनियम में हिन्दू विधवाओं को 'स्त्री सम्पदा' के रूप में संपत्ति का अधिकार मिला जो की स्त्री धन के अतरिक्त था।

स्त्री सम्पदा वह सम्पदा है जिसमें विधवा स्त्री अपने पति की संपत्ति का पूर्ण उपभोग कर सकती है परन्तु उसे इस संपत्ति के हस्तांतरण का कोई अधिकार नही है अर्थात तात्पर्य यह हुआ की इस अधिनियम में पुत्रियों का संपत्ति पर वारिस के तौर पर कोई अधिकार नही मिला था। इतना ही नहीं पुनर्विवाह या पुत्र गोद ले लेने पर संपत्ति पर विधवा का कोई अधिकार नही रह जाता था और मृत्यु पश्चात भी विधवा को जीवन यापन हेतु मिली संपत्ति वापस कर्ता के पास चली जाती थी। अतः स्पष्ट है की इस अधिनियम के बाद भी सयुक्त हिन्दू परिवारों में अब भी संपत्ति पर पूर्ण स्वामित्व पुरुषों का ही था बेटियों या विवाहिता को संपत्ति में अधिकार मिलने की बात एक छलावा ही था। इसी ऐतिहासिक विकास की श्रृखला में राव कमेटी की सिफारिस के आधार पर 1948 में "हिन्दू कोड बिल" लाया गया।

हिन्दू कोड बिल 9 अप्रैल 1948 को यह बिल संविधान सभा में प्रस्तुत किया गया जिसमें 9 भाग 139 धाराएँ व 7 परिशिष्ट थे। यह बिल हिन्दू महिलाओं के संपत्ति विषयक अधिकार, स्त्रियों के दायभागाधिकार, दत्तक पुत्र नियम व संरक्षण, सयुक्त परिवार एवं संपत्ति व विवाह एवं तलाक आदि सामाजिक विषयों पर शास्त्रीय एवं व्यवहारिक दृष्टिकोण से विश्लेषण पश्चात ही प्रस्तुत किया गया था, लेकिन इस बिल पर बहस के दौरान राष्ट्रीय नेताओ ने कहा की इससे तो हिन्दू समाज का मूल ढाचा ही ढह जायेगा। इस बिल का भारी विरोध हुआ जिसके फलस्वरूप अम्बेडकर जी ने भारी मन से मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दियाा। यद्यपि यह बिल पारित नहीं हो सका परन्तु इससे कही न कही परिवर्तन की एक पृष्ठभूमि जरुर तैयार हो चुकी थी जिसके फलस्वरूप कुछ वर्ष के पश्चात हिन्दू कोड बिल के अंतर्गत समग्र रूप में लाये जाने वाले कानूनों को अलग अलग खंडो व अधिनियमों के अंतर्गत लाया गया। इसी दिशा में हिन्दू महिलाओ के उत्तराधिकार को लेकर 1956 का उत्तराधिकार अधिनियम आया।

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 में पारित हुआ जिसके अंतर्गत पुत्रियों को भी पैत्रिक संपत्ति में समान अधिकार दिया गया लेकिन सयुक्त परिवार की अवधारणा को समाप्त नहीं किया गया अर्थात संयुक्त परिवार के रिहायशी मकान में अविवाहित, तलाकशुदा या विधवा बेटियां रह सकती हैं, बटवां नहीं सकती (अगर पुरुष न चाहे तो)। बेटियों में भी विवाहित बेटिया शामिल नहीं है।[3] इस प्रकार यह कहना कि उत्तराधिकार निर्धारण में स्त्री पुरुष दोनों बराबर के सहभागी हो गए थे यह अधिकारों की एक भ्रामक प्रस्तुति

थी, हाँ यह अवश्य हुआ कि इस अधिनियम की धारा 6 से मिताक्षरा सह्दायिकी का बुनियादी सिद्धांत ही समाप्त कर दिया गया अर्थात पहले मिताक्षरा सहदायिकी में सम्पति का निर्धारण केवल पुरुष दायादों में ही होता था लेकिन अब इसमें स्त्रियाँ भी शामिल की गयी। अधिनियम में हिन्दू नारी की सीमित सम्पदा की विचारधारा को समाप्त कर उत्तराधिकार में प्राप्त व वैद्य तरीके से स्व अर्जित संपत्ति में पूर्ण स्वामित्व दिया गया जो कि निःसंदेह स्वागत योग्य कदम था। कृषि भूमि के सम्बन्ध में धारा 4 (2) के अंतर्गत प्रावधान किया गया परन्तु उत्तराधिकार के निर्धारण हेतु इस सम्बन्ध में राज्य स्तरीय नियम ही लागू होते है और यह राज्य स्तरीय कानून पुत्र व पुत्रियों के बीच विभेद पर आधारित है अर्थात कागजी कार्यवाही में वरासतनामा पिता से पुत्र को ही चलता है अतः इसमें बेटियों का स्थान नही था। इस अधिनियम में स्त्री उत्तराधिकार को लेकर बहुत परिवर्तन किये गए किन्तु कुछ खामियां भी थी जैसे– सयुक्त परिवार या पैतृक घर में अविवाहित बेटिया, विधवा या परित्यक्ता रह सकती थी परन्तु विवाहित बेटी का अधिकार नही था। अविवाहित बेटी पैतृक घर में रह तो सकती थी परन्तु उत्तराधिकार में भागीदार नहीं बन सकती थी, हाँ यदि पुरुष चाहे तो उसे कुछ सम्पति दे सकता था और और विधवा, परित्यक्ता पुत्री के अधिकार यदि वे दुबारा विवाह कर लेती थी तो एक विवाहिता की प्रस्थिति मिल जाने से उनके पैतृक संपत्ति में सारे अधिकार स्वतः ही समाप्त हो जाते थे। अतः 1956 के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में हिन्दू महिलाओ के आर्थिक सशक्तिकरण हेतु कई प्रावधान करते हुए सुधारवादी दृष्टीकोण को अपनाया गया परन्तु इस अधिनियम में जो कमियां व्याप्त थी उनको दूर करने हेतु 2005 में संशोधित हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम आया।

हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधित) अधिनियम 2005 9 दिसम्बर 2005 से प्रभावी हुआ और इस अधिनियम के अंतर्गत हिन्दू महिलाओ के पुश्तैनी अधिकारों को सशक्त बनाया गया। सबसे पहले बात करते है कृषि भूमि पर जिसमे 1956 के उत्तराधिकार अधिनियम में राज्य स्तरीय नियम कानून ही लागू होते थे, संशोधित अधिनियम में 1956 अधिनियम की धारा 4(2) को हटा दिया गया और पुत्र एवं पुत्री को समान रूप से कृषि भूमि में अधिकार दिया गया। कागजी तौर पर तो संशोधन हो गया परन्तु वास्तविकता में यह संशोधन कुछ और ही कहता है। सन 2014 में इलाहाबाद उच्च नयायालय ने "अर्चना बनाम समेक के. निदेशक व अन्य" केस[4] में यह कहते हुए केस खारिज कर दिया था की हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम कृषि संपत्ति पर लागू नही होता। इस केस में वादी महिला को पैतृक कृषि भूमि में उत्तराधिकार से मना किया गया क्योकि वह एक विवाहित महिला थी अर्थात राज्य कानून कृषि भूमि में अविवाहित को विवाहित की तुलना में प्राथमिकता है जो कि विभेद पूर्ण है। 1956 के अधिनियम की धारा (23) को परिवर्तित करते हुए पैतृक निवास में रहने का अधिकार अविवाहित परित्यक्ता व विधवा पुत्री के साथ विवाहिता को भी मिला इसके साथ ही विभाजन का भी पूरा अधिकार दिया गया जिससे उन महिलाओ को संबल मिला जिनके लिए जीवन यापन एक गंभीर समस्या है। संशोधित हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम (2005) की धारा 15 (1) में एक हिन्दू महिला के स्वामित्व वाली सम्पति में उत्तराधिकार की बात तो की गयी परन्तु इसमें पत्नी अर्थात महिला के वारिसो की तुलना में पुरुष (पति) के वारिस जैसे भाई या भाई का पुत्र आदि को प्राथमिकता दी गयी है जो कि प्रत्येक स्थिति में अनुकरणीय नहीं है। "ओमप्रकाश और अन्य बनाम राधा चरण और अन्य (2009)" केस[5] में शादी के तीन महीने बाद ही हिन्दू महिला विधवा हो गयी ससुराल वालो ने उससे सारे सम्बन्ध समाप्त कर लिए व माता पिता के पास वापस भेज दिया। बच्चे थे नही और न ही महिला ने दुबारा विवाह किया ऐसी दशा में माता पिता ने उसे आगे पढाया और उसे एक अच्छी नौकरी मिल गयी और उसने अपने जीवन काल में कई संपतियां अर्जित की मगर मृत्यु से पूर्व कोई वसीयतनामा न होने की दशा में उसके माता पिता वह संपत्ति नही पा सके जिन्होंने उसे इस योग्य बनाया और सारी सम्पति पति के वारिस को दे दी गयी क्यूकि धारा 15 पति के वारिस को प्राथमिकता देती है। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम स्व अर्जित संपत्ति पर लागूं नहीं होता है अर्थात ऐसी दशा में पुत्री को स्व अर्जित संपत्ति में मात्र एक वसीयत नामा बनाकर अलग किया जा सकता है और भारतीय हिन्दू समाज में जहा आज भी ज्यादातर दहेज को ही बेटी का हिस्सा मान लिया जाता है तो अलग से कोई क्यों देगा। भारतीय हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में दहेज को बेटी का भाग मान

लिया जाता आज भी चाहे वह उसका उपभोग करे या न करे या फिर आर्थिक शोषण से निजात पाने में वह भाग पूर्ण होगा या नही।

इन सबके अतिरिक्त पैतृक संपत्ति में पुत्र व पुत्री में समान उत्तराधिकार हेतु समय सीमा भी निर्धारित है अर्थात एक पुत्री पैतृक सम्पति में समान अधिकार का लाभ तभी प्राप्त कर सकती है जब उसके पिता की मृत्यु 2005 के संशोधित अधिनियम के प्रारंभ होने के बाद हुई हो। यद्यपि इस सन्दर्भ में अगस्त 2020 में "राकेश शर्मा बनाम विनीता शर्मा ''(2020) के केस[6] में माननीय उच्चतम न्यायालय के तीन जजों की बेंच ने यह कहते हुए कि एक बेटी जन्म से ही पिता की संपत्ति में वारिस है इसलिए संशोधन (2005) की तारीख तक पिता जीवित है या नहीं यह अप्रासंगिक है। यह निर्णय वास्तव में एक स्वागत योग्य कदम है जो की एक प्रगतिशील समाज की पहचान है। उपरोक्त वाद के निर्णय का परिणाम लैंगिक समानता और लैंगिक न्याय के उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु समान उत्तराधिकार निर्धारण हेतु आवश्यक कानून सुधारो के अधिनियमित होने का मार्ग प्रशस्त करता है।

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में जो भी संशोधन किया गया वह सराहनीय है फिर भी आज कितनी महिलाओ के पास उनकी अपनी संपत्ति है यह एक विचारणीय प्रश्न है। समाज कहता है कि एक स्त्री के दो घर होते है पर यथार्थ तो यही है कि दोनों घरो में से उसका अपना खुद का कोई घर नही होता। आज भी पिता शादी के समय देने वाले दहेज को ही बेटी का भाग समझते है, भाई भी रक्षा बंधन, भाई दूज पर नेग देकर समाज की परंपरा को निभा दिए और तो और स्वयं बेटिया भी मायके से उनके सम्बन्ध बने रहे और समाज उनको अच्छा मानता रहे इसलिए वो खुद भी पिता की संपत्ति में अपना भाग नही लेना चाहती। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में पित्रसत्ता की जड़ में बैठे इस दृष्टिकोण को बदलना बेहद जटिल है क्योंकि सामान्यतः महिलाये लेना नही चाहती और यदि विषम परिस्थिति में अपने जीवन यापन हेतु कोई महिला (विधवा तलाकशुदा परित्यक्ता) लेना भी चाहती है तो भाई को लगता की ये तो उसका एकाधिकार है और कागजी प्रक्रिया इतनी जटिल है क्योकि उतराधिकार कानून अपने मूल में भेदभाव पूर्ण रहा है इसलिए कोई जरूरतमंद महिला बिना मायके के सहयोग से आवश्यकतानुसार पैतृक संपत्ति में अपना भाग ले नहीं पाती। इस सन्दर्भ में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह अपेक्षित हो जाता है। हिन्दू उत्तराधिकार कानून हुए संशोधनों के परिणामो पर सार्थक बहस हो और इनका क्रियान्वयन जमीनी स्तर पर हो तभी इसमें सुधार भी हो सकेगा और महिलाओं को उनका अधिकार भी मिल सकेगा।

सन्दर्भ–सूची :–

1. जैन, अरविन्द (2010). न्याय क्षेत्रे : अन्याय क्षेत्रे, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली 110 032, पृष्ठ स. 6.
2. वर्मा,रामचंद्र (2019). मनुस्मृति भारतीय आचार–संहिता का विश्वकोश, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–363.
3. जैन ,अरविन्द (2015). उत्तराधिकार बनाम पुत्राधिकार , राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली 110 032, पृष्ठ संख्या– 26.
4. अर्चना बनाम समेक के. निदेशक (2014) retrived from Indian kanoon – http://indiankanoon-org-
5. ओम प्रकाश और अन्य बनाम राधा चरण और अन्य (2009) web link – http://indiankanoon-org/doc/1651663-
6. राकेश शर्मा बनाम विनीता शर्मा (2020) web link – Indian kanoon http://indiankanoon-org/doc/67965481.

✪★✪

सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा प्रणाली पर कोविड–19 का प्रभाव

(लखनऊ शहर के संदर्भ में एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)

अब्दुल्लाह *

डॉ. शैलजा सिंह**

शोध सार :– प्रस्तुत अध्ययन सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा प्रणाली पर कोविड–19 महामारी का प्रभाव के संदर्भ में है, जो कि शोध के दृष्टिकोण से तात्कालिक एवं प्रासंगिक है। कोविड–19 महामारी ने पूरे विश्व को अपनी चपेट में लिया तथा कोविड–19 महामारी ने संपूर्ण विश्व की आधारभूत संरचना पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है, साथ ही शिक्षा के क्षेत्र पर कोविड–19 का बहुत ही नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। यह अध्ययन प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है तथा अध्ययन क्षेत्र के रूप में उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ शहर को लिया गया है। भारत देश की जनसंख्या के दृष्टि से सबसे बड़े प्रदेश की राजधानी लखनऊ शहर के सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा प्रणाली पर कोविड–19 महामारी के प्रभाव का अध्ययन समीचीन है। अध्ययन क्षेत्र से साक्षात्कार अनुसूची द्वारा आंकड़ा संग्रहण हेतु 20 सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों का चयन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में आंकड़ों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि शैक्षिक सत्र 2019–20 के विद्यार्थियों की शिक्षा प्रणाली पर कोविड–19 का प्रभाव न्यूनतम रहा है, जबकि शैक्षिक सत्र 2020–21 के विद्यार्थियों की शिक्षा व्यवस्था बुरी तरह से प्रभावित हुई है।

शब्द संकेत कोविड–19, शिक्षा प्रणाली, महामारी, प्राथमिक शिक्षा।

प्रस्तावना :– मानव सभ्यता के इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ जब किसी आपदा ने संपूर्ण विश्व को अपने आगोश में ले लिया हो, आपदाओं का बहुत पुराना इतिहास रहा है पूर्व में आने वाली बड़ी से बड़ी आपदा का प्रभाव कुछ महाद्वीपों तक अथवा महाद्वीपों के कुछ राष्ट्रों तक ही सीमित रहा है। वैश्विक संकट द्वितीय विश्व युद्ध को भी पीछे छोड़ते हुए चीन के हुबेई प्रांत की राजधानी बुहान शहर में जन्मे कोविड–19 नामक वायरस ने जो भयानक रूप धरा उससे विश्व के समस्त राष्ट्र तथा उनके प्रत्येक नागरिक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके।

कोविड–19 महामारी ने पूरे विश्व को एक साथ बंद की स्थिति में पहुंचा दिया 31 दिसंबर 2019 को चीन ने कोविड–19 वायरस के प्रकोप की घोषणा की थी और 30 जनवरी 2020 को चीन ने अपने देश में स्वास्थ्य आपातकाल लागू किया वही विश्व स्वास्थ्य संगठन डब्ल्यू एच ओ ने 30 जनवरी की रात करोना वायरस को वैश्विक आपातकाल घोषित किया[1]। कोविड–19 वायरस ने संपूर्ण विश्व के आधारभूत संरचना को हिला कर रख दिया व्यापार एवं वाणिज्य यातायात पर्यटन तथा स्वास्थ्य सेवाओं के साथ–साथ शिक्षा के क्षेत्र पर कोविड–19 का बहुत ही प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

12 मार्च से भारत के सभी शिक्षण निकाय बंद कर दिए गए। भारत सरकार ने राष्ट्रीय तालाबंदी की घोषणा 24 मार्च 2020 से की, अब तक भारत वैश्विक स्तर पर कोविड–19 से प्रभावित राष्ट्रों की सूची में शामिल हो चुका था। भारतीय शिक्षा प्रणाली पूरी तरह से ऑफलाइन कक्षाओं पर आधारित है, जिनमें सबसे अधिक प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर की शिक्षा ऑफलाइन प्रणाली पर निर्भर है देश में तालाबंदी की वजह से बहुत सारे स्कूल ऑफलाइन की जगह ऑनलाइन कक्षाओं का संचालन करने लगे जिससे समस्त छात्र एक समान रूप से जुड़ने में असमर्थ रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में विशेष रूप से सर्वाधिक नुकसान प्राथमिक शिक्षा प्रणाली का हुआ है प्राथमिक शिक्षा प्रणाली में सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा व्यवस्था पर कोविड–19 का सर्वाधिक नकारात्मक प्रभाव पड़ा है, निजी क्षेत्र के स्कूलों की तुलना में सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के पास संसाधनों का

*** शोध छात्र, समाजशास्त्र, सामाजिक विज्ञान एवं समाज कार्य विभाग, डॉ शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्विद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।**

**** एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, सामाजिक विज्ञान एवं समाज कार्य विभाग, डॉ शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्विद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।**

अभाव तथा अभिभावकों की आर्थिक स्थिति ने महामारी काल में प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था को लगभग समाप्त कर दिया है। यूनेस्को की रिपोर्ट के अनुसार भारत में 14 करोड़ प्राथमिक के तथा 13 करोड़ माध्यमिक के छात्र कोविड–19 महामारी से प्रभावित होने वाले छात्रों में से 2 सर्वाधिक प्रभावित होने वाले छात्रों के समूह हैं।[2]

सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य एवं महत्व :– प्रस्तुत अध्ययन सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा प्रणाली पर कोविड–19 महामारी के प्रभाव पर केंद्रित है। अतः यह शोध अध्ययन सैद्धांतिक रूप से आपदा के समाजशास्त्र एवं शिक्षा के समाजशास्त्र से संबंधित है। आपदाओं के कारण सामाजिक ढांचे में आने वाले मौलिक परिवर्तन तथा विपदा काल में मनुष्यों के कार्य व्यवहार में आने वाले बदलाव का सामाजिक अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री आर. के. मर्टन ने बताया है कि विपत्तियों के स्थल समजशास्त्रीय शोध एवं समजशास्त्रीय सिद्धांत रचना के लिए महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करते हैं क्योंकि सामूहिक दबाव से उत्पन्न दशाएँ सामाजिक प्रकिर्याओं को असामान्य लघु समय काल में उत्पन्न होने के लिए बाध्य कर देती हैं और बहुधा निजी वयवहार को सार्वजनिक बना देती हैं।[3] प्रस्तुत अध्ययन जोखिम समाज की समजशास्त्रीय अवधारणा से भी सम्बंधित है, जोखिम समाज की अवधारणा को उलरिच बेक ने प्रतिपादित किया है। उलरिच बेक (1992) का मानना है कि जोखिम का वितरण धन संपदा से जुड़ा है जोखिम एवं संपदा(सम्पन्नता) एक दूसरे के व्युत्क्रमानुपाती हैं अर्थात सम्पन्नता का स्तर जितना ऊंचा होगा जोखिम का स्तर उतना ही कम (नीचे) होगा। दुर्भाग्य वश ग़रीबी जोखिमों को अपनी ओर तेज़ी से आकर्षित करती है, इसके विपरीत सम्पन्नता जोखिमों से बचाती और स्वतंत्र रखती है।[4]

कॅरोना महामारी से उत्पन्न स्थिति ने उलरिच बेक की जोखिम समाज की अवधारणा को चरितार्थ कर दिया है। सम्पूर्ण तालाबंदी के दौरान सबसे अधिक गरीबों को समस्याओं का सामना करना पड़ा था। प्रस्तुत अध्ययन में सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा प्रणाली पर कोविड–19 के प्रभाव का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करने का प्रयास किया है, जिससे कुछ नवीन तत्वों पर प्रकाश डाला जा सके जो भविष्य में आपदा की स्थितियों के अध्ययन में उपयोगी हो सकें।

साहित्य समीक्षा :– जेना कुमार पर्वत[5] ने अपने शोध पत्र : इंपैक्ट आप पेंडमिक कोविड–19 ऑन एजुकेशन इन इंडियाः में यह पाया है कि इस वैश्विक महामारी ने शिक्षा के क्षेत्र को अत्यधिक प्रभावित किया है। जेना के अनुसार कोविड–19 ने चुनौतियों के साथ–साथ अवसर भी प्रदान किए हैं, एक और जहां जेना शिक्षा के डिजिटलीकरण की को महत्व देने की बात करते हैं वही यह भी बताने का प्रयास किए हैं कि भारत में समान रूप से प्रत्येक छात्र तक डिजिटल माध्यमों को नहीं पहुंचाया जा सकता है। क्योंकि डिजिटलीकरण की आधारभूत संरचना पूरे भारत में एक समान नहीं है। भविष्य में ऐसी चुनौतियों से निपटने के लिए ओपन एंड डिस्टेंस लर्निंग (व्क्स) के महत्व को समझते हुए डिजिटल तकनीक को मजबूत एवं प्रभावी बनाने पर जोर दिया है। कुमार प्रमोद[6] :डिफरेंस बेस्ड ऑन इंपैक्ट ऑफ़ कोविड–19 ऑन एजुकेशन सिस्टमः में यह बताने का प्रयास किया है की इस महामारी ने पूरी तरह से शिक्षा प्रणाली को बाधित कर दिया है। इनके अनुसार महामारी के समय भारतीय शिक्षा प्रणाली सबसे अधिक नाजुक हालात से गुज़री है। कुमार प्रमोद के अनुसार ऑनलाइन कक्षाएं कभी भी ऑफलाइन कक्षाओं का स्थान नहीं ले सकती हैं साथ ही ऑनलाइन कक्षाएं छात्रों में भेदभाव पैदा करती हैं।चावरे वीरेंद्र[7] ने– कोविड–19 महामारी और वैश्विक राजनीति : एक विश्लेषण में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि वैश्विक महामारी के काल में वैश्विक नेतृत्व का अभाव पाया गया। इनके अनुसार अमेरिका और चीन ने इस नाजुक समय में आपसी प्रतिद्वंद्विता को महत्व दिया, यदि आरोप–प्रत्यारोप की राजनीति से ऊपर उठकर एकजुटता से महामारी का सामना करते तो परिणाम कुछ और ही होता इस महामारी के समय में वैश्विक नेतृत्व का अभाव रहा है जिसका दुष्परिणाम पूरे विश्व को भुगतना पड़ा। राज उत्सव[8]— इंडियन एजुकेशन सिस्टम इन फाइट अगेंस्ट कोविड–19 पेंडमिक– में अपने शोध में पाया है कि भारत में ऑनलाइन कक्षाओं के लिए आधारभूत संरचना अभी भी पूरी तरह से तैयार नहीं है, अभी यहां इंटरनेट, विद्युत आपूर्ति तथा ई लर्निंग के क्षेत्र में और अधिक विकास की आवश्यकता है।

अध्ययन का उद्देश्य:

- सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा प्रणाली पर कोविड–19 महामारी के प्रभाव का अध्ययन करना।
- सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में ऑनलाइन कक्षाओं के संचालन की चुनौतियों का अध्ययन करना।

शोध पद्धतिः :– प्रस्तुत अध्ययन में शोध के उद्देश्यों एवं प्रकृति के आधार पर वर्णनात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग किया गया है।

निदर्शन :– प्रस्तुत अध्ययन में देव निदर्शन के द्वारा लखनऊ शहर के 20 सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों का चयन साक्षात्कार अनुसूची के लिए उत्तर दाता के रूप में किया गया है।

अध्ययन का क्षेत्र :– जनसंख्या की दृष्टि से भारत के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ शहर का चयन सरकारी प्राथमिक विद्यालयों पर कोविड–19 महामारी के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए किया गया है। लखनऊ शहर में कुल 199 सरकारी प्राथमिक विद्यालय है। 199 प्राथमिक विद्यालयों का 10% बराबर 19.9 अर्थात 20 विद्यालय का चयन देव निदर्शन विधि से किया गया है। बेसिक शिक्षा अधिकारी कार्यालय लखनऊ से प्राप्त 199 प्राथमिक विद्यालयों में से लॉटरी पद्धति का प्रयोग करते हुए 20 सरकारी प्राथमिक विद्यालयों का चयन अध्ययन हेतु किया गया है।

अध्ययन की इकाई :– लखनऊ शहर के सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों का चयन अध्ययन की इकाई के रूप में किया गया है। प्रधानाध्यापक विद्यालय का मुखिया होने के साथ ही विद्यालय से संबंधित समस्त जानकारी उपलब्ध कराने का स्रोत होता है, इसीलिए प्रधानाध्यापकों का चयन अध्ययन की इकाई के रूप में किया गया है। तथ्य संकलन के उपकरण एवं प्रविधि– प्रस्तुत अध्ययन में तथ्यों का संकलन प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों ही स्रोतों से किया गया है। जहां प्राथमिक उपकरण के रूप में साक्षात्कार अनुसूची को शामिल किया गया है वही द्वितीयक स्रोतों में पत्र–पत्रिकाओं, रिपोर्ट एवं अनुसंधान कर्ताओं के प्रतिवेदनो को शामिल किया गया है। संग्रहीत आंकड़ों के संपादन एवं संकेतन के पश्चात आंकड़ों के विश्लेषण के लिए आंकड़ों को सारणीबद्ध करके सरल आवृत्ति तथा प्रतिशत के द्वारा परिणामों का विश्लेषण किया गया है।

विश्लेषण :–अध्ययन क्षेत्र से प्राप्त तथ्यों का प्रस्तुतीकरण एवं विश्लेषण अग्रलिखित है–

तालिका क्रमांक– 1

चयनित प्राथमिक विद्यालयों में नामांकित छात्रों के परिवारों की संख्या और उपलब्ध मोबाइल फोन की स्थिति।

क्र सं	चयनित प्राथमिक विधालय	परिवारो की संख्या	साधारण फ़ोन	स्मार्ट फ़ोन
1.	बरगवां	85	50	05
2.	गिन्दनखेड़ा	50	40	10
3.	हैबतमऊ	120	110	48
4.	बल्दीखेड़ा	95	90	40
5.	हैदरगंज	120	50	10
6.	भूहर द्वतीय	80	70	30
7.	मदेहगंज	100	80	30
8.	हिंदनगर	40	35	15
9.	मर्दन खेड़ा	130	100	79
10.	मक्का खेड़ा	35	25	09
11.	चिल्लाँवा	86	86	29
12.	सरोजनी नगर	68	68	25
13.	गुलाम हुसैन पुरवा	150	150	30
14.	अमराई गावं प्रथम	50	50	20
15.	सेमरा गढ़ी	140	140	40

16.	आज़ाद नगर	30	25	10
17.	आलम बाग	65	45	16
18.	चित्रगुप्त नगर	42	30	12
19.	बरौलिया प्रथम	40	25	15
20.	बादशाह खेड़ा	150	30	08
योग		1676	1319	481
माध्य		**83.8**	**65.95**	**24.05**

तालिका क्रमांक 1 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में औसतन 102 विद्यार्थी पढ़ते हैं। औसतन 102 विद्यार्थी 84 परिवारों से आते हैं , प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के 84 परिवारों में से 66 परिवारों के पास मोबाइल फोन है तथा 66 में से मात्र 24 के पास ही स्मार्टफोन है। चयनित 20 प्राथमिक विद्यालयों में से 50% विद्यालयों के परिवारों के पास औसतन 24 स्मार्टफोन से भी कम स्मार्टफोन है। ऐसे भी विद्यालय हैं जहां पढ़ने वाले विद्यार्थियों के मात्र 5 से 15 ही परिवारों के पास स्मार्टफोन उपलब्ध है।

संपूर्ण लॉकडाउन के बाद उत्तर प्रदेश सरकार ने अध्यापकों को विद्यालय में उपस्थित रहने का आदेश जारी कर दिया था। ऑनलाइन कक्षाओं के माध्यम से छात्रों को शिक्षण से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा था, परंतु ऑनलाइन व्यवस्था सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में सुचारू रूप से नहीं चल सकी। क्योंकि आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों के बच्चे ही सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ते हैं। तालिका क्रमांक 1 के अध्ययन से यह भी पता चलता है कि सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ने वाले 102 विद्यार्थियों के 84 परिवारों में से मात्र 24 परिवार ही अपने बच्चों को ऑनलाइन कक्षाओं की सुविधा उपलब्ध करा सकते हैं। चयनित प्रधानाध्यापकों के माध्यम से यह भी जानकारी मिली है कि स्मार्टफोन धारक परिवारों का एक बड़ा वर्ग है जो समय से इंटरनेट सुविधा ही नहीं ले पाता और महीनों तक कोई प्रतिक्रिया ऑनलाइन माध्यम से नहीं करता है।

तालिका क्रमांक – 2

शैक्षिक सत्र 2019–20 के विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम पूर्ण होने की स्थिति

	आवृति	प्रतिशत	वैध प्रतिशत
81-90%	4	20.0	20.0
91-100%	16	80.0	80.0
योग	20	100.0	100.0

तालिका क्रमांक 2 से यह स्पष्ट होता है कि कोविड–19 महामारी के कारण विद्यालयों के बंद होने से पूर्व शैक्षिक सत्र 2019–20 के विद्यार्थियों का पाठ्यक्रम लगभग पूर्ण हो चुका था। तालिका 2 से स्पष्ट है कि 80% विद्यालयों का लगभग 91 से 100% पाठ्यक्रम पूरा हो चुका था, इसके साथ ही 20% विद्यालयों के विद्यार्थियों का भी 81 से 90% पाठ्यक्रम पूरा हो चुका था।

तालिका क्रमांक – 2.1

शैक्षिक सत्र 2019–20 के विद्यार्थियों के मूल्यांकन की स्थिति

	आवृति	प्रतिशत	वैध प्रतिशत
2	3	15.0	15.0
3	17	85.0	85.0
योग	20	100.0	100.0

तालिका 2.1 से यह स्पष्ट है कि शैक्षिक सत्र 2019–20 के विद्यार्थियों का मूल्यांकन भी बंद से पूर्व विभिन्न चरणों यथा सत्र परीक्षाओं एवं अर्ध वार्षिक परीक्षा के रूप में हो चुका था। तालिका 2.1 के विश्लेषण

से यह निष्कर्ष निकलता है कि शैक्षिक सत्र 2019–20 क 85 % सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों का बंद से पूर्व तीन बार मूल्यांकन 2 सत्र परीक्षाओं एवं एक अर्धवार्षिक परीक्षा के साथ हो चुका था, इसके साथ ही 15 % विद्यालयों के छात्रों का मूल्यांकन दो बार संपन्न हो चुका था।

तालिका क्रमांक – 2.2

शैक्षिक सत्र 2020–21 में प्राथमिक विद्यालयों के छात्र–शिक्षक सम्पर्क की स्थिति

	आवृति	प्रतिशत	वैध प्रतिशत
शिक्षण के सम्बन्ध में	1	5.0	5.0
शिक्षणेत्तर गतिविधि के सम्बन्ध में	1	5.0	5.0
दोनों सम्बन्ध में	18	90.0	90.0
योग	20	100.0	100.0

तालिका क्रमांक 2.2 से यह पता चलता है कि 90% शिक्षक छात्र संपर्क शिक्षण एवं शिक्षणेत्तर गतिविधियों के संबंध में हुआ है 5% का संपर्क शिक्षण हेतु तथा पांच ही प्रतिशत का संपर्क केवल शिक्षणेत्तर कार्यों हेतु हुआ है।

तालिका क्रमांक – 2.3

26 January तक शैक्षिक सत्र 2020–21 के पूर्ण पाठ्यक्रम की स्थिति

	आवृति	प्रतिशत	वैध प्रतिशत
71-80%	9	45.0	45.0
81-90%	10	50.0	50.0
91-100%	1	05.0	05.0
योग	20	100.0	100.0

तालिका क्रमांक **2.3** के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि यदि परिस्थितियां सामान्य होती तो 26 जनवरी 2021 तक सत्र 2020–21 के विद्यार्थियों का पाठ्यक्रम, 45% विद्यालयों का मानना है कि 71 से 80% तक पाठ्यक्रम पूर्ण हो जाता, 50% विद्यालयों के शिक्षकों का मानना है 81 से 90% तक का पाठ्यक्रम पूरा हो जाता तथा विशेष परिस्थितियों में 5% का मानना है कि 26 जनवरी तक 100% पाठ्यक्रम पूरा कर फरवरी में पुनरावृति करा रहे होते।

तालिका क्रमांक 2ए 2.1ए2.2 तथा 2.3 का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि अध्ययन में सम्मिलित 20 सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा प्रणाली पर कोविड–19 महामारी का कितना प्रभाव पड़ा है। अतः तालिका 2 एवं 2.1 के विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि शैक्षिक सत्र 2019–20 के विद्यार्थियों की शिक्षा पर कोविड–19 महामारी का प्रभाव बहुत ज्यादा नहीं पड़ा 80% विद्यालयों के छात्र लगभग अपना पाठ्यक्रम पूरा कर चुके थे शेष 20% विद्यालयों का भी लगभग 5 से 10% पाठ्यक्रम शेष रहा था। शैक्षिक सत्र 2019–20 के विद्यार्थियों के शिक्षण पर कोविड–19 का नकारात्मक प्रभाव यह था कि विद्यार्थियों की वार्षिक परीक्षा संपन्न ना हो सकी थी।

तालिका क्रमांक 2.2 तथा 2.3 के विश्लेषण और चयनित प्राथमिक विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि शैक्षिक सत्र 2020–21 के विद्यार्थियों की शिक्षा व्यवस्था पर कोविड–19 महामारी का बहुत ही नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। प्रधानाध्यापकों के माध्यम से यह भी जानकारी मिली की स्मार्टफोन धारक अभिभावकों का एक बड़ा वर्ग है जो समय से इंटरनेट सुविधा ही नहीं ले पाता और महीनों तक कोई प्रतिक्रिया ऑनलाइन माध्यम से नहीं करता है। :इंडियन एजुकेशन सिस्टम इन फाइट अगेंस्ट कोविड–19 पांडेमिकः अध्ययन में उत्सव राज भी इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि

देश में ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली लागू करने के मैं भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी पूरी तरह से तैयार नहीं है अभी इंटरनेट विद्युत आपूर्ति तथा ई लर्निंग के क्षेत्र में और अधिक विकास की आवश्यकता है।

उक्त विश्लेषण के आधार पर यह कह सकते हैं कि कोविड–19 महामारी ने सर्वाधिक नुकसान शैक्षिक सत्र 2020–21 के विद्यार्थियों की शिक्षा व्यवस्था का किया है और साथ ही यह भी ज्ञात हुआ की सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में ऑनलाइन कक्षाओं के संचालन में बहुत समस्याएं हैं कई सारी चुनौतियों को दूर करने के पश्चात ही ऑनलाइन कक्षाएं प्राथमिक के बच्चों के लिए हितकर होंगी।

निष्कर्ष :– उपरोक्त सभी तालिकाओं का विश्लेषण करने के पश्चात तथा चयनित विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों से बातचीत के फलस्वरुप यह निष्कर्ष निकलता है कि कोविड–19 महामारी से शैक्षिक सत्र 2019–20 के विद्यार्थियों की शिक्षण व्यवस्था पर कोई खास प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा, केवल उनकी वार्षिक परीक्षा ही नहीं हो सकी थी। परंतु शैक्षिक सत्र 2020–21 के विद्यार्थियों की शिक्षण व्यवस्था पूरी तरह से बाधित हुई है। सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में ऑनलाइन कक्षाओं का बहुत अभाव रहा है, इन विद्यालयों में पढ़ने वाले छात्र–छात्राओं के अभिभावकों की आर्थिक स्थिति खराब थी ही कोविड–19 के कारण लगी राष्ट्रीय तालाबंदी ने उनकी स्थिति को और भी दयनीय बना दिया, जिसकी वजह से जिन अभिभावकों के पास स्मार्टफोन था भी वह भी आर्थिक तंगी की वजह से अपने फोन में समय से इंटरनेट सुविधा नहीं करा पाते। अतः शैक्षिक सत्र 2020–21 के विद्यार्थियों की पढ़ाई विशेष रूप से सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में बाधित रही है।

सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में संसाधनों के अभाव एवं विद्यार्थियों के परिवारों की आर्थिक स्थिति निम्न होने के कारण ऑनलाइन कक्षाओं के संचालन में अत्यधिक समस्याएं आ रही हैं।

सन्दर्भ–सूची :–

1. चावरे वीरेन्द्र, ' कोविड–19 महामारी और वैश्विक राजनीतिः एक विश्लेषण' राधाकमल मुखर्जीःचिंतन परम्परा वर्ष 22 अंक 1, जनवरी–जून 2020 पृ० 9.
2. Parvat ku. Jena 2020(c) Impact of pandemic covid-19 on Education in India International Journal of Current Research Vol.12 Issue 07 pp12582 July 2020.
3. रावत हरिकृष्ण, 'समाजशास्त्र विश्वकोश' रावत पब्लिकेशनस नई दिल्ली रिप्रिन्टेड 2020 पृ० 364.
4. Ritzer George, (2000) 'Sociological Theory' McGraw Hill Education (India) Fifth Edition 2011 page 565.
5. Parvat ku. Jena 2020(c) Impact of pandemic covid-19 on Education in India International Journal of Current Research Vol.12 Issue 07 pp12582-12586 July 2020.
6. Kumar Pramod , Reference based study on Impact of covid-19 on Education systems , International Journal of Innovative TechnologyAnd Research ISSN 2320-5547 page 27-30.
7. चावरे वीरेन्द्र, 'कोविड–19 महामारी और वैश्विक राजनीतिः एक विश्लेषण' राधाकमल मुखर्जीःचिंतन परम्परा वर्ष 22 अंक 1, जनवरी–जून 2020 पृ० 9–18
8. Raj Utsav , Indian Education System in FightAgainst covid-19 Pandemic, International Journal of Creative Research Thoughts ISSN 2320-2882 Volume 8 Issue 7 july 2020
9. सिंह रामगोपाल, 'सामाजिक अनुसंधान पद्धति विज्ञान' मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल, 2014
10. बेसिक शिक्षा अधिकारी कार्यालय जनपद लखनऊ उत्तरप्रदेश

धान के न्यूनतम समर्थन मूल्य-निर्धारण का किसानों की आर्थिक-स्थिति पर प्रभाव

भावना ठक्कर*

इस लेख के माध्यम से भारत में धान के न्यूनतम मूल्य निर्धारण करने का कृषकों की आर्थिक स्थिति पर क्या प्रभाव वड़ा, यह दर्शाने की कोशिश की गई है। साथ ही मूल्य निर्धारण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं पिछले दस वर्षों में धान के न्यूनतम मूल्य निर्धारण में उतार–चढ़ाव तथा वर्तमान में धान के न्यूनतम समर्थन मूल्य का प्रस्तुतिकरण किया गया है। सरकार द्वारा ठोस कदम उठाकर कैसे कृषकों की समस्या का समाधान किया जा सकता है यह भी महत्वपूर्ण है। भारत में खेती की बहुत अधिक विविधता होती है। जलवायु, भौगोलिक स्थिति, मिट्टी का प्रकार और सांस्कृतिक व्यवहार ये सभी कारक कृषि के तरीकों को प्रभावित करते हैं लेकिन जब भारत सरकार कृषि लागत एवं न्यूनतम समर्थन मूल्य का निर्धारण करती है तो पूरे देश के लिए एक जैसा होता है। धान भारत देश की प्रमुख फसल है। धान की परिचालन लागत एवं खर्चे भिन्न–भिन्न होते हैं, फिर समर्थन मूल्य एक जैसा निर्धारित करने पर किसानों की आर्थिक स्थिति पर इसका प्रभाव भी भिन्न–भिन्न होता है।

देश की भौगोलिक स्थिति एवं धान उत्पादन के क्षेत्र :– भारत की मुख्य पृष्ठभूमि 84^0 से लेकर $37^06''$ उत्तर अक्षांश के बीच है। देश के प्रमुख धान उत्पादक राज्यों में पश्चिम बंगाल, उत्तरप्रदेश, आंध्रप्रदेश, तेलंगाना, पंजाब, उड़ीसा, बिहार एवं छत्तीसगढ़ है। पूरे देश में 36.95 मिलियन हेक्टेयर में धान की खेती होती है। वर्ष 2012–13 के अनुसार देखा जाय तो पश्चिम बंगाल सबसे बड़ा चावल उत्पादक राज्य था और वर्तमान में भी यहाँ धान का उत्पादन सर्वाधिक होता है।

छत्तीसगढ़ में धान का उत्पादन – छत्तीसगढ़ ''धान के कटोरे'' के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ लगभग 348 मिलियन हेक्टयेर क्षेत्र में चावल की खेती की जाती है, जिसका उत्पादन 53 मीलियन टन है। अनेक कारणों से छत्तीसगढ़ में धान की उत्पादकता कम हो जाती है जैसे सिंचाई की समस्या, गुणवत्ता वाले बीजों की कमी, साख सुविधा की कमी, कीड़े व बीमारी का प्रकोप एवं खरपतवार की समस्या आदि। यदि इन समस्याओं का पूर्ण निराकरण हो सके तो छत्तीसगढ़ में धान उत्पादन की दशाओं का और अधिक विकास होगा। धान का न्यूनतम समर्थन मूल्य के निर्धारण के पीछे भी सरकार का यही उद्देश्य यथा कि कृषकों को आर्थिक क्षति से बचाया जा सके परन्तु यह नीति क्या वास्तव में कृषकों के लिए उपयोगी सिद्ध हुई है इसका मूल्यांकन करना भी आवश्यक है।

धान का न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारण के कारण :– धान के न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारण के पीछे बहुत बड़ा कारण किसानों के हितों की रक्षा करना था, परन्तु यह भी शोध करने योग्य है कि क्या इसका लाभ किसानों को प्राप्त हुआ है। इसके लिए कृषि मूल्य आयोग का गठन भी सरकार द्वारा किया गया, परन्तु लागत से संबंधित बिन्दु पर बहुत अधिक ध्यान नहीं दिया गया।

साहित्य समीक्षा :– वर्ष 1966–67 में पहली बार धान के न्यूनतम समर्थन मूल्य का निर्धारण किया गया जिसके लिए केन्द्र सरकार ने कृषि मूल्य आयोग का गठन किया। 1985 में इसका नाम बदलकर कृषि लागत व मूल्य आयोग रखा गया। वर्ष 2018–19 में धान का न्यूनतम समर्थन मूल्य 1750 रूपये प्रति क्विंटल था। वर्ष 2020–21 में यह मूल्य 1868 रूपये प्रति क्विंटल हुआ परन्तु एक अनुमान के अनुसार देश में केवल 6 फीसदी किसानों को एमएसपी मिलता है तथा बहुत बड़ी संख्या में किसान अब भी मंडी पर ही निर्भर है।

*** शोधार्थी, अर्थशास्त्र विभाग, शासकीय वी. वाई. टी आटोनॉमस पी. जी. कालेज, दुर्ग, हेमचंद यादव विश्वविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)**

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की एक रिपोर्ट के अनुसार 2000 से 2017 के बीच उत्पादों का सही मूल्य न मिल पाने के कारण किसानों को 45 लाख करोड़ रूपये का नुकसान हुआ।

परिकल्पना :– वर्ष 2020–21 के लिए धान का न्यूनतम समर्थन मूल्य 53 रूपये प्रति क्विंटल बढ़ाकर 1868 रूपये प्रति क्विंटल कर दिया गया परन्तु कोरोना महामारी की मार झेल रहे कृषकों के लिए तो यह ऊँट के मुँह में जीरे के समान है। केन्द्र सरकार ने जब धान का एमएसपी मूल्य 200 रूपये बढ़ाकर ऐतिहासिक मूल्य वृद्धि का दावा किया तो यह भी सामने आये कि ये मूल्य स्वामीनाथन आयोग की सिफारिश के मुकाबले 590 रूपये कम है।

ऑकड़ों का प्रस्तुतिकरण :– वर्तमान वर्ष के संदर्भ में यह देखा जाय तो धान के न्यूनतम समर्थन मूल्य के निर्धारण के ऑकड़े इस प्रकार रहे।

क्रम	फसलें	प्रस्तावित लागत 2020–21	खरीफ के लिए एमएसपी	एमएसपी में वृद्धि	लगत पर प्रतिफल (%) में
1.	धान (सामान्य)	1245	1868	53	50
2.	धान (ग्रेड–ए)	–	1888	53	

पिछले 10 वर्षों में धान के न्यूनतम समर्थन मूल्य में उतार–चढ़ाव

वर्ष	न्यूनतम समर्थन मूल्य में उतार–चढ़ाव (प्रतिशत में)
2010	12
2011	5
2012	8
2013	15
2014	5
2015	4
2016	4
2017	5
2018	6
2019	13
2020	3.5
2021	2

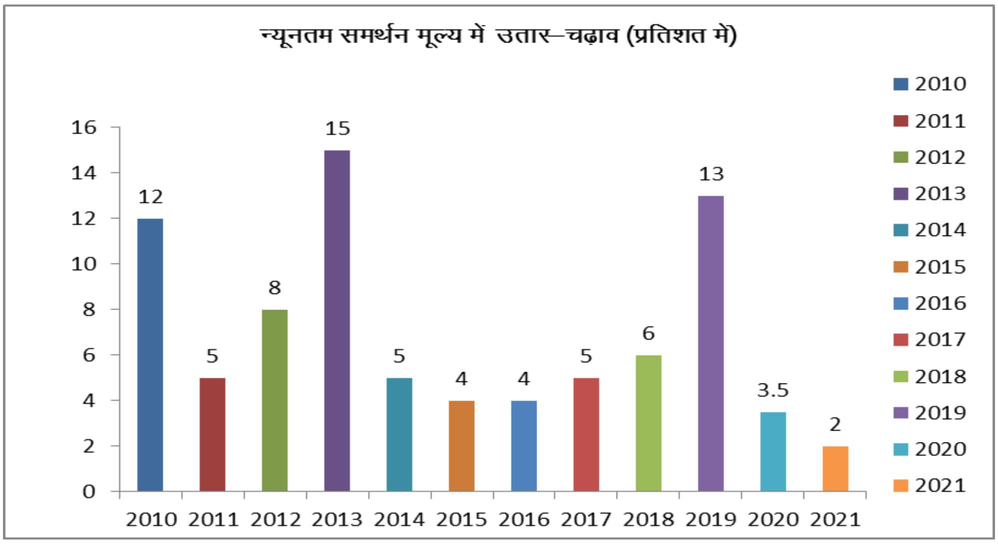

ऑकड़ों का विश्लेषण : उपरोक्त ऑकड़ों से स्पष्ट है कि पिछले 10 वर्षों में प्रतिवर्ष धान के न्यूनतम समर्थन मूल्य में उतार–चढ़ाव हुए और यही कई बार किसानों के आक्रोश का कारण भी बने। आर्थिक सलाहकार सुरजीत भल्ला ने जब कृषि सुधारों की जरूरत पर जोर दिया और अगले तीन वर्षों में समर्थन मूल्य समाप्त करने का सुझाव दिया था तो अर्थशास्त्रियों ने कहा था कि किसानों को उत्पादन एवं बाजार के उतार चढ़ाव में अनिश्चितता से बचाने के लिए समर्थन मूल्य जरूरी है, परन्तु इसका फायदा सारे कृषकों तक पहुँचना चाहिए। ऑकड़ों से यह साफ पता चलता है कि पिछले 10 वर्षों में सरकार गारंटी की कीमत को बढ़ाने में संकोच करती है।

सुझाव एवं निराकरण – यदि सरकार किसानों को उत्पादन बढ़ाने हेतु प्रोत्साहित करे तथा समस्यागत क्षेत्रों में भी फसल बीमा व्यवस्था लागू करे तथा कृषि ऋण व्यवस्था का भी विस्तार करे तो संभव है कि कुछ सीमा तक कृषकों की सहायता हो सकेगी। अतः कहा जा सकता है कि हमें अल्पकालिक भावपूर्ण दृष्टिकोण को अपनाने से बचना चाहिए। फसल की मजबूत खरीद नीति और फसलों की रख–रखाव द्वारा कृषकों की आर्थिक दशा में सुधार लाया जा सकता है। फसलों की खरीदी में विलम्ब तथा भण्डार गृह की सुविधा भी मुख्य पहलु है क्योंकि भंडारगृह की सुविधा न होने पर बहुत सा अनाज व्यर्थ हो जाता है। कृषकों की आर्थिक दशा में सुधार देश की आर्थिक दशा में सुधार होगा। अतः इस ओर मजबूत कदम उठाये जाने चाहिए। यदि कोरोना महामारी की मार एवं आर्थिक तंगी से जूझ रहे किसानों के लिए सरकार सहायता उपलब्ध कराकर न्यूनतम समर्थन मूल्य उचित रूप से लागू करे तो किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो सकता है।

संदर्भ–सूची :–

1. पंजाब केसरी. (2017, 05 2017), सरकार बढ़ा सकती है धान का न्यूनतम समर्थन मूल्य. Retrieved from https://www.punjabkesari.in
2. द वायर. (2019, 02 2019), क्या न्यूनतम समर्थन मूल्य की प्रक्रिया में बदलाव की जरूरत है? Retrieved from https://www.wirehindi.com
3. किसान समाचार. (2020, 06 2020), जानिए क्या रहेगा वर्ष 2020–21 में धान सहित अन्य फसलों का न्यूनतम समर्थन मूल्य. Retrieved from https://www.kisansamadhan.com
4. गौराहा, रजनीश. (2017), छत्तीसगढ़ के जांजगीर–चाम्पा जिले में धान के उत्पादन, विपणन, प्रसंस्करण, उपज अंतराल एवं अवरोधों का विश्लेषणात्मक अध्ययन (कृषि अर्थशास्त्र) पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.). Retrieved from https://www.hdl.handle.net/10603/301519
5. अमर उजाला. (2020, 06 2020), केन्द्र सरकार ने 2020–21 के लिए धान के न्यूनतम समर्थन मूल्य में 53 रूपये की वृद्धि की. Retrieved from https://www.amarujala.com.

Impact of Agitation of Gorkhas of Darjeeling in 2017 on School Education : Perception of Students of Darjeeling District

Ms. Prerna Mukhia*

Dr. Sweta Dvivedi**

Abstract:- *The education of Darjeeling hills cannot be defined without the insertion of strike caused by the agitation. Although the agitation can be used as a medium or opportunity to express a public referendum that can bring several changes, the deceleration of education can also be observed. The standard of the education of Darjeeling is deteriorating since it is adversely affected by the strikes nowadays. The immediate shut down in the region, involvement in the rallies, picketing, curfew all these factors have compelled the educational institution to degrade. The paper investigates how 2017 agitation has affected the educational institutions of Darjeeling, how the students, including the local community, are affected by agitations. It recommends how the stakeholders, policymakers, and academic bodies jointly make decisions initially for the growth of education in the district of Darjeeling.*

Keywords: 2017 Agitation, Gorkhas, School Education.

Introduction:- The history of agitation in Darjeeling cannot be explained without the insertion of agitation. Agitation in Darjeeling hills has become a common phenomenon of growing inconsiderate policy-making relationships between the authority and the public. Darjeeling located in the lesser Himalayas at an elevation of 6,700 ft. (2,042.2m) is a small town which has a partially autonomous status within the state of West Bengal. The district can be divided into two broad divisions: the hills and the plains. The three major towns and the sub-divisional headquarters in the district are Darjeeling Kurseong and Mirik. Total hilly region of the district comes under the Gorkhaland Territorial Administration (GTA), a semi-autonomous administrative body under West Bengal Government. The educational institutions of Darjeeling are facing uncertainty because of the strikes. As it has been said in the opening sentences, the agitation of Darjeeling hills has a long history. In the year 1980, SubhasGhisingh, the late president of Darjeeling Gorkha Hill Council (DGHC) outstretched the demand for the creation of separate state Gorkhaland within India, engraved out of hills of Darjeeling and area of Doors and SiliguriTerai adjoining Darjeeling. In year 1986, 2007, 2013 also Gorkha people raised their voices for the separate state; Gorkhaland.

An agitation exhilarated in West Bengal during June 2017 to September 2017. The protest bid by Gorkha Janmukti Morcha (GJM) was initiated after West Bengal Government pronounced Bengali language as compulsory language in all the schools across the state. The GJM administered area of Darjeeling, Kurseong, and Kalimpong, where most people speak Nepali, were not ready to accept the Government's decision. The Government later decided that Bengali would be offered as an optional, second, or third language in the hills in. However, the GJM declined the Government's decision and reinforced the protest, which led to the revitalization of the old demand for the separate state of Gorkhaland. Therefore, the indefinite strike was called, which led to the shut down in the entire region. There were extensive illustrations of violence that include riots, arson, burning of the vehicle, Government properties, and houses.

*** M.Phil. Scholar, Department of Education, Mizoram University, Aizawl, Mizoram**

**** Assistant Professor, Department of Education, Mizoram University, Aizawl, Mizoram**

The students' have been directly or indirectly involved in the agitation of 2017. There is a long history of participation of students in the strikes worldwide. Students sometimes participate in the agitation for the educational issues such as reduction of the fees, process of admission, improvement in the resources, campus conditions, lack of infrastructural facilities, poor administration of institution, economic or social concerns in which they register their presence as a stakeholder of the society/nation. (UGC 1960) (Rojas, 2011).

The activities during the agitation in which participation of students can be witnessed are students' union, rallies, picket line participation, participation in a public demonstration, office occupation, and other types of support (Giguere&Lalonde, 2010) but it can be understood easily these kinds of activities, distance the students from academics and eventually it affects their academic performance and the same thing can be seen as a result of students' participation in the agitations (directly or indirectly) in the Darjeeling hills.

Rationale of the Study:- The agitation which started in June 2017 in the Darjeeling hills lasted for more than three months. It had taken a toll on the students, their parents, and the teachers who are the most critical stakeholders of education. Some common problems related to students were observed during the agitation. These problems were more severe for the students who were in the last year of their secondary or higher secondary classes and were about to appear in the board examinations. Thus, the study highlights all the crucial points of the educational system, which was affected by the agitation of 2017. The investigators have focused on finding out the impact of agitation on education, educational institutions, and different education stakeholders. The study was aimed to analyze the impact of agitation, and it came up with some recommendations. Since all the schools of Darjeeling hills were affected by agitation; the researcher tried to include schools of all three boards i.e., Central Board of Secondary Education (CBSE), Indian Certificate of Secondary Education (ICSE), and West Bengal Board of Secondary Education (WBBSE) as the sample of the study.During the agitation of 2017, the educational institutions of the hilly regions of Darjeeling district and Kalimpong district were most affected. In the study the rural and urban areas which were part of Darjeeling hills were selected. With above justifications, the investigators have shed light on every possible way to fill up the gaps.

Objectives of the Study

1) To find out the impact of agitation of 2017 on school education in Darjeeling.
2) To find out the problems faced by students during the agitation of 2017 in Darjeeling.

Delimitation of the Study

1. The researcher has delimited the study to the selected schools of the Darjeeling hilly region. The researcher did not focus on Kalimpong's schools since its announcement as a separate district in February 2017.
2. The researcher has included only those students from secondary and higher secondary classes who appeared in the board examinations of the academic year 2017-2018 and passed.

Method :- A descriptive method has been adopted for the study.

Population and Sample :- The target population of the present study consists of all the schools and students of government and non-government schools of the Darjeeling hill area studying in the final year of secondary and higher secondary classes in the session 2017-18

Sample and Sampling Technique :- To select the appropriate and a representative number of sample 200 students studying in the final year of secondary and higher secondary classes in the session 2017-18, were chosen. Out of 200 students, 100 students were from class 11^{th} and rest of 100 students was from graduation 1^{st} year. At first, 30 schools of Darjeeling hill area (15 rural and 15 urban) were selected randomly and 100 students from these selected 30 schools were selectedusing simple random sampling technique. 3-5 students from these schools were interviewed. To select 100 students who appeared in the board examination of class 12^{th} in the year 2018, again simple random sampling

technique was adopted. Investigators selected 5 colleges randomly. Further, 20 students from each college were interviewed.

Tool used for Data Collection :- To collect the data for this study a semi-structured interview schedule was developed by the investigators. This interview schedule was prepare keeping in mind the impact of 2017 agitation on schools, the status of the 2018 board examination, the problem faced by students, and their views regarding agitation. As per the requirement and nature, the content validity of the tool was established. The final draft of the interview schedule comprised of 21 items.

Statistical Treatment of Data :-The data collected through the interview schedule were analyzed using frequency and percentages. As the interview schedules were semi-structured, the responses received were also analyzed by using content analysis.

Major Findings of the Study :-

The responses received from students were analyzed and given below.

- Majority of the students reported that imposition of any language over mother tongue as a medium of instruction is a deceitful step taken by the Government.
- Schools in both the rural and urban areas of Darjeeling Hill could not organize important events like15th August, Teacher's Day, School’s foundation day etc. because of strike caused by the agitation 2017
- As per the finding of the study, majority of the schools were close during the entire time of agitation. However, few schools of urban areas managed to continuously run the academic activities adopting specific measures like temporarily shifting to the other division of the district (the plain division where strike wasn’t lead). The authority of the schools offered tuitions, hired rented buildings, marriage halls, community halls in the both the hill and plain division of the district for the conduction of classes. However, there was a lack of infrastructural facilities in the rented buildings which were hired for the commencement of classes. The students of the rural area suffered more than the students of urban area, because no such measures were adopted by the rural schools.
- The incidents like the burning of the school's property, riots, etc., did not occur in the Darjeeling Hill at the time of agitation 2017 and if such incidences were there, these were rarely because only a few students reported that apprehension/incidents like the burning of school property, riots, etc., took place during the agitation period.
- Students did not come across any direct inconvenience created by the agitators.
- The measures adopted by some schools were not applicable and was not possible for many schools. Therefore, the teachers were asked to complete the remaining syllabus at their own residence during the agitation period.
- Classes were taken unofficially in the urban areas during the period of agitation. After the agitation, majority of schools (rural and urban) conducted extra classes to avoid academic loss of students.
- Schools of the rural area could covered fewer courses.
- Majority of the students missed the classes during the agitation of 2017 therefore they faced problems in restarting academic activities after the agitation of 2017.
- The Government did not provide security measures and transportation facilities during the time of agitation for the safety of students and teachers in Darjeeling hill.
- Students had an opinion that examination conducted after the 2017 agitation had an adverse effect on their academic performance.
- Students from the rural as well as from the urban area felt that they achieved less percentage compared to their standard.

- Majority of students answered the ban internet connection created problem because of which they couldn't take admission in several schools and colleges in and outside the state, which resulted in losing their one year.
- Students of both rural and urban areas engaged themselves in self-study during the period of agitation. They reported a certain change in their study habits during the period of agitation.
- According to students, agitation of 2017 was not beneficial for the students' academic interest. The study of Johnson (2011), Fiksenbaum *et al*., (2012) and Ajayi (2013) also support this finding of the present study. Majority of the students had an opinion that agitation should occur without disturbing academic institutions.

Discussion and Conclusion :-The major objective of the present research study was to measure the impact of the 2017 agitation on education that took place in the district of Darjeeling. To achieve this objective, the perception of students about 2017 agitation and the problems faced by them during this period was studied. The issues for which the 2017 agitation was initiated have not been completely redressed, so the stakeholders who were most affected academically during the agitation needed to be consulted and the suggestions proposed by them should be implemented so if the similar problems arise in the future, minimum educational loss can be ensured.

A democratic agitation without disturbing academic institutions can be accepted to some extent. The students reported that the motive of this agitation 2017 was right, but involvement of academic institutions' in agitations is not acceptable. Some students reported that the introduction of the Bengali language in the school curriculum is valid, as it is an important language, especially for the people living in West Bengal. However, Nepali Language should also be given equal importance. While at the same time, the majority of the students reported that, mother-tongue has no substitute. Therefore, the introduction of the Bengali language as a compulsory subject and medium of instruction was not an appropriate step taken by the Government of West Bengal. According to the students of Darjeeling hill, the agitation of 2017 hampered educational system. Although the syllabus was completed on time, it was managed hastily arousingdissatisfaction among the students. Mostly the students of 10th and 12th standards were under pressure. Students felt that they lost their interest and confidencein the academic career. They faced compatible issues in restarting the studies after a long gap of agitation. Some students of Darjeeling hill ended up getting low marks in the board examination because steps/measures adopted by teachers and the school authority were also not suitable for them. Internet was banned in the region at the time of agitation. Therefore, the work which relies on the internet, especially filling an online application form, was not possible at that time due to which some students were compelled to lose one year. Since fewer schools were shifted to the other area, adjusting with the weather of that place was very difficult for some students. Students reported that taking extra classes to cover the syllabus was one of the most suitable steps adopted by the teachers.

Students of Darjeeling Hill put together a far-reaching loss of education because of agitation 2017. Board examination results of the students of rural area of Darjeeling Hill were more affected. It may be because the school authority of the rural area could not adopt certain measures for the continuation of academic activities as compared to the school authority of the urban areas. Transportation facility was neither provided to the student nor to the teachers, to reach to the other area of the district and in particular places where classes and tuitions were conducted. It is also important to keep in mind that these facilities were available for the students of urban areas. Board examinations started as scheduled, and majority of the students accepted that their performance had been negatively affected by agitation. Though, teachers took some extra effort and tried to complete the syllabus before the board examination but according to the students course was completed in a very rush manner and it was not beneficial to them.

The losses which has been occurred in terms of marks or losing the year can't be offset but some positive changes also came up during agitation as most of the students oriented towards self-study. Furthermore, on top of everything, there was no inconvenience caused by the agitators.

Darjeeling which is famous for the finest educational institutions across the country went through an unhealthy environment. The findings of the study show that the educational system was the most affected area. The discourse so far shows that the present and the future of education in the hilly region of Darjeeling district will not be bright if the agitations are going to include the educational institutions also.

References:-

1. Ajayi, J.O. 2013. ASUU Strikes and Academic Performance of Students in Ekiti State University Ado-Ekiti. *Int. J. Manang.Bus.Res.* Vol. 4. No. 1. Pp. 19-34. Retrieved from http://www.srbiau.ac.ir/article_2247_48e5c6cb4147e2363a414bc4d5c7beb.pdf
2. Bose, P. (2008). The student anti-sweatshop movement in the new Millennium. *IndianaJournal of Global Legal Studies*. Vol. 15, No. 1. Pp. 213- 240. Retrieved from http://www.jstor.org/stable/10.2979. 17-05-2018. 09:59.
3. Chatterjee, R. 2017. What lies behind the Gorkhaland protest in Darjeeling, an ancient sense of hurt and injustice. *HuffpostPolitics.* Retrieved from https://www. huffingtonpost.in/2017/06/12/the-gorkhaland-protests-in-darjeeling-arise-from-
4. Dewan, D.B. (2014).*Education in Darjeeling hills, during the period of Gorkhaland agitation*. iliguri: Gorkha BharatiVicharManch.
5. Edinyang, S.D. and Ubi, I.E. (2013). Effect of strike action on human development among Social studies secondary school students in Uyo Local Government area of AkwaIbom State, Nigeria. *Global Journal of Human Resource Management*. Vol. 1 No. 2. pp 1-8. Retrieved from http://www.ea-journals.org.
6. Fiksenbaum, L.M., Greenglass, E.R.,Wickens, C.M.and Wiesenthal, D.L. (2012). Students' Perceptions of Fairness Following an Academic Strike. Canadian Journal of Higher Education. Vol. 42, No. 3. Pp. 24- 44. Retrieved from: http://www.files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1002136.pdf
7. Giri, P. 2017. Darjeeling unrest: Holiday turns into nightmare for tourists. *HindustanTimes.* Retrieved from https://www.hindustantimes.com/india-news/darjeeling-unrest-holiday-turns-into-nightmare-for-tourists/storyewUD5NVikL8Sugdnl5WcHP.html
8. Hindustan Times. 2011. *GJM wins Darjeeling constituency by record margin of votes.* Retrieved from http://www.hindustantimes.com/india-news/kolkata/gjm-wins-darjeeling-constituency-by-record-margin-of-votes/article1-69745.
9. Johnson, R.D. 2011. Do strikes and work-to-rule campaigns change elementary school assessment results? *Canadian Public Policy/Analyse de Politiques*. Vol. 37 No. 4, pp. 479-495. Retrieved from http://www.jstor.org/stable/23074917. 15-05- 2018 10:35.
10. Kothari, C.R. 2004. *Research methodology research and techniques*. New Delhi: New Age International Publishers.
11. Koul, L. 2009. *Methodology of educational research*. New Delhi: Vikas Publication House.
12. Loiwal, M. 2017. Gorkhaland agitation takes a toll on students' fate. Teachers turn saviours: *India Today* https://www.indiatoday.in/india/story/gorkhaland-agitation- students-fate-teachers-saviours-Gorkhaland-movement-1025681-2017-07-21
13. O'Malley, LSS. 1999. Bengal district gazetteers. New Delhi: Logos Press Publication
14. Pempahishey, K.T. 2013. *Roadmap on the trail to Gorkhaland*. Siliguri: Darpan Publication Pvt.Ltd.
15. Rojas, F. 2010. Power through institutional work: Acquiring academic authority in the 1968 third world strike. *The Academic of Management Journal.* Vol. 53, No. 6. pp. 1263-1280. Retrieved from http://jstor.org/stable/29780259. 15-05-2018 10:26
16. Singh, V. 2017. A Case Study of Student Unrest in Himachal Pradesh University. *An International Journal of Education and Applied Social Science.* Vol. 8, No. 1. pp 129- 135.
17. The Times of India. 2011. GTA bill passed with 54 amendments. Retrieved from http://timesofindia.indiatimes.com/city/kolkata-/GTA-Bill-passes-with-54-amandments/articles/how/9842647.cms?referral=PM
18. UGC 1960. The problem of student indiscipline in India. Cited in Sharma, K. D. (2014). Modern Indian Youth: Reasons and Result of Unrest and Core Agitation. *International Journal of Applied Sciences & Engineering*. Vol. 2, No. 1. Pp. 21-26
19. Wenner, M. 2013.Challenging the state by reproducing its principles: The demand for "Gorkhaland" between regional autonomy and the National belonging. *Asian Ethnology*. Vol. 72 No. 2. pp. 199-220. Retrieved from http://www.jstor.org/stable/23595476.

The Spirit of India : Hindu Philosophy in the Select Novels of R.K. Narayan

Dr. Anju K.N. *

R.K. Narayan, a doyen in Indian English literature, has his literary fame resting on Malgudi, the fictional world that he has created. The ethos of the Indian society, more specifically, the Hindu society—its culture, philosophy and values—gets reflected through his novels. The bulk of his fiction centres primarily on concepts connected with the Hindu religious pantheon. Stories from Hindu myths, legends, puranas and epics suffuse his works.

Narayan firmly believed that a writer should be rooted in one's own culture to render the true essence of his/her homeland accurately. Underlying his conviction, the centuries old religious and philosophical practices of his own country come to the forefront in his portrayals of Malgudi. Born in a traditional Tamil Brahmin family, Narayan was well versed in the Hindu scriptures, myths and legends, the love for them infused in him by his maternal grandmother. His religious background and the traditional family upbringing initiated him into knowing the essence of the Hindu philosophy. Narayan's belief in the eternal spirit of ancient India, his deep regard for the Shastras, his faith in the pre-ordained and karma-operating world, his philosophy of acceptance, his belief in the phenomenal world as ephemeral and as 'maya', his awareness of the concepts of the 'Brahman' and the 'Atman', and his belief in 'moksha' the ultimate liberation, all reflect the core of the Hindu philosophy that he has imbibed. Steeped in the Hindu cultural and philosophical ambience, he produced characters whose world view, many a time reflected his own. Consequently, *advaita vedanta*, *karmic* world view, *purusharthas*, the cycle of *samsara* and *Moksha*—concepts unique to the Hindu culture and way of life find a place in the life of the Malgudi folk.

Narayan's fictional oeuvre contains 14 novels, a number of short stories, and shortened prose versions of the *Ramayana* and the *Mahabharata*. Quite interestingly, there is not a single work where the doctrines or concepts prominent to the Hindu philosophy does not find a reference. The Hindu concept of 'ashramadharma'—Brahmacharya, Grihasta, Vanaprastha and Sannyasa—the four stages of life through which a Hindu will ideally pass, finds reference in the Narayan novels. The first two of his novels, *Swami and Friends* and *The Bachelor of Arts* deal with 'Brahmacharya', and the next two, *The Dark Room* and *The English Teacher*, with 'Garhastya'. Swami in *Swami and Friends* is a ten-year-old school boy trying to cope with the 'sisya' stage of his life, with his aversion to Mondays with its dull routine of work and discipline after the freedom of Saturday and Sunday, and his fear of the thin long cane of the school master. Chandran in *The Bachelor of Arts* is a final year history student at Albert Mission College. Chandran's student life takes an unexpected turn with his meeting Malathi, the girl of his dreams. But as the horoscopes mismatch, it becomes impossible for Chandran to marry the girl of his choice. Upon the failure of his love affair, Chandran impulsively decides to take on 'Sannyasa', the final stage of renunciation, skipping the other two stages of 'Garhastya' and 'Vanaprastha'. But the ochre robe that he wears and the self-mortification he imposes on his flesh do not grant him peace of mind.

*** Associate Professor of English, T.M. Jacob Memorial Government College, Manimalakunnu, Ernakulam Kerala.**

Gnawed by pangs of guilt, he returns to the loving fold of his family to resume his student life and to consecutively follow the role of the householder, only to enter the other stages later.

The concept of ‘Ashramadharma’ is found mentioned in his other novels too. In *The English Teacher*, the head master of the pyol school chooses ‘sanyasa ashrama’ as his life span as predicted by his astrologer comes to an end. When the world-weary man finds himself alive even after the predicted time, he understands that the time has come for him to renounce the worldly affairs. “You may treat me as dead or as one who has taken *Sanyasa Ashrama*” (168), he announces. In *A Tiger for Malgudi*, the Master who spiritually transforms the tiger is one such sanyasi. He maintains: “What you see is my old shell; inside it’s all changed. … My past does not exist for me, nor a future.…I have erased from my mind my name and identity and all that it implies” (171).

In *The Vendor of Sweets* Jagan, the prosperous sweet vendor muses about entering the stage of ‘Vanaprastha’ by retiring from his worldly life and living in the forest: “At sixty, one is reborn and enters a new janma” (175). But Narayan does not fail to provide an ironic touch here. Jagan who seemingly renounces his material possessions and asks his cousin to take charge of the sweet shop is shown carrying his cheque book with him, and the cousin is to render the monthly accounts correctly! Jagan’s renunciation can only be considered skin deep, a viable alternative to escape from the problems created by his wayward son Mali. As G.S. Amur points out, Narayan’s characters are controlled by values and ideas originating in their own culture, but their understanding of these values and ideas reveal a high degree of complexity (124).

The world is ‘maya’ or ‘lila’ as per the Hindu doctrine, and the various passions and attachments, quite illusory. It is this belief which helps Krishnan in *The English Teacher* overcome the unsurmountable grief at the death of his beloved young wife: “There are no more surprises or shocks in life….Nothing else will worry or interest me in life hereafter” (ET 96). The passive acceptance of fate associated with the Hindu doctrine of predestination offers consolation to the Narayan characters. Failure does not necessarily signify defeat at the personal level, rather it is tied to one’s fate and karma. In the cosmic scheme, the role of man is relegated to that of a puppet. And there is no great sense of tragedy as the ‘cycle’ of life does not end in ‘this’ world. In *The Financial Expert*, when the financial empire of the financial expert Margayya collapses, he remains unruffled. His son Balu is unable to handle the failure but Margayya is ready to go back to the banyan tree with his pen, trunk and ink bottle - his ancestral property, as he had done a decade earlier, for a fresh start: “I hope the tree is still there….anything may happen thereafter” (FE 218). Nagaraj in *The World of Nagaraj* is never bothered about anything which happens to himself or to others because he knows that he is powerless to change the course of actions in the universe. That which is to happen will happen after all. Though V. S. Naipaul vehemently criticises the Narayan characters for their karmic world view and their spirit of passive acceptance (qtd. in Dnyate 22) which is more like an act of deliberate withdrawal and inaction, it is this philosophy which pacifies the bereaved souls of Malgudi.

The Hindu philosophy of ‘Karma’, the universal law of cause and effect, refers to the totality of actions and reactions of an individual soul (*Atman*) in all his life cycles, determining the course of his life. Consequently, beneficial actions reap beneficial results whereas destructive or harmful actions, accumulated over the life cycles, bear negative results, rebounding in ‘this’ life or in the cycle of ‘rebirth’. Many Narayan characters are influenced by this concept of ‘karma’. Narayan’s award-winning novel *The Guide* portrays the story of Rosie the danseuse who soars to

fame on account of her artistic skills and Raju the tourist guide and conman turned to the spiritual guru of the place. Raju makes use of Rosie as a money minting machine by committing programmes after programmes while Rosie unquestioningly obeys. But when Raju is imprisoned for forgery, the comment that Rosie makes is significant: "I felt all along you were not doing right things. This is *karma*. What can we do?" (192). As every other Malgudian, Rosie too believes in the principle of cause and effect which directs the course of life and even the future existence of an individual. Similarly, in *The Vendor of Sweets*, when Jagan understands that his pampered and spoilt son Mali is arrested for carrying liquor with him, the loving father can only brood that a dose of prison life may benefit him, as Mali deserves it: "A dose of prison life is not a bad thing. It may be just what he needs now" (184).

In *A Tiger for Malgudi* too we find the concept of karma explained. When the tiger is captured and made part of Captain's circus team as Raja, he is put behind the bars and continuously starved and tortured to elicit from him the proper response. The master has an answer to this unwarranted suffering, which goes back to the cycle of 'samsara' and 'karma': "You probably in a previous life enjoyed putting your fellow-beings behind bars. One has to face the reaction of every act, if not in the same life, at least in another life or a series of lives. There can be no escape from it. Now you have a chance to realize how your prisoners must have felt in those days, when you locked them in and watched them day by day to measure how far you had succeeded in breaking their spirits" (48). Misdeeds in a previous life can follow one in the present life too.

In novel after novel, Narayan tries to portray the predicament of man in relation to the universe. But it is in *A Tiger for Malgudi* published in 1983 that he deals in detail the aspects of spiritual enlightenment, quite paradoxically, through the spiritual unfolding of a tiger! The crux of the Hindu philosophy gets explicated in the novel through Raja the tiger who gains an enlightened soul through his contact with his spiritual guru, the Master. In his introduction to the novel, Narayan explains the philosophy which prompts the Master to effect a transformation in the tiger: "In my story, the 'Tiger Hermit' employs his powers to save the tiger and transform it inwardly – working on the basis that deep within, the core of personality is the same in spite of differing appearances and categories….(10). It spells out his belief in 'Advaita Vedanta' which holds the 'Brahman' and the 'Atman' to be a part of the same whole. 'Brahman' or God is identical with the inner self or 'Atman' of each individual or being. All living creatures have a soul and they are all part of the Supreme soul. Or, 'Atman' or true self is not different from 'Brahman'. It is this 'knowledge' which liberates one from the clutches of the transient, illusory world perceived through the sense impressions, and leads to one's spiritual realization through "Moksha' or ultimate liberation.

We find the tiger in the novel asking such profound questions as "Who am I?" (12) in his quest for self-knowledge. The tiger speaks of the delusions of 'samsara' which afflicts all creatures including human beings, when he speaks about his misconceptions regarding familial bonds or even the concept of self. He had wrongly believed that his mother would always be there to look after him till one day when he found that he was all alone; and he had taken himself to be the Lord and Master of the universe till he was trapped and kept in a small cage by the humans. The vanity of life and worldly possessions is unmasked here. Truly, the Master says, "We come into the world alone, and are alone while leaving" (172).

The master leads the tiger on to his path of realisation by conversing about life, existence, death and God. It is the Hindu philosophy of 'Advaita Vedanta' that he stresses when he exhorts to the tiger that God is within everyone and everything. He is "the Creator, the Great Spirit pervading every creature, every rock and tree and the sky and the stars; a source of power and strength" (157-8). It is the same belief which makes him urge his followers not to prostrate at his feet: "You must prostrate only before God…. Even that I doubt, since the same God resides within all of us. When you address a prayer to God, you are only praying to yourself" (164).

The tiger attains 'knowledge' when he realizes that deep within, he is not different, only that his exterior is different; that God is within himself, not outside. The tiger's spiritual enlightenment is cue to the spiritual upliftment of every individual in search of liberation.

It is indubitable that through his Malgudi novels, Narayan is opening the repertoire of ancient India's spiritual knowledge to act as a beacon in the journey of one's self discovery. One of the pillars of Indian English fiction, R.K. Narayan, thus incorporates in his works the deepest Indian thoughts and philosophy, presenting us with a veritable spectacle of life.

Reference :-

1. Amur, G.S. "R.K. Narayan in His own Culture: An Approach to *The Vendor of Sweets*." *Explorations in Modern Indo-English Fiction*. Ed. R.K. Dhawan. New Delhi: Bahri Publications, 1982.
2. Dnyate, Ramesh. *The Novels of R.K. Narayan: A Typological Study of Characters*. New Delhi: Prestige Books, 1996.
3. Narayan, R.K., *The English Teacher*. Madras: Indian Thought Publications, 2003.
4. Narayan, R.K., *The Financial Expert*. Mysore: Indian Thought Publications, 1993.
5. Narayan, R.K., *The Guide*. Mysore: Indian Thought Publications, 1987.
6. Narayan, R.K., *The Vendor of Sweets*. Chennai: Indian Thought Publications, 2002.
7. Narayan, R.K., *A Tiger for Malgudi*. Chennai: Indian Thought Publications, 2003.

৯★cß

CASHLESS ECONOMY IN INDIA

Sukanta Mazumder*

ABSTRACT :- *Cash is like water, the basic necessity, without which survival is a challenge. Nevertheless, cash use doesn't seem to be decreasing all that much. One of the main reasons is that there is nothing to truly compete with the flexibility of notes and coins. This paper is a descriptive study in nature. The study is based on secondary sources of data/information. Here we highlighted the meaning and definition of cashless economy. Current position of cashless India. Advantages and disadvantages of cashless payment, especially in India. Finally we talk about the future prospects of cashless payment in India. And the conclusion at the last*

Keywords: *Cash, payment instruments, notes, coins, debit card, hackers, financial institutions, electronic currency, etc.*

INTRODUCTION:- Cashless economy is a situation in which the flow of cash within an economy is non-existent and all transactions are done through electronic media channels such as direct debit, credit and debit cards, and electronic clearing and payment systems such as Immediate Payment Service (IMPS), National Electronic Funds Transfer (NEFT) and Real Time Gross Settlement (RTGS). Today, credit cards and online payment services are becoming increasingly popular in urban India, paper currency notes are still an essential part of daily life. Cash may be defined as any legal medium of exchange that is immediately negotiable and free of restrictions. We are the fourth-largest user of cash in the world. The rate of cash to GDP is the highest, i.e. 12.42% in India. Cash in circulation to private consumption ratio in India is 20% and Card transactions account for 4% of the personal consumption expenditure. As most of people are illiterate, poor, engaged in small transactions and having less banking habits. For them cash is the most convenient and easy form of medium of exchange, free from hassles. A cash transaction is immediate and doesn't involve any intermediary. Cash provides individuals and families with liquidity. One needs not to worry about a computer system crashing, power going off, and losing transaction midway. Use of cash doesn't involve any extra cost as in the use of debit/credit cards. Even in the most cashless countries like France and the Netherlands, cash still accounts for 40% or more of all consumers transactions. Usually cashless economies have low corruptions and less black money. Almost every country is bracing towards cashless economy and many countries have made significant progress. It is just a world trend which India is trying to catch up.

Literature Review :- Ashish Das and Rakhi Agarwal, (2010) in their article, "Cashless payment System in India – A Roadmap" cash as a mode of payment is an expensive proportion for the government. The country needs to move away from cash based towards a cashless (electronic) payment system.

Jain,P.M. (2006) in the article, " E- Payments and e-banking" opined that e-payments will be able to check black. An analysis of growth pattern of cashless transaction system taking fullest advantage of technology, quick payment and remittances will ensure optimal use of available funds for banks, financial institutions, business houses and common citizen of India. He also pointed out the need for e-payments and modes of e-payments and communication networks.

Annamalai, S. and Muthu R. Liakkuvan (2008) in their article "Retail transaction: Future bright for plastic money" projected the growth of debit and credit cards in the retail transactions. They also mentioned the growth factors, which leads to its popularity, important constraints faced by banks and summarized with bright future and scope of plastic money.

---

* **Assistant Professor,Government Kamalanagar College, Mizoram. 796772**

SIGNIFICANCE OF THE STUDY:- This paper discusses about the current scenario of Cashless India after demonetization. It also strives to describe the focuses on the impact of devaluation on our economy, counterfeit currency and challenges towards cashless economy.

RESEARCH METHODOLOGY:-The paper is a descriptive study in nature. The study is based on secondary sources of data/information. Different books, journals, newspaper and relevant websites have been consulted in order to make the study an effective one.

OBJECTIVES:- Following are the objectives of the paper

1. To study the current position of Cashless India.
2. To understand the advantages of Cashless India.
3. To understand the disadvantages of Cashless India.
4. To suggest the future prospects of Cashless India.

MEANING & DEFINITION OF CASHLESS ECONOMY :- Cashless Economy can be defined as a situation in which the flow of cash within an economy is non-existent and all transactions must be through electronic channels such as direct debit, credit cards, debit cards, electronic clearing, and payment systems such as Immediate Payment Service (IMPS), National Electronic Funds Transfer (NEFT) and Real Time Gross Settlement (RTGS) in India. In a cashless economy most of the transaction will be done by digital means like e banking, debit and credit cards, PoS (point of sales) machines, digital wallets etc. In simpler words no liquid money or paper currency will be used by the people in a given country. In a cashless economy the third party will be in possession of your money. He will allow you to transact that money whenever it is needed. If it is not needed then the third party can use that money. Third party can be a government or any other public or private sector bank.

CURRENT POSITION OF CASHLESS INDIA :- As the banking system evolved, it became easier, safe and even remunerative to keep one's money in a bank account and it became still easier and safe to use 'transfer of money in bank accounts' for making payments for the economic transactions. This instrument was the cheque for a very long period.

With the developments in the information and communication technology, world over, different kinds of payment instruments and innovations in the instruments and the payment systems evolved. It happened in India too.

Today the condition of payments framework in our country is perhaps better than some of the advanced countries in terms of the variety and efficiency. Various types of payment instruments exist to meet the requirements of different users in different circumstances- bank accounts, cheques, debit and credit cards, prepaid payment instruments, etc.

The cash centric informal sectors like agriculture, real estate, etc., have been affected by demonetization. However the experts say that it's a short term scenario and this move will give positive long term consequences.

To bring the economy on track again, government is promoting cashless economy because scrapping of cash needs an alternative to cash.

India's black money has been estimated by the World Bank in 2010 to be worth about one fifth of the GDP. In a country where 90% transactions are carried out on cash basis it was a revolutionary move to transform from cash to cashless transactions.

Under this scheme, 250 million bank accounts have been opened in two years. As per RBI reports bank branches increased by 5% per year but ATMs, debit cards and card swiping machines have doubled in four years and online transactions have grown 20 times in nine years to 2019.

All these data shows a gradual shift towards cashless economy. Demonetization has speed up this transition. On the evening of 8th November 2016, the Prime Minister of India announced one of the boldest moves in the History of India's socio-economic scene- demonetization of old Rs.500 notes and Rs.1000. Soon after, new notes of Rs.500 and Rs.2000 were pumped into the economy.

There are many cashless payment options available in India. 5 best cashless payment options in India:

1) E Wallets- E wallets have become very famous now a day. After demonetisation, use of e wallets has been implemented at a very large scale.
2) UPI- UPI also known as Unified Payments Interface is another great way to go cashless Unified Payments interface also called UPI is system of payments.
3) Plastic Money: Plastic money means debit cards and credit cards that are used at ATM's for cash withdrawal and POS machines while shoping.
4) Net Banking: Net Banking is another handy way to get cashless transactions done.
5) Aadhar Card- Aadhar card enabled payment system allows a person to pay using his aadhar card if it is linked to his bank account. Once you link your card to your bank, you can make payments using your fingure prints.

ADVANTAGES OF GOING CASHLESS :-

1. **Saves Money and Time:** Companies and governments will get efficient and they can reduce costs as they no longer need the manual accounting work to be done. The costs associated with accounting and handling cash is very high.
2. **Less Cash Decreased Crimes:** Business and individuals can also avoid other costs as well. Theft often leaves a big hole in one's pocket. The risk of theft will continue until people carry cash and by going cashless the same can be reduced. This also leaves an impact on the government as they can then reduce the costs that the government spends on nabbing the culprits. In countries like the US, burglary and assault have dropped by about 10 % once the government shifted the payment made for social welfare to electronic transfer. The government, however, has to take measures to curb the online scam and identity theft incidents.
3. **Production Costs of Coins and Paper Currency are reduced:** Production of coins and paper currency is indeed an expensive endeavor and the life span of most of the paper currencies is about 6 years. So, by going electronic the cost of production gets reduced.
4. **Less Cash Means More Data:** The government can use the data coming from the cashless transactions to improve and analyze their policies. By using such data, officials can predict or identify the patterns of activity and use such information for urban planning for sectors like energy management, housing, and transportation.

In addition to this, going cashless also has health benefits. With physical currency, the chance of spreading of germs is more. Reducing the amount of use of paper currency will reduce the germ transmission.

DISADVANTAGES OF CASHLESS PAYMENTS :- Here are some of the problems which stand in the way of India becoming a cashless society:

1. **Cyber security:** In October 2016, the details of over 30 lakh debit cards were feared to have been exposed at ATMs. It was believed that the card and PIN details might have been leaked due to which customers were advised to change the PINs of their ATM-cum-debit cards. Stringent steps issuing new cards were also taken. Just a month later, the PM is motivating people to move to a cashless society. Is the cyber security in place? While a card is cloned, it takes several months to recover someone's hard-earned money from the banks. How can people be assured that swiping cards at small shops and vendors will not be a risk to revealing our card details?
2. **Network connectivity:** Since the day demonetization was announced, people are trying to use more of card transactions to save that dreaded trip to the bank and to save the last penny of the hard cash in hand. However, a sudden surge in card transactions has led to

connectivity issues. Several people have faced trouble while standing in line to pay for a transaction at a shop when the card machines have stopped working due to an overload on the network. Connectivity issues must be resolved before dreaming about a cashless society.

3. **Internet cost:** The internet cost in India is still substantially high. In order to convince people to do cashless transactions, the cost of the internet should be lowered and free Wi-Fi should also be provided at public places.
4. **Charges on cards, online transactions:** Heard of convenience charges? Of course, you would have if you do online transactions. These are additional charges that are levied by the vendors when they offer an online payment facility. But when the government is forcing us to go cashless, shouldn't this compulsory fee on online transactions be taken off?
5. **Non-tech-savvy:** While the new generation is glued to their phones and gadgets, computer literacy among the people in the over-50-age group is still low. Not many people are comfortable using computers or mobile phones and depend on their children. Before promoting a cashless society, efforts need to be taken to educate people on how to use phones for transactions.
6. **Smart phone affordability:-** Several companies have come up with new and inexpensive phones, but they still not affordable for most of the population in the country. More affordable options should be launched by the government for people to buy smartphones for cashless transactions.
7. **Infrastructure/phone battery:-** India still lacks when it comes to supporting a mobile society. It is extremely difficult to find a public charging point if the phone battery discharges. So what happens if you have cash in your wallet, but you are out of battery after travelling on the road for a day? Is there any alternative that we have then?
8. **Not enough bank accounts:-** Most people still do not have bank accounts. Most often there is just one account per family which also limits the number of cards people can have individually. A family of even four people cannot be dependent on just one card for all household expenditure.
9. **Internet blockage: -** States like Jammu and Kashmir often face crackdown where the internet is the first thing that is blocked. In such circumstances, neither is it possible to use cards for transactions nor is it possible to use e-wallets. Any alternatives there?
10. **Are banks ready? : -** A cashless society needs a proper infrastructure. The banks need to be fully equipped to handle the surge in e-transactions. Infrastructure is also needed in terms of opening more accounts in the banks.
11. **Encourage people to spend :-** Spending by cards often encourages people to spend more giving cash by hand helps people keep a check on their expenses but paying by cards gives people a free hand. Not just through credit but even the debit cards give that impression that you can make that payment immediately.

A cashless society is a welcome idea but not without preparation. There is a precursor to taking such steps without which a move such as this would be more harmful that being beneficial. A cashless society, for now, seems like a distant dream but a less cash society can be appreciated.

FUTURE PROSPECTS OF CASHLESS PAYMENTS IN INDIA :- Smooth, simple and secure payment processes will help to bring about behavioural changes and faster adoption of digital payments and banking among un-banked segments. When new players enter the market, each with a slightly different take on the market and with differing business models, the increased competition will help the environment and offer more options for consumers to choose from. A larger pie with more players is definitely good for the changing dynamics of the payments industry, which is still nascent in India. Indian consumption is still dominated by cash, with cards contributing only 5 per cent of the personal consumption expenditure. In developed countries, 30-

50 per cent of spends happen through cards. So there is huge growth opportunity. The rapid growth of smartphones, Internet penetration and e-commerce is complementing these; card payment volumes have been growing. We expect this trend to continue, aided by the continued increase in debit card activation and usage.

Intense competition and strategic collaboration among existing and new market participants like the payments and small banks and wallets will help scale up acceptance and foster more creativity, innovation and consumer choice. The credit card industry in India sees greater acceptance among consumers now a days. According to Worldline India Card Payment Report 2014-15, the credit card base grew at 9.8 per cent in the past year. Worldline India is a leader in the payment and transactions services in the country. Alternative methods like mobile wallets and prepaid cash cards accounted for 3 per cent of digital transactions. This industry has been growing steadily over the past few years. Card transactions, both by debit and credit cards, are on an upward trajectory. There are interesting dynamics at play in the Indian payments industry.

CONCLUSION :- The government needs to take the necessary steps and make some policy considerations when they are preparing for a cashless economy. The payment systems have to be protected from the cyber-attacks which are the major threat for cashless transactions. Also, the government should be able to serve the under banked as well. Everyone from the society should have access to an electronic system that they can use for such transactions. Government should take measures to increase liquidity into the system so that people face less inconvenience. Government should also try to improve overall infrastructure so that more and more people can come into banking net and internet. Society has also to play its part. They have to understand the importance of cashless economy and appreciate measures taken by the government. As a conclusion, it can be said that going cashless provides a lot more benefits than just convenience to people, businesses and the government in particular.

REFERENCES :-

1. Mazumder, Sukanta (2017), “Demonetization: impact on cashless payment system” , in ‘Tradition and Modernity in Pre-colonial, colonial and post-colonial times’, edited by Sanjeev umar Dey , Publication cell Department of Hindi Government amalanagar College. Pp.105-108
2. Kumar Piyush, Vol.3, Issue 9, Sep.2015, “An analysis of growth pattern of cashless transaction system” Impact Journals, P. 37-44.
3. Kaur Manpreet, Vol. No. 6, Issue No. 01, January 2017, “Demonetization: Impact on cashless payment system” International Journal of Science Technology and Management. P 144-149.
4. Jain Dr Meenu(2014) , “Globalization and Social Transformation: Indian Experience Research Process” , Social Research Foundation. pp.120-131
5. Jain Dr Meenu , (2015) , “Structural Change in the Course of Economic Development ; India’s experience” , Vol.5 issue 5 , pp 15-17 Indian Journal of applied Research Journal
6. Ferguson, Niall (2012). “The Ascent of Money: A Financial History of the World”. The Penguin Press,New York

WEBSITES :-

a. www.google.co.in
b. https://en.wikipedia.org/wiki/Cashless_Transaction_(India)
c. http://www.livemint.com/Opinion/XGbavEnoeP7dZITeh21MRM/Making-India-a-cashlesseconomy.
d. http://www.thehindubusinessline.com/opinion/editorial/cashless-india-editorial/article9386837.ece
e. **www.livemint.com**

೫★೧೩

Women's Economic Empowerment through Self-Help Groups: A Study of Two Districts in Assam

Dr. Rahul Sarania*

ABSTRACT :- Women's economic empowerment is viewed as a precondition for sustainable development, pro-poor growth and the achievement of all the Millennium Development Goals (MDGs). Self-help groups (SHGs) as vehicle of microfinance service delivery in rural India have emerged as effective strategy for women's empowerment and poverty reduction through collective action. This paper examines whether the SHGs functioning in rural areas of Baksa and Udalguri districts of Assam are effective or not to improve economic empowerment of the group members. For this, primary data are collected in 2018 from 240 women members of SHGs through interview method using interview schedule. Empirical findings revealed that empowerment indicators, namely, monthly income, monthly savings and economic assets of women's households had increased significantly after joining SHGs. This provided the evidence that the SHGs had enabled women members to improve economic empowerment level substantially in the rural areas. Hence, any problems faced by the SHG members need to be resolved immediately to sustain their group functioning for long period.

Key Words: Women, Economic Empowerment, Self Help Groups, Economic Assets, Poor, Assam.

Introduction

Swami Vivekananda quoted, "There is no chance for the welfare of the world unless the condition of woman is improved. It is not possible for a bird to fly on only one wing". The quotation rightly demonstrates that any society that ignores the increased role of women cannot progress in development, peace and prosperity successfully. In essence, no society can move towards the development path sustainably without increasing and transforming equitable opportunities, resources, and life prospects for men and women so that they have equal power to shape their own lives and contribute to their families and communities (USAID, 2012). Women's economic empowerment through participation in economic activity is vital to strengthening women's rights and enabling women to have control over their lives and exert influence in society (OECD, 2011). The United Nations Secretary-General's High-Level Panel on Women's Economic Empowerment strongly deliberated that the 2030 Agenda on Sustainable Development Goals (SDGs) and its SDGs will not be accomplished if there is no accelerated action to empower women economically. Women's economic empowerment is at the heart of the 2030 Agenda (UN Secretary General's High Level Panel on Women's Economic Empowerment, 2016).

To empower women economically, a number of schemes and development interventions have been implemented across the developing economies including India. The most popular

* **Assistant Professor & Head, Dept. Of Economics, Radhamadhab College, Silchar, Assam-788006, India.**

development intervention, inter alia, that stimulates gender equality and women's economic empowerment is the Self-help group (SHG) programmes that emerged in the 1990s in South Asia, particularly in India (Jakimow and Kilby 2006). The organization of women into Self-help groups (SHGs) is a noble initiative in India for the upliftment and welfare of the women in the society. SHGs are defined as self-governed and peer-controlled associations of ten to twenty people (mainly women) who come forward together for self-help and strengthening their financial security to solve their common problems. The government of India started empowering women economically through formation and skilling of SHGs and providing subsidy and collateral free loan to promote self-employment and income generating activities in rural areas through a number of schemes such as Swarna-Jayanti Gram Swarozgar Yojana (SGSY) and National Rural Livelihoods Mission (NRLM), etc. and this movement gained momentum after 1992 when National Bank for Agriculture and Rural Development (NABARD) started promoting it. Now-a-days, SHGs are the most important vehicle used by Non-Government Organizations, the government, and even the private sector, for social, political and economic empowerment of women in India (Desai & Joshi, 2014; Kumar, 2019).

Like any other part of India, SHGs are functioning in large quantity in villages of Baksa and Udalguri districts of Assam, located in North-East India. They are hypothesized to be playing an important role in enabling financial inclusion and empowering women economically and socially within the family and in local community in these areas. Therefore, the present study is undertaken to examine empirically the effectiveness of SHGs in empowering women in economic aspects of life in these areas. The empirical study also attempted to unveil various problems faced by the SHG members in functioning their SHGs and suggestions are put forwarded for policy purpose.

Review of Literature

A number of empirical studies estimated the role of SHGs on women's economic empowerment in South Asia and other developing countries. Brody et al. (2016) provided a systematic review of self-help group programmmes in South Asia and other developing countries where they revealed positive effects of women's SHGs on economic and political empowerment, women's mobility, and women's control over family planning with the exception of psychological empowerment. The study further indicated no adverse consequences of SHGs on domestic violence and suggested that the positive effects of SHGs on empowerment run through mechanisms that are associated with familiarity in handling money, independence in financial decision-making, solidarity, social networks, and respect from the household and other community members. Kumar, et al. (2019) suggested the evidence that SHG members had wider social networks and greater mobility as compared to non-members and that they were more politically engaged, and more likely to know of certain public entitlements than non-members, and were significantly more likely to avail of a greater number of public entitlement schemes in India.

Puhazhendhi & Satya Sai (2000) in rural India revealed that microfinance programme had improved economic and social empowerment of the rural poor women in the post-SHG situation. Another study conducted by ICICI Bank and UNDP (2002) in India concluded that although microfinance projects were not able to reach the poorest of the poor, they were successful in building savings, reducing migration in search of employment, bringing gender issues on the common platform and reducing economic vulnerability and dependence on moneylenders (ICICI

and UNDP, 2002). A study carried out by Bansal, (2011), in Punjab, India showed that microfinance programmes increased income of the SHG members and their household which, in turn, empowered women economically, socially, psychologically and politically in rural Punjab. In West Bengal of India, Sharma, et al. (2012) revealed the potential role of the SHG strategy in women's economic activities and improved level of participation in decision-making process in domestic issues and group activities, while, Basargekar (2009) revealed strong relationship between micro entrepreneurship and economic empowerment suggesting utilization of micro-loans for productive economic activities had a strong bearing on economic empowerment as well as overall empowerment of women. Some other case studies by, for example, Mula and Sarkar (2013) in West Bengal, Reji (2013) in Kerala, Fernando and Azhagaiah (2015) in Pondicherry indicated significant positive impact of SHGs-led microfinance on economic empowerment of women after joining SHGs. However, Cheston and Kuhn (2002) did not find that SHG microfinance programme addressed all the barriers to women empowerment; yet it found positive impact on women's increased self-confidence and self-esteem and participation in decision making in girl's education, family planning, improved status and gender relations in their houses, etc. in the context of India.

A brief literature review above seems to appear a significant role of SHGs and microfinance programmes on women's development and economic empowerment in India. However, India is a diverse country and therefore considering its different socio-economic and cultural milieu, a micro-geographical and locational research is imperative to have clear understanding of ground reality for perspective of policy implications towards women development in backward areas. This study therefore investigates the effectiveness of the SHG strategy on the economic empowerment of women, specifically in Baksa and Udalguri districts of Assam, located in North-Eastern Region of India.

Objectives of the Study

The specific objectives of the study are as follows,

1. To assess the impact of the SHGs in enhancing the economic empowerment of women in the study area.
2. To identify the constraints faced by women SHG members.
3. To make suggestions for enhancing empowerment of women by removing constraints by them.

Research Methodology

The study is an empirical one using both primary as well as secondary data. The empirical research was based on the field survey, conducted during July to November months of 2018, of randomly selected 240 SHG members belonging to different SHGs spread over 35 villages in Baksa and Udalguri Districts of Assam, located in North-east India. The primary data were collected through structured interview schedule using face-to-face interview method while secondary data were collected from District Rural Development Agency (DRDA) of respective districts, Block offices, Journals, Books, etc. The analysis of secondary data involves a comprehensive literature review of journal articles, books, magazines etc.

To analyse the impact evaluation of SHG programmes on women's economic empowerment, a comparison of women members status 'before joining' and 'After joining' is performed in terms of monthly income, monthly savings and Assets position. The following null hypothesis (H_0)

against the alternative hypothesis (H_1) is tested to examine the effectiveness of SHGs on empowerment indicators.

H_0: There is no significant difference in the status of women members in terms of economic empowerment indicators between 'before joining SHGs 'and 'after joining the SHGs' situation.

H_1: There is a significant difference in economic status of women between the situation of 'before joining SHGs' and 'after joining the SHGs'. To test the null hypothesis against alternative hypothesis, a paired sample-t test was applied. The analysis were presented in tabular method using mean and simple percentage and also demonstrated in diagram.

Results and Discussion

Demographic Profile of SHG members

The personal profile of SHG members is summarized in table-1 in terms of average age, household size, agricultural land and educational level of women members. It has been observed that mean age of the members is 45.8 years with minimum 28 years and maximum age of 63 years. The average size of household is about 4 persons with minimum of 2 members and maximum 13 members. Agricultural land per family is 3.57 bigha (1 bigha=0.3306 acre) ranging from 0 bigha to 15 bighas. The mean educational qualification of SHG members is 4.82 ranging from illiterate to higher secondary level.

Table-1: Demographic Profile of SHG members

Particulars	**N**	**Minimum**	**Maximum**	**Mean**	**Std. Deviation**
Age	240	28	63	45.81	6.30
Household size	240	2	13	4.28	1.31
Agricultural land	240	.00	15.00	3.57	2.78
Education level	240	0	12	4.82	3.91

Source: Primary data

Effect of SHGs on Monthly Income, Savings and Assets (Economic Empowerment Indicator)

The level of income is a crucial indicator of socio-economic status of an individual or family. Women's involvement in SHGs leads to generation of additional income earned through self-employment opportunities in various micro-enterprise such as livestock rearing, handloom and weaving, sericulture (eri/muga reeling), pickle making and handicraft industry activities, etc. and enabling to support their family economically (Field Survey). Likewise, SHGs promotes the habit of saving among the poor women that can act as the substitute of insurance against risk and exigency where social safety nets are hardly ever existent for the poor. In addition, SHGs help in creating economic assets among poor women members involved in productive activities thereby improving overall socio-economic status of women in all spheres of life. The following table-2 shows the field survey results that, on average, monthly income of women members has

increased by Rs.1213.25/-, monthly savings increased by Rs.66.81/- and assets position improved by Rs.5806.72/- in the post-SHG period (Table 2). This is because majority of SHG members were not earning anything before joining the groups since they were mostly house wives and dependent on their family income. But, this scenario is completely reversed after joining the SHGs, and started earning reasonably and save for accumulation of further income increases. The SHG members became economically independent, contributed their income to their household income and purchased household assets. Figure 1, 2 and 3 depicts the empowerment scenario of women before and after joining the SHGs, indicating improvement in all the three indicators.

Table 2: Average Changes of Economic Variables in Women Members before and After joining the SHGs

Economic Indicators	***Before Joining***	***After Joining***	***Mean Difference***
Monthly Income	425.50	1638.75	1213.25
Monthly Savings	6.48	73.29	66.81
Assets Position	5868.06	11674.78	5806.72

Source: computed from primary data

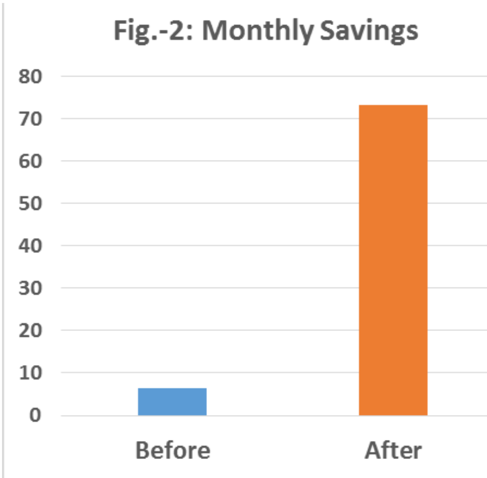

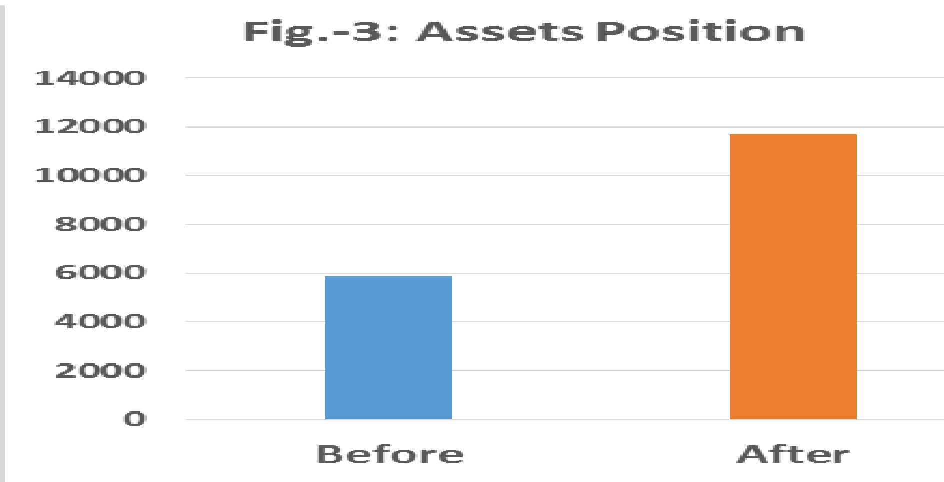

Whether there is significant difference or not before and after joining the SHGs in changes of women's empowerment indicators, to check it, a paired sample t-test was applied. The null hypothesis (H0) was that no significant differences exists in the status of economic empowerment of women in terms of monthly income, monthly savings and Assets position before and after joining the SHGs. Table 2 specifies the results of paired t-tests and reveals that the economic empowerment of women members has increased significantly after joining the SHGs in respect of monthly income, monthly savings and value of assets. The results of paired t-tests for all the indicators have come out to be significant at 1 percent level.

Table-2: Results of Paired t-test for Economic differences in SHG Members

Economic Indicators	***Mean Difference***	***Std. Deviation***	***t-value***	***df***	***Sig. (2-tailed)***
Monthly Income (Rs.)	1213.25	649.38	-28.944*	239	.0001
Monthly Savings(Rs.)	66.81	649.38	-25.000*	239	.0001
Assets Position (Rs.)	5806.72	3267.53	-27.531*	239	.0001

*Source: computed from primary data; *Significant at 1% level*

Problems faced by SHGs in their functioning

During the field survey, it was found that the SHGs have been functioning well relating to group quality indicators such as conduct of meeting, regular attendance in the meetings, maintenance of records and accounts, etc. But they are facing a lot of problems such as financial, training and marketing problems, etc. The following table-3 enumerates the common problems faced by the SHGs in the study area.

Table-3: Problems encountered by SHGs in their functioning

Sl. No.	**Types of Problems**	**No. of Members**	**percentage**
1	Lack of Education of members	221	92.08
2	Poor economic condition of members	218	90.83
3	Lack of skill development training	209	87.08
4	Lack of proper guidance from administration	208	86.67
5	Insufficient Amount of Loan	203	84.58
6	Good leadership problem	191	79.58
7	Lack of marketing facility	150	62.50
8	Low price of product	140	58.33

Conclusion and Suggestions Based on the findings of the study, it can be concluded that the organisation of women into SHGs and provision of microfinance through them could be an

effective strategic instrument for economic empowerment of women in the study area. It was observed that members of SHGs have undertaken various micro-enterprise activities at a smaller level with investment of minimum capital and contributed their increased income to their family which increased their status in the society and become an integral part in the family decision making processes and also for the community. However, the prospect and sustainability of SHGs ultimately depends on their graduation towards sustainable microenterprise development for generating enhanced income to improve the living standard of its members. Since the members of SHGs belong to the poor and weaker sections of the society, the problems encountered by them should be urgently resolved so that they can continue as viable SHGs for a long period of time.

References :-

1. Basargekar, P., (2009). How Empowering is Micro Entrepreneurship Developed through Microfinance? Asia-Pacific Business Review Vol.-V, No.-1, pp. 32-41.
2. Brody, C., Hoop, T. de, Vojtkova, M., et al. (2016): Can self-help group programs improve women's empowerment? A systematic review, Journal of Development Effectiveness, Vol.-9, Issue-1, pp. 15-40, DOI: 10.1080/19439342.2016.120660.
3. Cheston, S. and Kuhn, L., (2002), "Empowering Women Through Microfinance", Published by UNIFEM for Microcredit Summit 2002.
4. Desai, R. M. and Joshi, S. (2013). Collective Action and Community Development: Evidence from Self-Help Groups in Rural India, The World Bank Economic Review, pp.1–33, doi:10.1093/wber/lht024
5. Dr. Reji, (2013), "Economic Empowerment Of Women Through Self Help Groups In Kerala", International Journal of Marketing, Financial Services & Management Research, Vol.2, No. 3, pp.97-113
6. Fernando, R. R. A. and Azhagaiah, R. (2015). Economic Empowerment of Women through Self Help Groups, Pacific Business Review International, Vol.-8, Issue- 5, pp.91-98.
7. GOI, 2015, Report of the High level Committee on the Status of Women in India, 2015, Ministry of Women and child Development, Govt. of India
8. ICICI and UNDP (2002). Social Mobilization, Credit and women's empowerment, Report of the workshop organized by UNDP and ICICI Bank on 10th and 11th January, 2002.
9. Jakimow, T. and Kilby, P. (2006). Empowering Women: A Critique of the Blueprint for Self-help Groups in India, Indian Journal of Gender Studies, Vol.-13, No.-3, pp.375-400.
10. Kumar N., Scott S., Menon P., et al. (2018). Pathways from women's group-based programs to nutrition change in South Asia: A conceptual framework and literature review. Global Food Security, Jun;17, Global Food Security, 17 pp.172–185, DOI: 10.1016/j.gfs.2017.11.002.,
11. Kumar, N., Raghunathan, K., Arrieta A., et al. (2019). Social networks, mobility, and political participation: The potential for women's self-help groups to improve access and use of public entitlement schemes in India, World Development, Vol.-114, pp. 28–41.
12. Mayoux, L. (2006). Women's Empowerment through Sustainable Microfinance: Rethinking 'Best Practice', DISCUSSION DRAFT, Gender and micro-finance website: http://www.genfinance.net and http://lindaswebs.org.uk
13. Meena M. S.; Jain, D. and Meena, H.R. (2008). Measurement of Attitudes of Rural Women Towards Self-Help Groups, Journal of Agricultural Education and Extension, Vol.-14, No.-3, pp.217-229.
14. Mula G. and Sarkar, S. C., (2013), "Impact of Microfinance on Women Empowerment: An Economic Analysis from Eastern India", African Journal of Agricultural Research, Vol-8, No-45, pp.5673-5684
15. OECD, (2011). Women's Economic Empowerment, DAC Network on Gender Equality (GENDERNET), Issue Paper, April, 2011.
16. Puhazhendhi, V.; and Satyasai, K.J.S. (2000), Micro Finance for Rural People: An impact evaluation, Microcredit Innovations Department, National Bank for Agriculture and Rural Development, Mumbai.
17. Sharma, A.; Roy, B. and Chakravorty, D. (2012). Potential of Self Help Groups as an Entrepreneur: A Case Study from Uttar Dinajpur District of West Bengal, Journal of Social Sciences, Vol.- 30, Issue-1. Pp. 83-87.

AMITAV GHOSH AS A POST MODERN NOVELIST

P. Malathi*
Dr. N. Ramesh**

Abstract :- Post modernism is a word used to characterize varieties in ways individuals think; especially the way they see truth and reality. Postmodern in Indian English literature finds fragmentariness in portrayal and character structure uniquely in contrast to its British or American supplement. Amitav Ghosh is one among the post modernists. Amitav Ghosh is one the most striking writers of the postmodernism time. He exceeded expectations in this time with his pattern of enchantment authenticity. *The Shadow Lines* is a story told by an anonymous narrator in memory. Amitav Ghosh, one of the postmodernist novelists in English is colossally affected by the political and socialized region of post autonomy period. Being a social anthropologist and enterprising voyager, he depicts the present situation that has inundated the world. To postmodernists like Ghosh, national boundaries, traditions and customs are an impediment to human communication. Nationalism brings forth wars. Along these lines, they talk for globalization. Ghosh, being a wandering cosmopolitan, his novels minutely and legitimately depict multinational concerns. In *The Shadow Lines and The Glass Palace*, Amitav Ghosh makes his characters to take their own particular stand and avow their perspectives which result in some cases into agreeable connections while numerous different circumstances into discordant ones.

Keywords: Postmodern, Portrayal, Authenticity, Nationalism, Multinational

Introduction

Modern and postmodern literature represents a break from 19th century realism. But basically Post modernism is a reaction against modernism. It gives voice to insecurities, disorientation and fragmentation. In character development, both modern and postmodern literature explore subjectivism, turning from external reality to examine inner states of consciousness, in many cases drawing on modernist examples in the "stream of consciousness" styles of Virginia Woolf and James Joyce, or explorative poems like *The Waste Land* by T. S. Eliot. Post modernism is a reaction against the modernist and the 'Anti-modernist' tendencies which have psychological and intellectual impact. In America and France post-modern literature emerged as a genre. Post-modernist writers break away from all the rules and seek alternative principles of composition conforming to their content of existentialist thought.

Postmodern in Indian English literature explores fragmentariness in narrative - and character -construction in a different way from its British or American counterpart. In post modernism, there is a preoccupation with insecurities in the existence of humanity. The picture of life delineated by them accommodates meaninglessness, purposelessness and absurdity of human existence through the employment of devices such as Contradiction, Permutation, Discontinuity,

* **Ph.D Research Scholar in English (Part time), Periyar University Constituent College of Arts and Science, Pappireddipatti, Dharmapuri (Dt), Tamilnadu.**
** **Assistant Professor in English, Periyar University Constituent College of Arts and Science, Pappireddipatti, Dharmapuri (Dt), Tamilnadu.**

Randomness, Excess, and Short Circuit and so on. Post-modernist literature manifests chaotic condition of the world. Post modernism of Indian English literature is, however, different from that of England or Europe which rejects western values and beliefs as only a small part of the human experience and rejects such ideas, beliefs, culture and norms of the western.

Amitav Ghosh as a practitioner of post modernism in novels focuses entirely on the colonialism's impoverished, and usually non-white, victims. They are given the central position, not the white masters. Amitav Ghosh took nearly three and a half years to write the second book of his *Ibis* trilogy. Amitav Ghosh's writing deals in the epic themes of travel and diaspora, history and memory, political struggle and communal violence, love and loss, while all the time crossing the generic boundaries between anthropology and art work.

Both his fictional and non-fictional narratives tend to be transnational in sweep, moving restlessly across countries, continents and oceans. Formidably learned and meticulously researched, there is something equally epic about the scale of scholarship that sits behind each of his books. However, Ghosh never loses sight of the intimate human dimension of things. It is no coincidence that his writing ritually returns to Calcutta (the author's birth place), and, for all its global ambition, is thickly accented by the registers and referents of Bengali and South Asian culture.

Ghosh's first novel is typical in this sense. At the centre of *The Circle of Reason* (1986) is Alu, an eight-year-old Bengali boy with a huge head, "curiously uneven, bulging all over with knots and bumps". These bodily deformities, along with the series of coincidences and connections that emerges between Alu's personal life and the political world around him, have led to obvious comparisons with Rushdie's Booker of Bookers, *Midnight's Children*. However, this is in some ways unfortunate as the novel has its own integrity and ambition, from its philosophical exploration of reason to its peripatetic wanderings across South Asia, North Africa and the Middle East. Ghosh's beautifully written second novel, *The Shadow Lines* (1988), is also reminiscent of Rushdie in terms of its formal experimentations with geography and chronology. However, unlike Rushdie, it is written in an understated, condensed prose that comes close to poetry. The novel deals with the invention of the past and the arbitrariness of partition as it moves between India and the UK, Calcutta and London, the Second World War and present. The title is an allusion to Joseph Conrad's novella, *The Shadow Line*, and while its precise relationship to Conrad's text is oblique and shadowy, both share a preoccupation with the threshold between East and West, and with the ghostly hauntings of imperial memory. More generally, Ghosh's second novel draws inspiration from diverse modern European and Indian texts from Proust to Tagore, Ford Madox Ford to Satjajit Ray.

Even this sort of promiscuous intertextuality comes to appear tame and provincial within the context of Amitav Ghosh's work, *In An Antique Land* (1992). Ostensibly a work of non-fiction, the book draws heavily on the author's training in anthropology, but ultimately defies generic pigeon holes. Combining autobiography, fiction, travel writing and history, *In An Antique Land* is a delicate, vivid and deeply moving evocation of Egypt since the twelfth century.

The strong emphasis on history, memory and the past that has by this stage become a trademark of Ghosh's writing is given a fresh twist in his next book, *The Calcutta Chromosome* (1996), a work of science fiction set in the near future. Ghosh's flirtation with the popular genre of the thriller in *The Calcutta Chromosome* marks a radical departure from the various sorts of archive fever and scholarly self-consciousness that readers typically associate with the author.

When Antar, an office worker in New York, discovers a discarded ID card, it leads him on an investigative journey to Calcutta at the close of the nineteenth century. However, beneath this thin veneer of pulp, is a novel with as intricate a plot line as anything in Ghosh.

Out of six novels, all the novels are quintessential postcolonial novels. Post-colonial criticism has become academically compelling criticism. Post-colonial theory explores the textual criticism of post-colonial literatures. Frantz Fanon's *Black Skin White masks* (1952) and *Wretched of the Earth* (1967) and *Edward said Orientals* (1978) and *Culture & Imperialism* (1993) are considered to be the promulgators of Post-colonial criticism. These seminal works have strongly recommended the reclamation of the past of colonized nations only to subvert the hegemony of the colonial nations. Bill Ashcroft, Gareth Griffith & Helen Tiffin's *The Empire Writes Back* (1989) with a broader cultural circumscription of all the colonized nations provided a strong base for post-colonial criticism. This is further continued and consolidated by Gayathri Spivak Chakravarthy In Other Worlds: Essays in *cultural Politics* (1988), Homi K.Babha's *Nation and Narration*(1990) and *Location of Culture*(1994).These works have interrogated the identities of colonialism. The concocted colonial identities of Nation, Nationality, and National representations are interrogated and the male cantered perspectives are demolished. All the six novels that examined for the article engage in the critical negotiation of past history by Amitav Ghosh. The presentation of past history is with ambiguity. The ambiguous nature of past history has revealed the dichotomy of the past history as glorious and inglorious which interface fiction. The usable past becomes the glorious past and the unusable past becomes the inglorious past.

In Amitav Ghosh's novels, there is a *colorful array of seamen*, convicts and laborers sailing forth in the hope of transforming their lives. Apparently it seems that the characters are his targets. The Brits whom he depicts are basically scheming, perverse and ruthless to a man, but Ghosh has portrayed them not as round characters that grow. They are largely caricatures.

At the end of *The Sea of Poppies*, the clouds of war were seen looming, as British opium interests in India pressed for the use of force to compel the Chinese mandarins to keep open their ports, in the name of free trade. Symbolically, the novel thus ends amidst a raging storm, rocking the triple-masted schooner, the Ibis. In *The Glass Palace*, Amitav Ghosh narrates the havoc caused by Japanese invasion in Burma and its effect on the Army officers and people. He creates a sense of dejection that deals with so much human tragedy, wars, deaths, devastation and dislocation. Ghosh penned the story of sacrifice in *The Shadow Lines*, The rescue of May from Muslim mobs in the communal riots of 1963-64 in Dhaka is indeed a great sacrifice.

Amitav Ghosh expressed a developing awareness of the aspirations, defeats and disappointments of the colonized people. In *The Hungry Tide*, Ghosh routes the debate on eco-environment and cultural issues through the intrusion of the West into East. The destruction of traditional village life in *The Circle of Reason* is an allegory about the modernizing influx of western culture and the subsequent displacement of non-European peoples by imperialism. In *An Antique Land*, contemporary political tensions and communal rifts were delineated with the post-modernist approach. Postcolonial migration is yet another trait of postmodernism and it is a theme in *The Hungry Tide*, - the ruthless suppression and massacre of East Pakistani refugees who had run away from the Dandakaranya refugee camps to Marichjhampi as they felt that the latter region would provide them with familiar environs and therefore a better life. In *Sea of Poppies*, the indentured laborers and convicts are transported to the island of Mauritius on the ship Ibis where they suffer a lot.

In *The Glass Palace*, Burmese Royal family, after the exile, lives an uncomfortable life in India. Rajkumar who piles heap of amount in Burma is forced to leave his home and business due to Japanese invasion. He spent several weeks in Guangzhou and learnt some Cantonese to depict the background of the novel which is set in Fanquit town. Most of the action occurs in Guangzhou. Like the *Sea of Poppies*, the novel which deals with opium trade in China is also not a single linear. Like Lawrence Durrell's Alexandria Quartet, the relationship between *Sea of Poppies* and *River of Smoke* is a 'tangential one' as Amitav Ghosh himself describes it. The mash-up of fact and fiction works, coalescing into a narrative shaped by cataclysmic historical events but inflected with small-scale personal drama beautifully works here in the novel.

Conclusion :- Amitav Ghosh, one should travel beyond the paradigms of Commonwealth literatures. In fact, the classification of Commonwealth has become conventional on the lines of mainstream literatures. One should sincerely acknowledge the contribution of Amitav Ghosh in saving the literature of Commonwealth countries from becoming pedantic and pedagogic. Ghosh is responsible for bringing in the continental themes such as immigration, revision history, anthropology, sociology and the disciplines of knowledge. It is with the scholarly intervention of Ghosh, there has been a great change in the very perception of the disciplines that formulate and influence the evolution of the society. He has diverted the attention of the literature of the third world, from being occupied with problems of discrimination inflated by colonialism. As a result, there is a shift from African, Caribbean, Latin American, South African literatures to South Asian literatures. It is only with the scholarly excavation of Ghosh, the entire history of Colonial history of South Asia is being redrawn and reassessed from the socio literary telescopic reflection of Ghosh. Postmodernism, not having concrete definition yet is a blooming and ongoing area. Even if it has its own features, it is very difficult to concretize these solid elements. Thus, this paper remains an attempt to apply the post-modern theory to Amitav Ghosh's novels.

References :-

1. Carr, E.H. *What is History*? U.K. Penguin Books 1973-55. Print.
2. Ghosh, Amitav: *Dancing in Cambodia*, At Large in Burma. New Delhi: Ravi Dayal, 1998. Print.
3. *The Glass Palace*. New Delhi: Ravi Dayal. 2000. Print.
4. *Sea of Poppies*. Ravi Dayal, Penguin Viking, 2008. Print.
5. Ghosh, Amitav. *The Calcutta Chromosome: a Novel of Fevers, Delirium and Discovery.*
6. Ravi Dayal Publisher & Penguin Books,2011.
7. Paranjape, Makarand R. *In Diaspora: Theories, Histories, Texts* New Delhi: Indialog Publications, 2001. Print.
8. Singh, Upinder. A *History of Ancient and early Medieval India: From the Stone Age to the 12th Century*. Pearson Education, 2008.

POST COLONIAL POLITICS IN ROHINTON MISTRY'S NOVELS

K. Kannadasan*
Dr. N. Ramesh**

Abstract :- Post colonialism is the academic study of the cultural legacy of colonialism and imperialism, focusing on the human consequences of the control and exploitation of colonized people and their lands. Post colonialism is a critical theory analysis of the history, culture, literature, and discourse of European imperial power. Post colonialism examines the social and political power relationships that sustain colonialism and neocolonialism, including the social, political and cultural narratives surrounding the colonizer and the colonized. This approach may overlap with contemporary history and critical theory, and may also draw examples from history, political science, philosophy, sociology, anthropology, and human geography. Rohinton Mistry migrated to the West Canada in 1975 at the age of 23. He worked as a clerk at the Imperial Bank of Commerce in Canada after moving there with his wife. "Mindless, clerical work," says Mistry about his stint at the bank. A Parsi Gujarati writer of Indian origin, to overcome this dreariness, he joined the University of Toronto to study English and Philosophy part-time. His first short story "*One Sunday*" won the Hart House literary award. 1975.He is among the few contemporaries who have written from his place of migration about India, its political scenario, regional identities, subalterns, history, cultural pluralism, gender among others. This paper deals with the post colonial politics in his second and most famous novel, *A Fine Balance* published in the year 1995. Rohinton Mistry's Indo-nostalgic novels, deal with the dark and grim side of life. *A Fine Balance* set in 1975 against the back drop of Bombay vividly explores the State of Emergency between 1975 and 1977 as well as the hideous and adverse effect it had on the common man.

Keywords: Migrate, University, Philosophy, Subaltern, Gender, Emergency

Introduction :- A post colonialism or postcolonial study is an academic discipline that analyzes, explains, and responds to the cultural legacy of colonialism and imperialism. Post colonialism speaks about the human consequences of external control and economic exploitation of a native people and its lands."Postcolonial literature is a body of literary writings that reacts to the discourse of colonization. Post-colonial literature often involves writings that deal with issues of de-colonization or the political and cultural independence of people formerly subjugated to colonial rule.

Postcolonial literature, specifically those coming out of Africa, the Middle East, and the Indian Subcontinent, we meet characters who are struggling with their identities in the wake of colonization, or the establishment of colonies in another nation. For example, the British had a colonial presence in India from the 1700s until India gained its independence in 1947. As you can imagine, the people of India as well as the characters in Indian novels must deal with the economic, political, and emotional effects that the British brought and left behind. This is true for

* **Ph.D Research Scholar in English (Part time), Periyar University Constituent College of Arts and Science, Pappireddipatti, Dharmapuri (Dt), Tamilnadu.**
* * **Assistant Professor in English, Periyar University Constituent College of Arts and Science, Pappireddipatti, Dharmapuri (Dt), Tamilnadu.**

literature that comes out of any colonized nation. In many cases, the literature stemming from these events is both emotional and political.

The post-colonial theorist enters these texts through a specific critical lens, or a specific way of reading a text. That critical lens, post-colonial theory or post-colonialism, asks the reader to analyze and explain the effects that colonization and imperialism, or the extension of power into other nations, have on people and nations.

The expansiveness of the "postcolonial" has given rise to lively debates. Even as some deplore its imprecision and lack of historical and material particularity, others argue that most former colonies are far from free of colonial influence or domination and so cannot be postcolonial in any genuine sense. In other words, the overhasty celebration of independence masks the march of neocolonialism in the guise of modernization and development in an age of increasing globalization and transnational's; meanwhile, there are colonized countries that are still under foreign control.

The emphasis on colonizer/colonized relations, moreover, obscures the operation of internal oppression within the colonies. Still others berate the tendency in the Western academy to be more receptive to postcolonial literature and theory that is compatible with postmodern formulations of hybridity, syncretization, and pastiche while ignoring the critical realism of writers more interested in the specifics of social and racial oppression. The lionization of diasporic writers like Salman Rushdie, for instance, might be seen as a privileging of the transnational, migrant sensibility at the expense of more local struggles in the postcolony. Further, the rise of Postcolonial Studies at a time of growing transnational movements of capital, labor, and culture is viewed by some with suspicion in that it is thought to deflect attention away from the material realities of exploitation both in the First and the Third World.

Major Issues :- Despite the reservations and debates, research in Postcolonial Studies has continued to grow because postcolonial critique allows for a wide-ranging investigation into power relations in various contexts. The formation of empire, the impact of colonization on postcolonial history, politics, economy, science, and culture, the cultural productions of colonized societies, feminism and post colonialism, agency for marginalized people, and the state of the post colony in contemporary economic and cultural contexts, capitalism and the market, environmental concerns, and the relationship between aesthetics and politics in literature are some of the more prominent topics in the field.

Major Figures of Post Colonial Literature :- Some of the best known names in Postcolonial literature and theory are those of Chinua Achebe, Rohinton mistry, Salman Rushdie, Jean Rhys, Derek Walcott, Wole Soyinka, Homi Bhabha, Edward Said, Buchi Emecheta, Frantz Fanon, Jamaica Kincaid, and Gayatri Chakravorty Spivak.

Rohinton Mistry in Postcolonial Literature : Rohinton Mistry was born in 1952 in Mumbai and is of Parsi descent. He earned a B. A. in Mathematics and Economics at the University of Bombay. In 1975, at the age of 23, he immigrated to Canada where he studied at the University of Toronto and received a B. A. in English and Philosophy. After a few years in Canada, he began to write stories for which he received immediate attention; he won two Hart House literary prizes and *Canadian Fiction Magazine*'s annual Contributor's Prize in 1985. In 1987, he published a collection of short stories entitled *Swimming Lessons and Other Stories From Firozsha Baag*. He published his first novel, *Such a Long Journey*, in 1991, for which he received Canada's Governor

General's Award, the Books in Canada First Novel Award, and the Commonwealth Writer's Prize for Best Book.

Rohinton Mistry is known as one of the leading expatriate writers of English literature from South Asia. His novels have a high degree of realism and not only represent his own beliefs, but also the evolving values of society. His works are about humanity and the ideals of human beings. His characters live as people, responsive to their setting. His novels show a profound understanding of the Indian environment, though acknowledging the almost dire state of his people; he continues to believe in the human being almost idealistically.

In 1996, Mistry was awarded an honorary doctorate of the Faculty of Arts at Ottwa University. His main concern in his fictional world is the representation of his microscopic community under the various political phases in India and its subjugation by majority. He portrays the various problems faced by his community in the present time. Mistry draws his inspiration both from sharply recalled childhood experiences and from the upheavals of migration. Mistry's fiction focuses on the Parsi identity. It also indicates how Parsis are learning to cope up with the reality of postcolonial India and how they are coming to terms with their new lives in the west. Like other postcolonial Indian writers, he also uses the form of unconventional narratives and employs anti-realist modes of narration. Rohinton Mistry conveys his message of shunning exploitation of people to the world through his works. He doesn't stop with attacking the social evils in his respective society. He also conveys better solutions to those social inequalities and evils through his writings

Rohinton Mistry's Parsi Heritage :- The Parsis are a small religious community in India, devoted to Zoroastrianism, whose ancestors fled Islamic persecution in Iran (ancient Persia) during the eighth century. Today only about 125,000 people follow the faith originally propagated by the prophet Zoroaster between 1500 and 600 B. C. The largest Parsi community is in Mumbai but there are also Parsis in Karachi (Pakistan) and Bangalore (Karnataka, India). The population of the Parsi community is diminishing due to its unwillingness to accept conversions to the faith; the Parsis maintain the importance of their purity in the face of high death rates and low birthrates.

The Parsis tended to be on the edge of Hindu society due to their Zoroastrian faith. In terms of the history of British colonialism in India, Parsis were often viewed as agents of and collaborators with the British. Although they enjoyed good relations with the British colonizers, they suffered the stigma of trying to be too Western. The unpopular position of the Parsi's at the end of British rule in 1947 influenced another Parsi Diaspora, this time to the West. Mistry's literature reflects his position as a member of a twice-displaced people, and explores the relationships in the Parsi community in India's troubled historical context.

Swimming Lessons and Other Stories From Firozsha Baag:- Mistry's short stories describe the characteristics of middle-class Parsi life, and show the characters' struggles between modernity and tradition. Eleven intersecting stories give portraits of the lives of the members of the fictitious residential block Firozsha Baag. The characters represented Parsis at odds with their religious beliefs and the larger community, and also convey the common human issues of spiritual questions, alienation, and fear of death, family problems, and economic hardships.

Such a Long Journey:- Mistry again deals with the Parsi environment in India. He explores the loss of innocence of the protagonist, Gustad Noble, as he attempts to define himself in relation to his family and his country during the chaotic times of 1971 India, during which India and Pakistan went to war over the liberation of East Pakistan, or Bangladesh. The novel gives extremely

detailed description of the lives of Gustad and his family in their apartment in Bombay, which serves as a contrast to outside world which disrupts family order. Mistry presents the outside world as a rotten and corrupting force on even the most decent members of the inner sphere.

***A Fine Balance*, 1995 :-** In 1995, he published *A Fine Balance*, which won the Giller Prize and the Commonwealth Writer's Prize. *A Fine Balance* also made the short-list of nominees for the prestigious Booker Prize, and was the basis for a 1998 film of the same title. In 2012 he won the Neustadt International Prize for Literature.

The novel, which is set in India in 1975, during Indira Gandhi's declared State of Emergency, gives intense descriptions of extreme poverty, and shows the bond that develops between four main characters, despite the barriers created by their differences in religion and social status. Dina, a Parsi woman who refused to return to the home of her domineering brother after the death of her husband, allows two tailors, whose homes have been burned by the government because of their attempts to rise out of the caste of leather workers, to share her apartment. Maneck, a Parsi student who suffers from alienation from his family, also joins the apartment. Mistry gives detailed descriptions of the lives of the characters and the hardships they endure (humiliation, torment in a government work-camp, torture, and disillusionment). The novel poses the question of the possibility of the existence of atrocious acts and beliefs in the face of the world's beauty.

Conclusion :- Similarly, "strategic post colonialism" is likely to be a self-defeating strategy, since most writers on the subject publicly and endlessly debate the problems associated with the term. In addition, the label is too fuzzy to serve as a useful tool for long in any exchange of polemics. It lacks the sharp edge necessary to make it serve as a useful weapon.

However, those of us unwilling to adopt the label "postcolonial" are hard put to find an appropriate term for what we study. The old "Commonwealth literature" is obviously too confining and outdated as well as being extremely Eurocentric. "Anglophone literature" excludes the many rich literatures of Africa, for instance, written in European languages other than English, and taken in the literal sense, it does not distinguish between mainstream British and American writing and the material under discussion. "New literature written in English" puts too much emphasis on newness and again excludes the non-English-speaking world. "Third-world" makes no sense since the collapse of the Soviet Union and the Communist "second world."

References :-

1. Aditi Kapoor, "The Parsis: *Fire on Ice*", Times of India, 14 May, 1989.
2. Alexander Pope, *The Poetical Works of Alexander Pope*. Ed. Herbert Davis, London: Oxford Standard Authors Edition, 1966.
3. Charu Chandra Mishra, "Modes of Resistance in Rohinton Mistry's *Such A Long Journey*", Parsi Fiction, Vol. 2. Ed. Novy Kapadia, Jaydipsinh Dodiya and R. K. Dhawan, New Delhi, Prestige Books, 2001.
4. Rohinton Mistry, *A Fine Balance*, New Dekhi, Rupa, 1996.
5. Rohinton Mistry, *Such A Long Journey*, Great Britain, Faber and Faber, 2001.

Scenario of Municipal Solid Waste Disposal and Processing Practice in Delhi, India

Dr. Ashwani Kumar*
Dhiraj Kumar Bharti*

Abstract :- Due to higher rate of urbanization, very large quantities of municipal waste are generated daily in urban areas of India and Delhi is no exception. The large quantity of waste exerts high pressure on solid waste management system in Indian cities. Weak institutional capacity and lack of resources; human and capital, the city authorities facing many difficulties in ensuring that all the waste generated in the city is collected for disposal and processing in a scientific manner. In Delhi about 7000-8000 metric tons of waste generated at daily basis. In Delhi about 80-90 percent of waste disposed in unscientific manner and only 10 percent goes for processing like composting, incineration, vermin-composting etc. In the most of Indian cities, waste is disposed of in an unsustainable/unscientific manner leading to environmental hazards with respect to air, water and land as well as considerable human health risks. This paper is studied about the waste disposal and waste processing in NCT of Delhi.

Keywords: municipal solid waste, urbanization, composting, incineration, vermin-composting

Introduction :- Waste management continues to remain one of the most neglected areas of urban development in India. In the half of Indian cities more than 50 per cent of solid waste generated remains uncollected. This large quantity of uncollected waste becomes the simultaneous cause of environmental pollution and ground water resources contamination.

According to CPCB Report, 2016, 1,41,064 TPD (tone per day) waste was generated in the year of 2014-15 by urban population of India and out of total 127,531 TPD of municipal solid waste was collected in urban areas (about 90 per cent of all generated waste in urban areas). Out of which, only 34,752 TPD of waste (around 24 per cent of all waste generated) was processed or treated by using processing technologies like composting or vermin-composting or incineration (waste to energy) plants. The remaining quantity of collected waste is dumped into sanitary landfill sites, without any treatment.

The management of MSW is a major responsibility of Urban Local Bodies. With the rapid growth of urbanization and industrialization waste management has emerged as one of the major challenges for urban managers. The functioning of most municipalities in Indian cities is traditional in nature as they have neither adequate financial resource nor trained staff for dealing with the aggravated difficulties of garbage collection and disposal. A weak administration and poor management is characteristic of Indian municipalities with the capital being no exception.

Delhi is the most densely populated and urbanized city of India. The decadal growth rate in population during the last decade (2001-2011) was 20.96 per cent. Waste management problems in cities include searching for new lands for disposal, pollution generation while processing and its disposal all prove cumbersome jobs. Urban waste problems are not confined to the cities alone. They greatly affect peripheral regions also because the demand for disposal spills over across a

*** Assistant Professor, Department of Geography, C.H.L. Govt. College, Chhara, Jhajjar (Haryana)**

*** Research Scholar, Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi, Pin – 221010.**

wider area. Uncontrolled dumping of waste has created successive environmental threats. Indiscriminate waste dumping poses serious environmental problems in terms of water contamination, land degradation and air pollution, contributing collectively to global warming. The city managers are responsible for environmental management, but they are faced with many problems and challenges. Certain which are critical environmental parameters for sustainable development of urban areas. Out of 8000 MT/day of estimated waste generated in Delhi, only about 300 MT/day of waste is processed for composting against the 800 MT/day installed capacity.

Objectives of the Study:- The major objective of the present research paper is to study about the waste disposal practices and waste processing technologies in Delhi.

Data Base and Research Methodology:- Data base and research methodology is very important part of any science and social science research. The present paper is based on secondary data. For the paper, secondary data was collected from government, semi-government, non-government and private publications. The background information was related to area, demographic characteristics, urbanization status and socio-economic profile as was compiled from the District Census Handbook, the Delhi Statistical Handbook, and the Census of India. Other required data and comprehensive information as well as available published material related to municipal solid waste management in the spatio-temporal context was collected from the Municipal Corporation of Delhi (MCD), New Delhi Municipal Council (NDMC), Delhi Cantonment Board (DCB) and various departments of the Government of the National Capital Territory of Delhi (GNCTD) and Centre for Science and Environment (CSE). Apart from these organizations, other information and data was collected from the National Environment Engineering Research Institute (NEERI), National Institute of Urban Affairs (NIUA), The Energy Research Institute (TERI), Infrastructural Leasing and Financial Services (IL&FS) etc. A number of reports and information were also collected from non-governmental organizations (NGOs).

Waste Disposal Practices:

The disposal of waste is an important aspect of the municipal solid waste management practices and it requires special attention by the ULBs through effective and efficient planning. The waste collected from various dustbins or dhalaos as disposed off by various methods such as Open dumping, Sanitary landfill, Composting, Incineration, Pyrolysis etc. Only open dumping and sanitary landfills are widely used in developing countries. In general, waste that cannot be recycled reused or treated ends up in an open dumps or landfill.

I. Open Dumping

Open, unregulated dumps are still the predominant method of waste disposal. The larger cities in developing countries are facing enormous garbage management problems. Open dumping is an illegal process, in which any type of the waste such as household trash, garbage, tires, demolition/construction waste, metal or any other material dump at any location like along the roadside, vacant lots on public or private property even in parks other than a permitted landfill or facility. Open dumping poses a threat to human health and the environment because of land pollution (Zurbrugg et al., 1999). In India, generally the disposal of municipal solid waste in open grounds is normal practice. Uncontrolled dumping of waste blights the land for any future use and causes serious risk of water pollution, air pollution and vector breeding. Unsanitary dumping of waste results in underground water pollution, bad odours, fires, flies, rats etc. These problems can be reduced by proper dumping of waste. In this method, waste is dumped in low laying areas

partly as a method of reclamation of land and also it is an easy method of disposal. As a result of bacterial action garbage decreases considerably in volume and is converted gradually into humus. Proper dumping of waste reduces the environmental pollution and health hazards. In National Capital Territory of Delhi open dumping is commonly seem in various parts of the city, here waste is scattered on streets, roads and public places. In Delhi only 80-85 per cent of the total waste generation has been collected and rest spread on roads, streets, parks and other public places.

II. Sanitary Land–filling :-

A sanitary landfill is a method of solid waste disposal that functions without creating a nuisance or hazard to public health or safety. Sanitary landfill is a fully engineered disposal option, which avoids harmful effects of uncontrolled dumping by spreading, compacting and covering the waste land that has been carefully engineered before use. Through proper site selection, preparation and management, operators can minimize the effects of leachates (polluted water which flows from a landfill) and gas production both in the present and in the future. Sanitary landfill is an engineered burial of refuse involving spreading of the solid waste on the ground, compact it and then covers it with soil at suitable intervals. The refuse is dumped and compacted in layers of 30-60 cm. and after a day’s work. When the depth of filling reaches 1.5 m, it is covered by earth of 15-30 cm. thickness so that the refuse is not directly exposed. The area is divided into smaller portions and the second layer of filling is done prior to which the first layer is well compacted. Insecticides and pesticides are to be applied at regular intervals. At final level, about 60 cm. of earth is laid and finally compacted well at the top of the land filled area. The filled up solid waste is stabilized due to the decomposition of organic matter in the following stages.

Presently, in Delhi about 7000-8000 metric tonnes of municipal solid waste generated every day. The major source of waste generation in Delhi is vegetable and fruit markets, retail and commercial centres, slaughter houses and construction and demolition activities. Here, about 80-90 per cent of municipal solid waste is disposed on land through land filling and rest goes for processing.

Existing Sanitary Landfill Sites in Delhi :- Presently in the study area, there are four landfilling site in operation which cover 202 acres of land situated in different zones in different directions. Bhalswa, Gazipur Okhla and Narela/Bawana landfill sites are in operation. The Municipal Corporation of Delhi is responsible for the management of all four existing landfill sites. In Delhi the land–filling started in 1975 nearby Ring Road. In 1978 two other landfills were started at Timarpur and Kailash Nagar, till date 16 landfill sites have been filled up with garbage of Delhi since 1975 in various parts of Delhi. These are being developed into parks, forests, gardens and other useful activities. Subroto Park and Millennium Park in Delhi is an ideal example of a landfill that was converted into a park. These parks are, today, frequently visited by people from not just particular an area but also others areas of Delhi.

Bhalswa Landfill Site:- The Bhalswa Landfill site has an area 40 acres and is situated on GT Karnal Road opposite Sanjay Gandhi Transport Nagar. The ownership of this land is with the Horticulture Department of MCD. This site was started in the year 1994 for disposal of MSW and is situated in North-West Delhi. At that time the depth of this site was about 5 meters below ground level. Now the height of this site is about 25-30 meters above the general ground level and it is almost saturated. There are two computerized weight bridges installed at the site for weighing the waste. At present about 2900 MT. of waste is being received daily on this site from Civil Line Zone, Rohini Zone, West Zone, Najafgarh Zone, Narela Zone, and Partly Karol Bagh Zone. But at

times other Zones have also deposited their waste into the Bhalswa landfill site. It is serving about 50.3 per cent of the population of Delhi. After receiving waste on SLF this garbage is levelled, dressed-up and disposed with the help of department Bulldozers and Hydraulic Excavators. Here, 13 Bulldozers and 4 Hydraulic Excavators are presently available at the site.

Gazipur Landfill Site :- Gazipur Landfill site has an area of 70 acres and is situated on NH-24 near Gazipur Dairy Farm in East Delhi. Presently it is the biggest and oldest landfill site in Delhi and the ownership of this land belongs to Delhi Development Authority (DDA). The site was started in the year 1984 for disposal of MSW. At that time the depth of this site was about 3 meters below from ground level. Now the height of this site is about 30-32 meters above general ground level. There are two computerized weight bridges installed at site for weighing the waste. At present about 2100 MT. of waste is being received daily on this site from Shahdra (N), Shahdra (S), NDMC, City Zone (slaughter house waste & mixed meat waste) and Sadar Paharganj Zone. Sometimes Karol Bagh Zone and other Zones of MCD dispose their waste at Gazipur landfill site. This SLF site is serving 30.8 per cent population of the total population in Delhi. After depositing the waste 13 Bulldozers and three Hydraulic Excavators are used for levelling, dressing-up and disposal of garbage at SLF site.

Okhla Landfill Site :- The Sanitary Landfill site acquires an area 32 acres and it is situated on Anand Mai Road near CCI Okhla in South Delhi. The ownership of this land belongs to DDA. This site was started in the year 1996 for disposal of MSW. Presently, it is serving 18.9 per cent of the population of total Delhi. At that time the depth of this site was about 5 meters below ground level. Now the height of this site is about 35 meters above from the back side of SLF site and about 20-22 meters above from the front side of SLF site. There are two computerized weight bridges installed at the site for weighing waste. At present about 1800 MT. of waste is being received daily at the Okhla SLF site from Central Zone, South Zone, DCB (Delhi Cantonment Board) and Partly City Zone and Najafgarh Zones. This Garbage is levelled, dressed-up and disposed with the help of six Bulldozers and one Hydraulic Excavator.

Narela/Bawana Landfill Site :- Narela/Bawana is the new sanitary landfill site situated on the Narela-Bawana road in North-West Delhi and the total area of the site is 60 acres. This is the first scientific landfill site in the city where close to 1,300 metric tonnes of solid waste will be segregated and processed to obtain refuse derived fuel (RDF) for industrial use, manure, recyclable material etc. This is likely to bring down the burden on the three sites — Ghazipur, Okhla and Bhalswa, which have more than 30-metre-high piles of garbage as against the permissible limit of 20 metres.

Processing of the Municipal Solid Waste :- The main motive of processing of MSW is to reduce the weight and volume of waste that has to be disposed of in a landfill. Processing and treatment processes for MSW include physical processes for separation of different fraction, chemical processes like combustion and biological processes like composting and bio fuel generation. Most of large cities in developed and developing countries have solid waste treatment facilities where the waste is processed prior to disposal (Goel, 2008). Conceptually the idea of composting was appealing as it helped to recycle the nutrients back to land. Composting is to provide much awaited answers to the growing problem of municipal solid waste but operational and other problems began to appear. In Delhi the composting process has been adopted in proper and scientific manner.

Table 1 highlighted the proposed facilities for waste treatment and disposal in Delhi. Municipal solid waste has a good potential for composting, biomethanation, and WTE/RDF processing activities in Delhi. Indian people are basically vegetarian, so here maximum organic type of waste is generated and Delhi is not an exception. In 2004 only 850 tonnes/day of waste were treated as composting process and other processing technology was suspended. In 2007 about 2000 tonnes/day waste were processed by involving composting, biomethanation and RDF treatment options. 4500 tonnes/day waste will processed in 2015 and after 2015 it will rise to 6000 tonnes/day (Talyan et al., 2008). Therefore, in future more waste processing units will be installed in Delhi and the present situation will improve.

Table 1: Proposed Facilities for Treatment and Disposal of MSW in Delhi

Treatment option	**Treatment capacity (tonnes/day)**						
	2004	**2007**	**2011**	**2013**	**2015**	**2020**	**2025**
Composting	850	1500	1500	1500	1500	1500	1500
Biomethanation	-	250	750	750	1500	2250	2250
Refuse derived fuel (RDF)	-	250	750	750	1500	2250	2250

Source: *Talyan et al., 2008*

Composting :- Composting is the biological method of decomposing solid wastes under aerobic or anaerobic conditions into humus and stable mineral compounds. This method is best suited to small and medium sized Indian towns as it simultaneously solves disposal of solid waste, disposal of night soils and production of valuable manure for crops. It is the aerobic decomposition of biodegradable organic matter in a warm, moist environment by the action of bacteria, yeasts, fungi and other organisms. It allows for the development of an end product that is biologically stable and free of viable pathogens and plant seeds and can be applied to land beneficially. Composting involves three basic steps, that of pre-processing (size reduction, nutrient addition etc), decomposition and stabilization of organic material and post-processing (grinding, screening, etc).

In Delhi a huge amount of biodegradable waste generated, so here a good potential is available for composting. Therefore, Delhi Government has started composting. The compost is utilized as organic fertilizer for agricultural purposes and the cost for every tone is 2000 to 2300 Rs. **The first composting plant** was set up at Okhla in 1980. It was semi–mechanized plant of 150 tonnes per day capacity for composting the waste. Later this plant was expanded with its some additional capacity in 1985. However, this plant was not in an operational condition during 1991-1995 due to low quantity of waste material and higher operational cost. In May 2007 IL&FS Company signed a concession agreement with the municipal corporation of Delhi to rehabilitate the Okhla compost plant with carbon support. The project applies a multi-treatment of municipal waste to avoid possible pollution. It involves the mechanical sorting and composting of organic waste. The materials like metals, plastics and paper are recycled. The residual organic waste is treated using the composting process. This plant converts 73,000 tonnes of MSW into compost every year. This is equivalent to 200 tonnes of municipal solid waste per day.

New Delhi Municipal Council (NDMC) also set up a compost plant with a capacity of 200 tonnes per day. This plant is currently not functioning to its full capacity. The main causes behind the low capacity were: (I) poor quality of waste (II) old machinery (III) unskilled workers and (IV) poor quality of final product. The garbage generated by horticulture activities is taken to the compost plant and used for various purposes in NDMC operated areas. About 30 per cent of

the garbage of NDMC area is horticulture waste, which is voluminous but not weighty. The garbage generated by horticulture activities is taken for composting and this horticulture waste is processed into manure by scientific methods.

Table 2: Existing Composting Plants in Delhi

Sr. No.	Facility	Capacity (TPD)	Area (In Ha.)	Starting Year	Technology
1	Okhla (MCD)	200	8.00	1981 and again start in 2007	Aerobic windrow composting
2	Okhla (NDMC)	200	3.4	1985	–do–
3	Bhalswa (Private Sector)	500	12.00	1999	–do–
4	Tikri Khurd (APMC)	125	2.6	2001	–do–
5	Narela-Bawana	500	2.7	2012	–do–

Source: *MCD*

The third composting plant was setup in Bhalswa with the private sector named Exnora Private Limited Company. It is the joint venture between MCD and EPLC. The Bhalswa composting plant was established in 1999. The capacity of this composting plant is 500 tonnes per day, but it is working below full capacity. Over the last some years the amount of treated waste has increased from 3,710 tonnes per year (10 tonnes per day) in 2001, to 49,150 tonnes per year (135 tonnes per day) in 2006-07. MCD plans to expand its operation to 1,000 tonnes per day (TPD) with the assistance of carbon finance. MCD has registered this plant in the UNFCCC CDM Project for increasing the capacity of this plant and reducing Methane Emissions. The main causes behind the low capacity are (I) no marketing committee or market for selling the final product (II) insufficient waste, and (III) old equipment and machines.

The fourth composting plant was established in Tikri Khurd at Narela Zone (APMC) in 2001, by Spiral Services to process 125 TPD of green waste of APMC fruit and vegetable market in Delhi. However, the plant is running below than the full capacity due to lack of sufficient financial and technical assistance, the plant also facing lack of proper infrastructure to handle 125 TPD of waste. This has resulted production of poor quality of compost which is not easy to sell in the market. It was upgraded by IL & FS Ecosamrt Company. The main objective of up-gradation was to adopted improved and scientific method for aerobic decomposition of bio–degradable component of organic fruit and vegetable waste. Recently MCD has installed a compost plant at Narela-Bawana with a capacity of 400 TPD and it is working since January 2012. The Compost facility process 400 TPD MSW, i.e. 150 TPD from incoming solid waste, 150 TPD from MRF, and 100 TPD from screening section. The compost facility had a margin of design of about 20 per cent for handling situations of increased garbage during special days of importance such as festivals, public holidays etc.

Vermi-composting :- Vermi-compost is organic manure (bio fertilize) produced as the vermicompost by earthworms feeding on biological waste material; plant residue. Earthworms are small, soft, cylindrical bodied invertebrates that play a vital role in soil ecosystem maintenance. Earthworms greatly influence soil properties and cast production, which results in the continuous turnover of the soil and mixing of minerals and organic constituents. Worms that live in the soil are the farmer’s and gardener’s friends. Vermicompost, the end product, is extremely useful for

enriching and fertilizing the soil. It is odourless and safe to handle. It is rich in hormones, antibiotics and vitamins that produce healthy plant growth. Although its nitrogen, phosphorus and potassium values are not as high as for chemical fertilizers, it is multipurpose compost that provides all the ingredients needed to improve most soils and is much better for the environment as well. Vermicompost is also seven times richer than compost that has been rotted without introduction of worms, so only one seventh of the quantity is needed to enrich the soil. Tests in India have shown that vermicompost application can double wheat yields and quadruple yields of fodder. For best effect vermicompost needs to apply before the growing season over a two or three year period.

Incineration :- Waste to energy facility may generate steam, electricity, super-heated water or a combination of these. Incineration is a good alternative for waste processing that is being used in India. In densely populated urban areas, where large sites suitable for sanitary landfilling are not available within reasonable handling distances, incineration may be the most economical option for refuse processing, the advantages of incineration often outweigh its disadvantages. All the solid waste materials cannot be incinerated, as this is applicable only to the combustible materials, which during incineration undergo physical changes. This practice has attracted much opposition from environmental pressure groups, particularly with reference to emission of acidic gases containing dioxins and heavy metals. The solid residues of incineration still require disposal and may be considered hazardous, they can sometimes be used in construction.

Table 3 reveals that nine compost and incineration plants are proposed and in operation in Delhi. But a major question rise up, it is findings of new sanitary landfill sites in Delhi because the municipal waste is consistently rising. In Delhi it is extremely difficult to find out new sanitary landfill sites. In future this problem will be more critical because there is no option for acquisition of new landfill sites, but to resort to alternative methods of waste treatment, reduction, recycle and reuse, which include vermiculture, fossilization and composting, however, it is clear that waste treatment will be necessary for all developing and developed countries. Processing of municipal waste can provide a suitable answer for the huge amount of municipal solid waste.

Table 3: Proposed Composting/Incineration Plants in Delhi (2001-2021)

Sr. No.	Location	Area (in ha.)	Remarks
1.	Okhla (MCD)	–	Existing (NIO)
2.	Okhla (NDMC)	3.6	In operation
3.	Kair–Village Site (Najafgarh Zone)	4.0	In operation
4.	Deorala Village Site (Najafgarh Zone)	4.8	New
5.	Compost Plant of SLF Bhalswa	4.8	New
6.	Vermiculture at SLF Gazipur	0.1	New
7.	Incinerator Near Timarpur	–	Existing (NIO)
8.	Gazipur Meat Processing Centre Waste Disposal	2.0	Proposed
9.	Gazipur WTE Plant	0.1	In operation
10.	Narela-Bawana Incineration Plant	3.0	New

Source: *Delhi Master Plan (2021)*

Conclusion :- The waste disposal and processing is an important part of waste management practices. In Delhi, there are four landfill sites, but out of three are at overflowing stage and dumping of waste is still continuing. It is an urgent need for new sanitary landfill sites in the study area. The Government of Delhi should be handover the new landfill sites as soon as possible. In Delhi four composting and one incineration plant was also installed by the government, but these are working below than the full capacity. Some other waste processing projects are also made, like Gazipur WTE plant, Narela-Bawana waste processing plant etc. It become imperative, the Government of Delhi should improve the condition of exiting composting/incineration plants and develop the new plants for processing of municipal waste. Because composting and incineration can only provides a suitable answer for the huge quantity of municipal solid waste in Delhi. Keeping in view, the gravity of the problem it become imperative to make a periodic review for the waste growth in different part of Delhi. In addition to executive measures, there should be active-participation of the people, who should be included in policy formation as well as policy execution, so that the problem may be solved in accordance with the prevailing local conditions. By adopting the preventive and curative measures, we may be in a position to achieve the desired result for checking this growing menace of Delhi.

References:

- CPCB (2016): Status Report on Municipal Solid Waste Management [Online] Available at http://cpcb.nic.in/divisionsofheadoffice/pcp/MSW_Report.pdf
- Goel, S. (2008): "Municipal Solid Waste Management (MSWM): in India: A Critical Review", *Journal of Environmental Science and Engineering*, Vol. 50, No. 4, pp. 319–328.
- IL & FS Ecosmart Limited, Report (2007): Sub-city Development Plan of Delhi for New Delhi Municipal Council Area, IL & FS Ecosmart Company Limited, pp 10-20.
- NEERI (1996): "Solid Waste Management in MCD Area", *National Environment Engineering Research Institute,* Nagpur, India.
- Talyan V., Dahiya, R.P., Anand, S., Sreeprishman, T.R., (2008): "State of municipal Solid Waste Management in Delhi, the capital of India", *Waste Management*, Vol. 28, pp. 1276-1287.
- Zurbugg, Christain, and Ahmed, A. (1999): "Enhancing Community Motivation and Participation in Social Waste Management", *Sandec News*, 4. (Jan), pp. 2-6.

Unracialized, shared victimhood of women in Toni Morrison's *A Mercy*

Urfana Nabi*

Abstract :- Determined to the cause of African-Americanism, Morrison's fictional world explore the racial discrimination and subjugation of African-Americans in the contemporary white America. What she explains is the marginality imposed on Blacks in the dominant white American society. However, Black females, being black and women are doubly marginalized. Committed to her race and gender, Morrison highlighted the discrimination and oppression black women suffered at the hands of dominant white patriarchal world. However, Morrison's recent novel *A Mercy*, though written in twentieth century, depicts the picture of seventeenth century pre-racial America when slavery was deprived of its racial context. While decentralizing the race, Morrison highlighted the ugly picture of slavery and its impact over the lives of slaves irrespective of their color and race. Since, women being the easy target of any such kind of violence and victimization the novel presents their plight irrespective of their color and race too. The present paper analyses the Morrison's depiction of this shared inequality and depravity to the women of any race under the patronage of patriarchy and that too of any race.

Key Words: African-American, Marginality, Victimization, Patriarchy

Introduction :- *A Mercy* marks a subtle departure from the racial discrimination or oppression of Morrison's earlier novels. Set in the seventeenth century pre-racial America, the novel decentralizes the race and highlights the trauma and plight of slavery in the lives of slaves irrespective of their color, race and even gender. It seems Morrison attempts "to interrogate American slavery in the final decade of the seventeenth century when the conflation of race and slavery was in its infancy" (Jennings). While talking about the novel Morrison herself admits that she "wanted to separate race from slavery to see what it was like, what it might have been like, to be a slave but without being raced; where your status was being enslaved but there was no application of racial inferiority" (Cited in Jennings). It is this pre-racial concept that enables Morrison to bring together the representatives of all racial groups whether African, Native American, Anglo and Mulatto and thus to depict their shared successes or failures, happiness or trauma, weaknesses or strengths.

In this world of slavery Morrison basically depicts the shared inequality and depravity to the women of any race under the patronage of patriarchy and that too of any race. It is this shared male or patriarchal failure represented in the novel by Jacob Vaark, a White Dutch farmer, and the Blacksmith, a free Black, that Morrison makes mainly responsible for the trauma and deprivation in the lives of women. "They had everything in common with one thing: the promise and threat of men. Here, they agreed, was where

* **PhD Research Scholar, Dept. of English, Bhagwant University, Ajmer.**

security and risk lay" (96). Throughout the novel Morrison shows women at the mercy of men. If not economic, however, emotional dependence has made them vulnerable.

Rebbaka: A White Traded Wife

Messalina or Lina, a Native American is the first who landed into the Jacob's farm. Jacob bought her by an advertisement from Presbyterians to whom she has been handed over by the soldiers. Rebbaka, a European mail-order bride, who become Jacob's wife, too enters into the Vaark farm by an advertisement. It is through Rebbaka that Morrison presents the plight of European White woman in the dominating world of patriarchy who if "not found a husband, she would have been indentured servant like Scully and Willard, the two white males working on farm" (Jones). Also, through Rebbaka's marriage to Jacob it seems Morrison criticizes the institution of marriage as wholly male dominant. She shows how the essence of marriage is the circumstantial needs and that too of patriarchal needs rather than emotional one.

The marriage is what Rebbaka's mother envisions a "sale" and the woman a commodity ready to sell. Sold by the father and bought by the husband, Rebbaka is ironically bartered into marriage. Thus, it is the shared victimhood in the form of womanhood that brings both, Lina and Rebbaka, the Black and the White, into the world of Jacob Vaark. "Thus, just as Lina's sale results from an advertisement for a 'Hardy female, Christianized and capable in all matters domestic available for exchange of goods or specie,' Rebbaka, though a white English woman, is literally bought from her father by her husband Jacob, who requests 'an unchurched woman of childbearing age, obedient but not groveling, literate but not proud, independent but nurturing'" (Armengol). She herself acknowledges that "her prospect were servant, prostitute, wife… the last one seemed safest" (76). Thus, Rebbaka too becomes the victim of dominant but failed patriarchy. Ramirez suggests:

Thus, Morrison defines her objectified and subordinated position in the patriarchal world of plantation. Her status as a wife is not as different from that of the other household female servants and her arranged marriage—her own mother calls it "sale"—resembles other forms of human trafficking. In this patriarchal role, Jacob rules over the women who really run the farm.(...)

Sorrow: A Cursed Woman freed by Motherhood

A mysterious, half-mad orphan of unspecified ethnicity who enters in Jacob's pack of slaves is the shipwrecked girl of a sea captain, Sorrow. She looks weird with black teeth, grey eyes, and red hair always talking with an imaginary invented friend called Twain. Jacob acquired her from a sawyer in exchange for the dismissal of his lumber debt. Rescued by the family of a Sawyer from the river bank she too becomes the victim of failed patriarchy. Her disintegration leads her to madness in which she takes refuge in her imaginary self-invented friend Twin in order to win over her trauma like schizophrenic protagonist Pecola of *The Bluest Eye*. Sexually abused and exploited by Sawyer's sons,

she gets pregnant. Instead removing her pain, she has been herself expelled by Sawyer and his wife. Thus, in the dominant world of patriarchy Morrison shows, it is not the felon, a man, who is to be expelled but the agonizer, a woman, to expel and suffer more. "Being a woman in the seventeenth century meant to be under further level of categorization" (Bukhari 423). Morrison herself acknowledges in the novel, "To be female in this place is to be an open wound that cannot heal. Even if scars form, the festering is ever below" (161).

First time at Sawyer's house though it has been hinted by Morrison that his sons are perhaps responsible for Sorrow's pregnancy, "On occasion she had secret company other than Twin, but not better than Twin, who was her safety, her entertainment, her guide. The housewife told her it was monthly blood… and Sorrow believed her until the next month and the next month and the next when it did not return. Twin and she talked about it, about whether it was instead the result of the goings that took place behind the stack of clapboard, both brothers attending, instead of what the housewife said. Because the pain was outside between her legs. Not the inside where the house wife said was natural. The hurt was still there when the Sawyer asked Sir to take her away, saying his wife could not keep her" (117-118). However, second time at Vaark house, the identity has been totally enshrouded. Though her first pregnancy failed, for which she blamed Lina, but her second pregnancy bestowed a baby girl to her. This birth transforms Sorrow morally as well as socially and redirects her life by giving it a new meaning. She is withdrawn from her imaginary world of Twin and thus her mental state improves. She develops a sense of belonging "I am your mother", and changed her name, "My name is Complete" (132). Thus, Morrison shows how, vulnerable and unprotected in the hands of failed patriarchy, Sorrow feels protected and complete with her motherhood. Besides, Morrison unconventionally depicts motherhood as a source of power and agency to womanhood rather the means of restriction and suppression.

Minah mae: A Cursed Mother

When Jacob Vaark visits D'Ortega's farm to collect his debt, there he offers Jacob human slaves instead of money he owes to him. To this Jacob's instant and humane reply is that, "flesh was not his commodity" (20). However, on the begging request of Minah mae, a slave mother at D'Oretaga's farm, to take her daughter, Jacob grudgingly accepts her daughter, Florens, as partial payment for the debt. Apparently, an act of a mercy, refers to books title, it turns to the act of failed mercy as to Florens it becomes the act of abandonment and exile by her mother that shapes or ruins her future. As in the words of Downie, "The irony is that even acts of mercy may turn out not to be mercy at all, but may bring suffering. Possession of any kind seems to be wrong" (Downie 58).

When Florens' mother kneels down and begs, "Please, Senhor. Not me. Take her. Take my daughter" (24). Jacob took it wrongly as the daughter is an "ill-shod child that the mother was throwing away" and fails to recognize and understand "the terror in her eyes" (ibid). It was actually the choice of a powerless mother to send her daughter in the

hope of preventing her from being sexually abused at D 'Ortega's farm. Being herself the subject of sexual abuse she tries to save her child as what she notices, "a cloth around your chest did not good. You caught Senhor's eyes" (164). Choosing to stay with her son, who being a child would likely die without her, and giving away her daughter, so to provide her a life-altering opportunity, depicts the mother's sacrifice of leaving the chance of better life to herself over the survival of her children. Though, at the end of the novel, she provides an explanation of her action as, "Because I saw the tall man see you as a human child, not pieces of eight. I knelt before him… He said 'yes'" (164).

The misery of Florens and her mother and many women like them can be attributed to the failed patriarchal world of men like D'Ortega. To men like D'Ortega, woman is a commodity and her subjugation seems to them as their birth right. Instead of protecting, her they exploit her vulnerability and in anyway satiate their emasculated masculinity.

Florens: A Victim of Mercy

From D'Ortega's farm, Florens enters into the Jacob's enterprise that entangles Florens' destiny and takes her to the path where she herself is supposed to face and handle the odds of life. Her mother, though freed her from the world of sexual abuse but could not save her from the evils of servitude. "It is not entirely right to say that Morrison is using slavery as a metaphor for the human conditions. She is using it as a metaphor for the female condition" (Armengol). It was Lina's sense of loneliness that she acts as Florens' mother immediately after her arrival at farmhouse. However, Lina's love and care doesn't prove sufficient to solace Florens' tortured sense of identity. Despite having humane environment at Vaark's farm in comparison to D'Ortega's and the motherly affection and care in the embodiment of Lina, Florens feels isolated and deserted. It is on the arrival of Blacksmith, a free Black man, Florens tries to fix her disrupted sense of identity by dotting after him. It was Florens' craving to fulfill the void of her identity that she becomes an easy target of the advances of Blacksmith.

Through Blacksmith, a free black, Morrison takes readers to the world of another patriarchal dominance. This time, neither White like Jacob Vaark nor the black slave or subjugated male like her previous novels, she explores the failure of a free Black patriarch—the Blacksmith. It is this world of failed patriarchy where Florens enters in order to purge off her past pain of being abandoned. However, the entry can be seen "not as ennobling, but as debilitating" (Downie 57). Blacksmith enters into the world of Jacob Vaark as a hired artisan to make wrought iron gates for Vaark's new mansion. It is when Florens meets him and falls in love with him. Blacksmith too responded and the two strike up a sexually romantic relationship. After that it becomes the ultimate goal of Florens to have Blacksmith or more appropriately to belong to him. When Lina warns her by saying, "You are one leaf on his tree," Florens, "Crippled with worship of him" sharply replies, "No I am his tree" (59). However, Lina's fear turns right and Blacksmith's dehumanizing behavior gets revealed when, after finishing his work at Vaark house, he leaves the farm without even bothering to say goodbye to Florens. Kakuntani too highlights it as, "When

his work is done, however, the blacksmith leaves without even troubling to say goodbye" (Kakutani).

Florens' love for Blacksmith is so intense that despite deserted by him, she not only craves but still belongs to him. It was after the affliction of Rebbaka, with small pox that she gets a chance to meet her lost love. Rebbaka decides to send Florens to fetch the blacksmith to treat her as he had already cured Sorrow out of the same disease. Thrilled with the joy of getting united with her otherwise failed love, she departs to the journey of wilderness, with its animals and rugged terrain, lonely and happily. "No communion or prayer. You are my protection. Only you" (67).

Identifying herself with Blacksmith, Florens foresees a hope of freedom from her past dislocation and rejection, "You are my shaper and my world as well. It is done. No need to choose" (69). However, in response to her dreams and hopes, the failed patriarchy of Blacksmith gives her rejection and abandonment. Arrived at Blacksmith's house, after a long and hard journey, Florens feels dejected on finding Blacksmith living with an adopted boy Malaik. Since she wants his unrestricted attention and love, she feels jealous and threatened by boy. She recognizes in him her expulsion as she says:

> This happens twice before. The first time it is me peering around my mother's dress hoping for her hand that is only for her little boy. The second time it is a pointing screaming little girl hiding behind her mother and clinging to her skirt. Both times are full of danger and I am expel. Now I am seeing a little boy… You reach out your forefinger towards him and he takes hold of it. (133-134)

In her distrusted and disturbed psychological condition, she even assumes that the boy too hates her. "He is silent but the hate in his eyes is loud. He wants my leaving. This cannot happen. I feel the clutch inside. This expel can never happen again" (135). Under her frustrated condition, her insecurity goes beyond her control and she attacks the child and breaks his shoulder, that she herself acknowledges, "And yes I do hear the shoulder crack but the sound is small……He screams screams then faints. A little blood comes from his mouth hitting the table corner" (138). At the same time, Blacksmith appears and knocks Florens out without providing her a chance to explain things. Rejecting Florens at once implies failure on part of Blacksmith to recognize the fear and insecurity she possesses. "Identifying her as ontologically depraved rather than trying to understand her vices as the vices of human being who has been… oppressed, the blacksmith, a freed black man, defines Florens, an enslaved black woman, as an absolute negative, a nobody of "no consequences in [his] world,' a mere nothing" (Karavanta). Lacking the ability to provide any sort of relief to the violence in Florens fostered by her traumatized past experience of a failed and dehumanizing face of dominant patriarchy, Smithy too evolved as the same face and becomes reason to Florens' second expulsion. It seems Florens is subject to abandonment and expulsion.

Conclusion :- Traditionally man is entailed to provide protection and security in the form of love and care to his family especially the concerned women. But Morrison depicts a

contrary world of failed patriarchy in her novels and this time she portrays a patriarchal world of slavery in which woman as vulnerable is its subject of victimization. Either Jacob Vaark, a White Dutch trader's failed family that he bestowed to his household women or a free negro, Blacksmith's failed love to Florens. Though, apparently against the institution of slavery, however, all the members of Jacob's farm came through the same institution. Jacob Vaarks social failure is depicted in form of his marriage to Rebbaka. Ignoring the essence of marriage, he did it as 'sale'. Reeling in the trauma of her mother's abandonment Florens, the central character in the novel, tried to relocate and identify herself with the Blacksmith, a free Black man. However, his failed patriarchy rejects Florens completely and at once, without providing her a chance to explain things. Already victimized, he traumatized her by calling her wild and slave.

In the end, however, Morrison condemns the all sorts of dominion as well as any sort of dependence. It has been found that in the world any sort of subjugation, as in the form of male dominancy, there is a need of assertion of self-determination. In the novel we found it through the transformed and self-asserted personalities of Sorrow and Florens. Sorrow freed herself from the pangs of past victimization by entering into the world of motherhood while Florens evolved as a changed person who becomes emotionally strong and self-sufficient that is symbolically represented by her walking with bare feet.

Primary Source :-

1. Morrison, Toni. *A Mercy* (2008). New York: Vintage Books, Aug. 2009.
2. *The Bluest Eye* (1970). New York: Vintage International (1999).

Secondary Source :-

1. Armengol, Josep M. "Slavery in black and white: the racialization of (male) slavery in Frederick Douglass's Narrative and /vs. Toni Morrison's A Mercy". *Postcolonial Studies,* Vol. 20, Issue 4, 2017.
2. Bukhari, Rabia. "FRACTURED IDENTITIES IN FICTIONALIZED AUTOETHNO-GRAPHIES: AN ANALYSIS OF TONI MORRISON'S A MERCY (2009), AND JUNOT DÍAZ'S THE BRIEF WONDROUS LIFE OF OSCAR WAO (2007)."
3. *3rd International Conference on Education, Social Sciences and Humanities.2016*
4. Downie, Marjorie. "Of Orphans and Mercy: A review of A Mercy by Toni Morrison." *The College of The Bahamas Research Journal,* Vol. 15, 2009. 56-58.
5. Jennings, L.V.D. "A Mercy: Toni Morrison Plots the Formation of Racial Slavery in Seventeenth-Century America." Vol. 32, No. 2, 2009.
6. Jones, P.S. "Review of Toni Morrison's 'A Mercy'." *Review for The Gathering of the Tribes.* December 29, 2008.
7. Kakutani, Michiko. "Bonds That Seem Cruel Can Be Kind." *Books of The Times* (2008), Web. December 22, 2012.
8. Available at: https://www.nytimes.com/2008/11/04/books/04kaku.html Karavanta, Mina. "Toni Morrison's *A Mercy* and the Counter writing of Negative Communities: A Postnational Novel." *MFS, Modern Fiction Studies,* Vol. 58, No. 4, 2012. 723-746.
9. Ramirez, M. L. "The Haunted House in Toni Morrison's A Mercy." *Revista de Estudios Norteamericanos,* Vol. 19, 2015. 99-113.

बृहच्छब्देन्दुशेखरदिशा षः प्रत्ययस्य इति सूत्रस्य पदकृत्यविमर्शः

सौमित्र आचार्यः*

उपोद्घातः

विदितमेवात्रभवतां शब्दसाधुत्वनिष्पादनाय व्याकरणमेव मुख्यं साधनम्। तथा ह्याभाणकं 'पदसाधुत्वविषया सैषा व्याकरणस्मृति'रिति। एवम्भूतव्याकरणस्य नैकेषु ग्रन्थेषु मूर्ध्नि राजते महर्षिपाणिनिप्रणीता सूत्रात्मिका अष्टाध्यायी। तत्र च प्रथमाध्याये तृतीयपादस्य षष्ठं सूत्रमित्संज्ञाविधायकं 'षः प्रत्ययस्य' इति। सर्वदा सूत्रमल्पाक्षरं भवेदिति कारणात् पाणिनिप्रणीतसूत्राण्यपि लघुभूतानि। अतस्तेषामर्थबोधाय तत्र तत्र सूत्रे अनुवृत्त्यादिकमाश्रीयते। एवं 'षः प्रत्ययस्ये'ति सूत्रेऽपि तदर्थप्रतिपत्त्यये अनुवृत्त्यादिकमाश्रितम्। 'सामर्थ्ययोगान्नहि किञ्चिदत्र पश्यामि शास्त्रे यदनर्थकं स्यात्' इति भाष्योक्तेर्ज्ञायते यत्पाणिनिप्रणीतं प्रत्येकमपि सूत्रं सार्थकम्। अतः प्रकृतसूत्रेऽपि प्रयुक्तपदानामनुवृत्तपदानाञ्चावश्यमेव प्रयोजनं वर्तते। तच्च किमिति पृच्छायां 'षः प्रत्ययस्ये'त्यत्र पदसार्थक्यं प्रदर्शितवन्तः नैके ग्रन्थकाराः। तत्र च नागेशभट्टेन बृहच्छब्देन्दुशेखरे यत्पदकृत्यं दर्शितं तदत्र प्रबन्धे प्रस्तुत्य विविधटीकालोकैः तस्य समीक्षात्मकमेकमालोचनं विधायान्ते निष्कर्षः प्रमाणपुरस्सरं समुपन्यस्यते।

सूत्रार्थः

'षः प्रत्ययस्ये'ति संज्ञासूत्रमिदम्। सूत्रेणानेन षकारस्य इत्संज्ञा विधीयते। अत्र 'आदिर्ञिटुडवः' इत्यतः आदिरिति, 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' इत्यतः इदिति चानुवर्तते। ततश्च सूत्रार्थो भवति प्रत्ययस्यादिः षकारः इत्संज्ञो भवतीति। तथा चोक्तं सिद्धान्तकौमुद्याम्– "प्रत्ययस्यादिः ष इत्स्यात्"[1] इति। नर्तकी इतीहोदाहरणम्। नृत् इति धातोः 'शिल्पिनि ष्वुन्' इत्यनेन ष्वुन्प्रत्यये नृत् ष्वुन् इति स्थिते ष्वुन्प्रत्ययस्य आदिभूतस्य षकारस्य 'षः प्रत्ययस्य' इति प्रकृतसूत्रेण नकारस्य च 'हलन्त्यम्' इति सूत्रेण इत्संज्ञायां 'तस्य लोपः' इति उभयोः लोपे च कृते नृत् वु इति जाते 'युवोरनाकौ' इत्यनेन वु इत्यस्य अक इत्यादेशे 'पुगन्तलघूपधस्य च' इति लघूपधगुणे नर्तक इति जाते ष्वुन्प्रत्ययस्य षित्त्वात् नर्तकशब्दस्य षिदन्तत्वात् स्त्रीत्वविवक्षायां नर्तक इति प्रातिपदिकात् 'षिद्गौरादिभ्यश्च' इत्यनेन ङीष्प्रत्यये 'यस्येति च' इत्यनेन भस्याकारस्य लोपे प्रक्रियाकार्ये नर्तकी इति भवति।

प्रत्ययस्येति इति पदविमर्शः

सूत्रे प्रत्ययस्य इति पदस्य प्रयोजनमाचष्टे आचार्यनागेशः बृहच्छब्देन्दुशेखरे "प्रत्ययस्येति किम्? षोडश। 'षष उत्त्वमि'त्यत्रोपदेशस्थोऽयं षकारः। 'षष्'शब्दस्याऽत्रैव निपातनादुपदेशत्वमित्याहुः। किञ्च 'ष्ठिवु-ष्ष्क' अनयोः षस्येत्त्वे 'षिद्भिदादिभ्य' इत्यङापत्तिः।"[2] इति। ननु सूत्रे प्रत्ययस्येति पदं किमर्थमिति जिज्ञासायामुत्तर्यते सूत्रे षोडश इत्यत्र षकारस्य इत्त्वं मा भूत् इत्येतदर्थं सूत्रे प्रत्ययस्येति पदोपादानम्। तथाहि षडधिका दश इत्यर्थे षष् दशन् इत्यवस्थायां 'षष उत्वं दतृदशधासूत्तरपदादेष्टुत्वं च धासु वेति वाच्यम्' इति वार्तिकेन षष्-शब्दस्य अन्त्यस्य षकारस्य उत्वे उत्तरपदस्य च दकारस्य ष्टुत्वे ष उ डशन् इति जाते 'आद्गुणः' इति गुणे षोडशन् इति जाते विभक्तिकार्ये षोडश इति भवति। सूत्रेऽस्मिन् प्रत्ययग्रहणाभावे तु अत्रापि आदिभूतस्य षकारस्य इत्संज्ञापत्तिः स्यात्। तेन चानिष्टापत्तिरिति तद्वारणाय सूत्रे प्रत्ययस्येति पदोपादानम्। तेन चात्र प्रातिपदिकावयवत्वेन प्रत्ययावयवत्वाभावात् षकारस्य नेत्संज्ञा।

ननु सूत्रेऽस्मिन् 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' इत्यस्मात् सूत्रात् उपदेशे इति पदमनुवर्तते। तेनात्र उपदेशपदानुवर्तनात् षोडश इत्यादौ मुनित्रयोपदेशाभावात् षकारस्य इत्संज्ञा न भविष्यति। अतः तस्य इत्संज्ञानिवृत्त्यर्थं सूत्रे

* शोधच्छात्रः, रामकृष्ण–मिशन्–विवेकानन्द–शैक्षणिक–शोधसंस्थानम्, वेल्लूर–मठ, हावड़ा, पश्चिम बंगाल।

प्रत्ययग्रहणं व्यर्थम् इति चेन्न। कारणं हि 'षष उत्वम्' इत्यत्र वार्तिककृता षष्शब्दो निपातितः। तेन उपदेशस्थ एवायं षकारः। अतः सूत्रे उपदेशग्रहणस्यानुवृत्तावपि प्रत्ययस्य इति अनुपादाने षोडश इत्यत्र षकारस्य इत्त्वप्राप्तिः दुर्वारा स्यात्। अतः तन्निवृत्त्यर्थं सूत्रे प्रत्ययस्येति पदमावश्यकम् इत्याहुः प्राचीनाः।

किञ्च प्रत्ययस्येत्यभावे ष्ठिवु निरसने इति, ष्वष्क गतौ इत्यनयोः धात्वोरादिभूतस्य षकारस्येत्त्वं प्रसज्येत। ततश्च स्त्रियां 'षिद्भिदादिभ्योऽङ्' इति सूत्रेण अङापत्तिः स्यात्। अतस्तद्वारणाय सूत्रे प्रत्ययस्य इति पदोपादानम्। तेन चात्र धात्ववयवत्वात् प्रत्ययावयत्वाभावात् षकारस्य इत्संज्ञा न भवतीति।

समीक्षा

सूत्रेऽस्मिन् प्रत्ययग्रहणप्रयोजनं प्रदर्शितं काशिकाकृद्भ्यां "प्रत्ययस्येति किम्? षोडः, षण्डः, षडिकः"[3] इति। व्याख्यातञ्चैतत् न्यासे पदमञ्जर्याञ्च। तथाहि षड् दन्ता यस्येति विग्रहे 'वयसि दन्तस्य दतृ' इति दत्रादेशे, 'षष उत्वं दतृदशधासूत्तरपदादेष्टुत्वं च भवति' इति वार्तिकेन षषः अन्त्यस्योत्त्वे उत्तरपदादेर्डकारे, 'आद्गुणः' इति गुणे षोडत् इति स्थिते षोडन्तमाचष्टे इति 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिचि, 'णाविष्ठवत् कार्यम् प्रातिपदिकस्य' इति इष्ठवद्भावाट्टिलोपे, पचाद्यचि णिलोपे च षोड इति भवति। किञ्च षणु दाने इति धातोः 'ञमन्ताड्डः' इति डप्रत्यये, 'उणादयो बहुलम्' इति बहुलवचनात् इत्संज्ञासत्वयोरभावे षण्ड इति भवति। पुनः अनुकम्पितः षडङ्गुलिः इत्यर्थे 'बह्वचोऽमनुष्यनाम्नष्ठज्वा' इति ठच्प्रत्यये, 'ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः' इति ङ्गुलिशब्दस्य लोपे 'ठस्येकः' इति इकादेशे 'यस्येति च' इत्यकारलोपे, तस्य स्थानिवद्भावे सति व्यवधानात् 'यचि भम्' इति भसंज्ञाया अभावाद् अन्तर्वर्तिनीं विभक्तिमाश्रित्य पदत्वात् 'झलां जशोऽन्ते' इति जश्त्वे षडिक इति भवति। यद्येषां षकारस्य इत्संज्ञा स्यात्, तर्हि स्त्रीत्वविवक्षायाम् एतेभ्यः 'षिद्गौरादिभ्यश्च' इति ङीष् प्रसज्येत। अतस्तद्वारणाय सूत्रे प्रत्ययस्येति पदोपादानम्। यद्यपि एते षोडादयो लाक्षणिकाः, तथापि उपदेशग्रहणेन षकारो विशिष्यते इति एतानि प्रत्ययग्रहणस्य प्रत्युदाहरणानि भवन्ति। यतोहि एतेषां समुदायानां कुत्राप्युपदेशाभावेऽपि षकारस्तु षष उत्वम्, 'षणु दाने' इत्युपदेशस्थो वर्तते इति।[4]

शब्दकौस्तुभेऽपि प्रत्ययग्रहणस्य प्रयोजनं प्रदर्शितं "प्रत्ययस्येति किम्? षोडश। 'षष उत्वम्' इत्यत्रोपदेशस्थोऽयं षकारः।"[5] इति। एतदेव बृहच्छब्देन्दुशेखरे नागेशाचार्येणोल्लिखितम्। पुनः शब्दकौस्तुभकृन्मतमेव तत्त्वबोधिन्यामपि समाश्रितम्। तथा च "प्रत्ययस्य किम्, षोडश। 'षष उत्वम्-' इत्यत्र उपदेशस्थोऽयं षकारः। एतच्च कौस्तुभे स्थितम्"[6] इति।

वस्तुतः बृहच्छब्देन्दुशेखरे प्रत्ययग्रहणस्य यत्प्रयोजनं नागेशभट्टेन प्रदर्शितं, तत्तु प्राचां मतम्। यतोहि नागेशाचार्यः स्वस्य लघुशब्देन्दुशेखरग्रन्थे प्राचां मतमादावुपस्थाप्य परं "वस्तुतः उपदेशे इत्यस्य स्वरितत्वमेव नेति पूर्वं निरूपितम्"[7] इति वचनेन स्वसिद्धान्तमुपास्थापयत्। तथा चोक्तं गुरुप्रसादटीकायां "षष इति। इदं प्राचामनुरोधेन। स्वसिद्धान्तरीत्याह। वस्तुत इति"[8] इति। एवं चिदस्थिमालायामाचष्ट "इदं प्राचां मतेन, सिद्धान्तमाह- वस्तुत इति"[9] इति।

वस्तुतः उपदेशे इत्यस्य स्वरितत्वमेव नास्ति, तच्च नागेशेन 'हलन्त्यमि'ति सूत्रे निरूपितम्। तेन स्वरितत्वाभावात् उपदेशे इत्यस्य अनुवृत्तिरेव न भवति। अतः षोडश इत्यत्र षकारस्येत्त्ववारणाय प्रत्ययस्येति पदोपादानमावश्यकम् इति नागेशवचनाभिप्रायः। एतेन सूत्रे उपदेशे इत्यस्यानुवृत्तिर्भवतीति प्राचीनमतं न समुचितम्। किञ्च षोडः, षण्डः, षडिकः इत्यत्र प्रकृतसूत्रे उपदेशे इत्यनुवृत्त्या षष उत्वमिति निपातनात् षस्य उपदेशस्थत्वात् षकारस्येत्त्ववारणाय प्रत्ययग्रहणमिति न्यासपदमञ्जरीकाराः परास्ताः।

अयमेव नागेशसिद्धान्तो लक्ष्मीटीकायामप्युररीकृतः। तथाहि "प्रत्ययस्य किम्? षोडश। षष उत्त्वम् इत्यत्र षष इत्यस्य निपातनादुपदेशस्थोऽयं षकारः। एतेनोपदेशे इत्यस्यानुवृत्त्या नात्र दोष इत्यपास्तम्। वस्तुतस्तूपदेशे इत्यत्र स्वरितत्वं नास्तीति 'हलन्त्यम्' इत्यत्रोक्तम्।"[10] इति। एतेन उपदेशे इत्यस्य स्वरितत्वाभावेन सूत्रे तस्यानुवृत्तिरेव न भवति। अतः सूत्रे प्रत्ययग्रहणाभावे षोडश इत्यत्र षकारस्येत्त्वप्राप्तिः स्यात्। तन्निवृत्त्यर्थं प्रत्ययस्येति पदोपादानमावश्यकम् इति।

आदिः इति पदविमर्शः

सूत्रेऽस्मिन् आदिरित्यनुवृत्तेः प्रयोजनं प्रोक्तं शब्देन्दुशेखरे नागेशेन "आदिः किम्? महिषः। 'अविमह्योष्टिषच्' न चाऽत्र षस्येत्संज्ञायां फलाऽभावः, टित्त्वान्ङीपि महिषीत्यस्य सिद्धेः, चित्त्वान् महिषशब्दस्याऽन्तोदात्तत्वेनोदात्तनिवृत्तिस्वरेणोदात्तत्वस्याऽपि सिद्धिरिति वाच्यम्। विनिगमकाऽभावेन पक्षे टकारस्य श्रवणाऽऽपत्तेः। उत्तरार्थञ्चावश्यकं तत्।"[11] इति। अत्रायमभिप्रायः ननु आदिरित्यननुवृत्तौ सूत्रार्थो भवेत् प्रत्ययस्य षकारस्य इत्संज्ञा भवतीति। एवं सति प्रत्ययस्थस्य षमात्रस्य प्रकृतसूत्रेण इत्संज्ञा प्राप्ता। तत्र प्रत्ययान्तस्य षकारस्य तु इत्संज्ञा 'हलन्त्यमि'ति सूत्रेण इष्टैव। तेन अन्त्यस्य षकारस्य इत्संज्ञा प्रकृतसूत्रेण न भवति। एतेन आदेः षकारस्य इत्संज्ञा 'षः प्रत्ययस्य' इति सूत्रेण भविष्यतीति आदिग्रहणानुवृत्तिः किमर्था। पुनः इष्ठनोऽवयवस्य मध्यस्थस्यापि षकारस्य इत्संज्ञा स्यात्, तद्वारणाय आदिपदानुवृत्तिरावश्यकी इति तु न वाच्यम्। यतोहि इष्ठनः षकारस्य न स्वाभाविकत्वम्। किन्तु तस्य सकारमध्यगत्वमेव कल्प्यते। तस्य च सकारस्य 'आदेशप्रत्यययोः' इत्यनेन षकारः क्रियते। 'आदेशप्रत्यययोः' इत्यनेन विहितस्य षकारस्य च 'षः प्रत्ययस्य' इति सूत्रदृष्ट्या असिद्धत्वात् इत्संज्ञा न भवतीति। अतः सूत्रे आदिपदानुवृत्तिः किमर्था इति जिज्ञासायामुच्यते मह पूजायाम् इति धातोः 'अविमह्योष्टिषच्' इत्यनेन टिषच्प्रत्यये महिषः इति रूपं भवति। तत्र 'अविमह्योष्टिषच्' इत्यत्र षकारस्य इत्संज्ञा मा भूत् इत्येतदर्थं सूत्रे आदिरिति पदानुवृत्तिः।

ननु 'अविमह्योष्टिषच्' इति उणादिसूत्रेण विहितस्य टिषचः षकारस्य इत्संज्ञावारणाय आदिग्रहणं व्यर्थम्। यतोहि तत्र टित्त्वादेव 'टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः' इति ङीप्प्रत्ययेन महिषी इतिरूपसिद्धेः षकारस्य इत्संज्ञायां प्रयोजनं नास्ति। किञ्च स्वरे भेदः इत्यपि नास्ति, यतो हि महिषशब्दस्य चित्प्रत्ययान्तत्वेन अन्तोदात्ततया 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' इति विहितेन उदात्तनिवृत्तिस्वरेण अन्तोदात्तत्वमपि सिद्ध्यति। अतोऽत्र समाधीयते यत् सूत्रे आदिग्रहणाभावे विनिगमकाभावेन पक्षे टकारस्यापि श्रवणापत्तिः स्यात्। तथा च षित्त्वात् 'षिद्गौरादिभ्यश्च' इति ङीष् स्यात्। तच्चानिष्टम्। अतः षकारस्यैव श्रवणं भवतु, कदाचित् टकारस्य श्रवणं मा भूत् इत्येतदर्थं सूत्रे आदिग्रहणानुवृत्तिः। तेन षकारस्येह मध्यस्थत्वात् आदित्वाभावात् इत्संज्ञा न भवतीत्यतः टित्त्वात् ङीपि महिषीत्यस्य सिद्धौ टकारस्य श्रवणं न भवति।

पुनः 'चुटू' इत्याद्युत्तरसूत्रेषु आदिग्रहणमावश्यकम्, अतः उत्तरार्थम् आवश्यकत्वेन अत्रापि तस्य सम्भवमात्रेण आदिरिति अनुवृत्तम्। अन्यथा तु मण्डुकप्लुत्या अनुवृत्तिः स्यात्।

समीक्षा

काशिकायाम् "आदिरित्येव- 'अविमह्योष्टिषच्' - अविषः, महिषः"[12] इति आदिग्रहणप्रयोजनं प्रदर्शितम्।

परन्तु सूत्रे आदिग्रहणं स्पष्टार्थमिति प्रत्यपादयत् न्यासकृज्जिनेन्द्रबुद्धिः। तस्यायमाशयः ननु 'उणादयो बहुलम्' इत्यत्र बहुलग्रहणात् प्रत्ययसंज्ञैव अत्र न भवति। किञ्च सत्यामपि प्रत्ययसंज्ञायाम् इत्संज्ञा न भविष्यति, बहुलवचनात्। तर्ह्येतत् आदिग्रहणं किमर्थमनुवर्तते। अतः एवं मन्यते उत्तरार्थमवश्यमादिग्रहणम् अनुवर्तनीयम्। उत्तरार्थमनुवर्तमानमादिग्रहणम् अत्रापि स्पष्टार्थं भविष्यतीति।[13]

पदमञ्जरीकारस्तु आदिग्रहणानुवृत्तेः भिन्नं प्रयोजनं ब्रूते। तथाहि ननु 'अविमह्योष्टिषच्' इत्यत्र प्रयोजनाभावादेव षकारस्येत्संज्ञा न भविष्यति, टित्त्वादेव ईकारेण अविषीमहिषीत्यादिरूपसिद्धेः। पक्षे ङीषर्थः षकारः इत्यपि नास्ति, ङीपोऽपि चितः परस्योदात्तनिवृत्तिस्वरेण उदात्तत्वात्। इति चेत् सत्यम्। अतः अन्यतरस्यैव श्रवणार्थ उपदेशः स्यादिति टकारस्यापि शङ्क्येत। तस्मात् टकारस्य श्रवणं मा भूत् इत्येतदर्थम् आदिग्रहणमावश्यकमिति।[14]

एतेन वक्तुं पार्यते यत् नागेशाचार्येण बृहच्छब्देन्दुशेखरे आदौ पदमञ्जरीकृन्मतम्, अन्तिमे च न्यासकृन्मतं प्रत्यपादि इति मे मतिः।

किञ्च पदमञ्जर्यनुसारिमतमेव शब्दकौस्तुभेऽपि भणितम्– "आदिः किम्? अविषः, महिषः। 'अविमह्योष्टिषच्'।

नन्वत्र प्रयोजनाभावादेव षकारस्येत्संज्ञा न भविष्यति ईकारस्य टित्त्वादेव सिद्धेः। न च पक्षे ङीषर्थः षकारः। ङीपोऽपि चितः परस्योदात्तनिवृत्तिस्वरेणोदात्तत्वात्, सत्यम्, विनिगमकाभावेन पक्षे टकारस्यापि श्रवणं स्यात्।"[15] इति। एतच्छब्दकौस्तुभमतमेव तत्त्वबोधिन्यामपि[16] समाश्रितम्।

लघुशब्देन्दुशेखरग्रन्थे तु नागेशेन आदिग्रहणानुवृत्तिः उत्तरार्था इति प्रतिपादितम्। तथा चोक्तम् "आदिरिति तूत्तरत्रावश्यकमुपरञ्जकतयाऽत्रापि सम्बन्धितम्"[17] इति। 'चुटू' इत्याद्युत्तरार्थम् आदिग्रहणानुवृत्तेः आवश्यकतया तस्यापि सम्भवमात्रेण अत्रैवोक्तम् इति हि तद्वाक्यार्थः। एतल्लघुशब्देन्दुशेखरमतमेव लक्ष्मीटीकाकृतापि आदृतम्– "आदिरिति तूत्तरत्रानुवृत्तेरावश्यकत्वेनात्रापि तस्यापि सम्भवमात्रेणोक्तम्। अन्यथा मण्डुकानुवृत्तिः स्यात्"[18] इति।

एवञ्च बृहच्छब्देन्दुशेखरे नागेशेन मतद्वयमुपन्यस्तम्। तत्र 'अविमह्योष्टिषच्' इत्यत्र टकारस्य श्रवणापत्तिनिवृत्त्यर्थम् आदिग्रहणम् इत्यस्मिन् पक्षे पदमञ्जरीतत्त्वबोधिनीकौस्तुभकाराः, उत्तरार्थमादिग्रहणम् इत्यस्मिन् पक्षे च न्यासलक्ष्मीटीकाकाराः। वस्तुतस्तु 'अविमह्योष्टिषच्' इत्यादौ 'उणादयो बहुलम्' इति बहुलवचनात् अनायासतया षस्य इत्त्ववारणसम्भवात् तत्र उत्तरार्थम् आदिग्रहणम् इत्येव ज्यायः। पुनः टिषचः षकारस्य इत्संज्ञायां प्रयोजनमपि नास्ति, टित्त्वादेव अविषीत्यादिरूपसिद्धेः। अतः प्रयोजनाभावादेव आदिग्रहणमिह नावश्यकमिति। अत एव लघुशब्देन्दुशेखरे नागेशेैन केवलम् उत्तरार्थमादिग्रहणम् इति सिद्धान्तितम् इति मे मतिः। तेन 'चुटू' इत्याद्युत्तरार्थम् आवश्यकत्वेन अत्रापि आदिग्रहणं समावेशितम् इति।

उपसंहारः

एवं प्रत्ययस्यादिः ष इत्स्यात् इत्यर्थके 'षः प्रत्ययस्य' इति सूत्रे प्रत्ययग्रहणस्यादिपदानुवृत्तेश्च प्रयोजनं बृहच्छब्देन्दुशेखरदिशा सविस्तरं प्रतिपादितम्। तत्रादौ षोडश इत्यत्र षकारस्येत्त्ववारणाय प्रत्ययस्येति पदोपादानमिति बृहच्छब्देन्दुशेखरकृन्मतम्। तत्र च उपदेशे इति पदमनुवर्तते इति प्राचीनाः। परन्तु तदयुक्तम्। यतोहि उपदेशे इत्यस्य स्वरितत्वाभावात् तस्यानुवृत्तिरेवात्र न भवति। एतच्च नागेशेनैव लघुशब्देन्दुशेखरे प्रत्यपादि। पुनः बृहच्छब्देन्दुशेखरे आदिग्रहणस्य प्रयोजनविषये मतद्वयमुपन्यस्तम्– 'अविमह्योष्टिषच्' इत्यत्र पक्षे टकारस्य श्रवणापत्तिनिवृत्त्यर्थमादिग्रहणम् इत्येकम्, उत्तरार्थमादिग्रहणमिति चापरम्। तत्र चानयोर्मतयोः उत्तरार्थमेव आदिग्रहणम् इत्येवान्तिमे सिद्धान्तितम्। यतोहि 'अविमह्योष्टिषच्' इत्यादौ 'उणादयो बहुलम्' इति बहुलवचनात् अनायासतया षस्येत्त्ववारणसम्भवात् तत्र उत्तरार्थमादिग्रहणम् इत्येव ज्यायः। पुनः टिषचः षस्येत्संज्ञायां नास्ति किमपि प्रयोजनम्। अतः प्रयोजनाभावादेव 'चुटू' इत्याद्युत्तरार्थमावश्यकत्वेन अत्रापि आदिग्रहणं सम्बन्धितमिति शम्।

सहायक-ग्रन्थ-सूची :-

1. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (प्रथमभागः), पुटसंख्या- ५३३।
2. बृहच्छब्देन्दुशेखरः (प्रथमभागः), पुटसंख्या- ७३९।
3. काशिका (द्वितीयभागः), पुटसंख्या- १२।
4. काशिका (द्वितीयभागः), न्यासपदमञ्जर्यौ, पुटसंख्या- १२।
5. शब्दकौस्तुभः (द्वितीयभागः), पुटसंख्या- ५८।
6. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (प्रथमभागः), तत्त्वबोधिनी, पुटसंख्या- ५३४।
7. लघुशब्देन्दुशेखरः, पुटसंख्या- ६२६।
8. लघुशब्देन्दुशेखरः (द्वितीयभागः), गुरुप्रसादः, पुटसंख्या- ११७४।
9. लघुशब्देन्दुशेखरः , चिदस्थिमाला, पुटसंख्या- ५५८।
10. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (द्वितीयभागः), लक्ष्मीटीका, पुटसंख्या- ७०२।
11. बृहच्छब्देन्दुशेखरः (प्रथमभागः), पुटसंख्या- ७३९।
12. काशिका (द्वितीयभागः), पुटसंख्या- १२।
13. काशिका (द्वितीयभागः), न्यासः, पुटसंख्या- १२।
14. काशिका (द्वितीयभागः), पदमञ्जरी, पुटसंख्या- १२।

15. शब्दकौस्तुभः (प्रथमभागः), पुटसंख्या-५८।
16. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (प्रथमभागः), तत्त्वबोधिनी, पुटसंख्या- ५३४।
17. लघुशब्देन्दुशेखरः, पुटसंख्या- ६२७।
18. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (द्वितीयभागः), लक्ष्मीटीका, पुटसंख्या- ७०२।

सहायक-ग्रन्थ-सूची :-

1. नागेशभट्टः। १९९६। बृहच्छब्देन्दुशेखरः (प्रथमो भागः)। सीतारामशास्त्री (सम्पादकः)। वाराणसी : सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः।
2. नागेशभट्टः। १९९२। लघुशब्देन्दुशेखरः (अव्ययीभावान्तो भागः) (षट्टीकोपेतः)। प्रो. शास्त्री नन्दकिशोरः (सम्पादकः)। काशी : भार्गवपुस्तकालयः।
3. नागेशभट्टः। १९४१। लघुशब्देन्दुशेखरः (द्वितीयो भागः)। वेङ्कटेश्वरशास्त्री (व्याख्याता)। कुम्भघोणे : आन्ध्रविश्वकलापरिषद्।
4. नागेशभट्टः। २००६। लघुशब्देन्दुशेखरः (अव्ययीभावान्तो भागः)। शिवप्रसादशर्मा, श्रीनिवासशर्मा (सम्पादकौ)। वाराणसी : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन।
5. भट्टोजिदीक्षितः। २०१४। वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (बालमनोरमातत्त्वबोधिनीसहिता)। गिरिधरशर्मा, परमेश्वरानन्दशर्मा (सम्पादकौ)। दिल्लीः मोतिलाल वनारसीदास।
6. भट्टोजिदीक्षितः। १९६६। वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (पण्डितश्रीसभापतिशर्मोपाध्यायविरचित-लक्ष्मीव्याख्ययोपेता) (द्वितीयाऽंशः)। श्रीबालकृष्णशर्मपञ्चोली (सम्पादकः)। दिल्लीः मोतिलाल वनारसीदास।
7. भट्टोजिदीक्षितः। १९८५। शब्दकौस्तुभः (द्वितीयो भागः)। गोपालशास्त्री नेने (सम्पादकः)। बनारस सिटी : चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस।
8. वामनजयादित्यौ। १९८६। काशिका (न्यासपदमञ्जरीभावबोधिनीव्याख्यासहिता) (द्वितीयो भागः)। जयशङ्करलालत्रिपाठी, सुधाकरमालवीयः (सम्पादकौ)। वाराणसी : तारा प्रिंटिंग वर्क्स।

उपसर्गार्थचन्द्रिकानुसारं अपपूर्वकस्य ईक्ष दर्शने इति धातोः अर्थविमर्शः

नित्यानन्दमान्ना *

१. उपोद्घातः

पण्डितप्रवरैः श्रीचारुदेवशास्त्रिभिः प्रणीता उपसर्गार्थचन्द्रिका। अस्मिन् ग्रन्थे उपसर्गयोगेन एकस्यैव धातोः एकेनैवोपसर्गयोगेन बहवः अर्थाः सम्भवन्ति इत्यत्र समग्रसंस्कृतवाङ्मयतः प्रयोगाः दर्शिताः, तेषामर्थश्च निरूपितः। अयं ग्रन्थकारः वाक्यपदीयस्य संस्कर्ता श्रीगान्धिचरितम्, अनुवादकला, प्रस्तावतरङ्गिणी, शब्दापशब्दविवेकः, वाक्यमुक्तावली, व्याकरणचन्द्रोदयः, वाग्व्यवहारादर्शः इत्यादीनाम् अनेकेषां ग्रन्थानां निर्माता। ग्रन्थकारस्य १८९६ ईशवीयाब्दे जन्म, स्वर्गप्राप्तिः च १९८७ ईशवीयाब्दे अभवत्। उपसर्गयोगेन धातोः अर्थभेदे जाते तस्य धातोः कस्मिन् अर्थगणे पाठः स्यात् इति विषये अयं शोधः। एतेन तेषां सोपसर्गाणां धातूनां कारकाङ्क्षाया निर्णये अपि सौकर्यं स्याद् इति वयं मन्यामहे। तस्मादेव विषयेऽस्मिन् शोधकार्यं चिकीर्षते। शोधप्रबन्धेऽस्मिन् आर्थिकदृष्ट्या अपपूर्वक-ईक्ष-दर्शने-धातोः प्रयोगानाम् अर्थगणः निरूप्यते।

२. अपपूर्वकस्य ईक्ष-दर्शने-धातोः प्रयोगविमर्शः

ग्रन्थकारैः अपपूर्वकस्य ईक्ष-दर्शने-धातोः ये प्रयोगाः दर्शिताः। उपसृष्टधातूनाम् अर्थगणनिर्णयपूर्वकं ते क्रमशः आलोच्यन्ते।

२.१. अनुज्ञार्थकः

अपपूर्वक-ईक्ष-दर्शने-धातोः **ग्रन्थकारैः** उदारहणम् प्रदत्तम्- **मय्यपेक्षा न कर्तव्या कथंचिदपि सात्वत (भा.द्रोण.८४.३३)। इति। सम्पूर्णम् उदाहरणं तावत्-**

मय्यपेक्षा न कर्तव्या कथञ्चिदपि सात्वत।

राजन्येव परा गुप्तिः कार्या सर्वात्मना त्वया॥ (भा.द्रोण.८४.३३)

तैः अर्थः लिखितः- अपेक्षाऽनुरोध इति नीलकण्ठः इति। तस्मादत्र उपसृष्टधात्वर्थः अनुरोधः अर्थगणश्च अनुज्ञार्थकः इति वक्तुं शक्यते।

२.२. आदरार्थकः

ग्रन्थकारैः अपपूर्वक-ईक्ष-दर्शने-धातोः उदारहणम् प्रदत्तम्- **अपेक्षन्ते हि विपदः किं पेलवमपेलवम् (कथा.)। इति। सम्पूर्णम् उदाहरणं तावत्-**

रीषपेशलाङ्ग त्वां बाधते क्लेशविप्लवः।

अपेक्षन्ते हि विपदः किं पेलवमपेलवम्॥ (कथा.)

तैः अर्थः लिखितः- गणयन्ति आद्रियन्त इत्याह इति। तस्मादत्र उपसृष्टधात्वर्थः आदरः अर्थगणश्च आदरार्थकः इति वक्तुं शक्यते।

अपपूर्वक-ईक्ष-दर्शने-धातोः **ग्रन्थकारैः** उदारहणम् प्रदत्तम्- **तदानपेक्ष्य स्वशरीरमार्दवम् (कु.५.१५)। इति। सम्पूर्णम् उदाहरणं तावत्-**

यदा फलं पूर्वतपःसमाधिना न तावता लभ्यममंस्त काङ्क्षितम्।

तदानपेक्ष्य स्वशरीरमार्दवं तपो महत्सा चरितुं प्रचक्रमे॥(कु.५.१५)

तैः अर्थः लिखितः- अनपेक्षमाणः अगणयित्वा अनादृत्य उपेक्ष्य इति। तस्मादत्र उपसृष्टधात्वर्थः आदरः

---

* शोधच्छात्रः, रामकृष्ण–मिशन्–विवेकानन्द–शैक्षणिक–शोधसंस्थानम्, वेल्लूर–मठ, हावड़ा, पश्चिम बंगाल।

अर्थगणश्च आदरार्थकः इति वक्तुं शक्यते।

ग्रन्थकारैः अपपूर्वक-ईक्ष-दर्शने-धातोः उदारहणम् प्रदत्तम्- **दैवेष्वपेक्षका ह्येते शश्वद् भावेषु भारत (भा.उ.६१.७)। इति। सम्पूर्णम् उदाहरणं तावत्-**

तस्मान्न भवता चिन्ता कार्यैषा स्यात् कथञ्चन।
देवाश्चोपेक्षा ह्येते शश्वद्भावेषु भावेषु॥(भा.उ.६१.७)

तैः अर्थः लिखितः- अपेक्षावन्तः, आदरवन्त इत्याह इति। तस्मादत्र उपसृष्टधात्वर्थः आदरः अर्थगणश्च आदरार्थकः इति वक्तुं शक्यते।

२.३. इच्छार्थकः

अपपूर्वक-ईक्ष-दर्शने-धातोः **ग्रन्थकारैः** उदारहणम् प्रदत्तम्- **अपेक्षते प्रत्ययमुत्तमं त्वाम् (कु.३.१८)। इति। सम्पूर्णम् उदाहरणं तावत्-**

तद् गच्छ सिद्ध्यै कुरु देवकार्यमर्थोऽयमर्थान्तरभाव्य एव।
अपेक्षते प्रत्ययमुत्तमं त्वां बीजाङ्कुरः प्रागुदयादिवाम्भः॥ (कु.३.१८)

तैः अर्थः लिखितः- प्रत्ययः कारणम्। अपेक्षते आकाङ्क्षति। त्वदायत्तं भवति, त्वद्दते तस्य दूर्निर्वहत्वात् इति। तस्मादत्र उपसृष्टधात्वर्थः आकाङ्क्षा अर्थगणश्च इच्छार्थकः इति वक्तुं शक्यते।

ग्रन्थकारैः अपपूर्वक-ईक्ष-दर्शने-धातोः उदारहणम् प्रदत्तम्- **किमपेक्ष्य पयोधरान्ध्वनतः प्रार्थयते मृगाधिपः (कि.२.२१)। इति। सम्पूर्णम् उदाहरणं तावत्-**

किमपेक्ष्य फलं पयोधरान्ध्वनतः प्रार्थयते मृगाधिपः।
प्रकृतिः खलु सा महीयसः सहते नान्यसमुन्नतिं यया॥ (कि.२.२१)

तैः अर्थः लिखितः- किमपेक्ष्य किमुद्दिश्य इति। तस्मादत्र उपसृष्टधात्वर्थः आकाङ्क्षा अर्थगणश्च इच्छार्थकः इति वक्तुं शक्यते।

अपपूर्वक-ईक्ष-दर्शने-धातोः **ग्रन्थकारैः** उदारहणम् प्रदत्तम्- **प्रभुता रमणेषु योषितां नहि भावस्खलितान्यपेक्षते (विक्रम.४.२६)। न शालेः स्तम्बकरितां वप्तुर्गुणमपेक्षते (मुद्रा.१.३)। इति। सम्पूर्णम् उदाहरणं तावत्-**

कुपिता न तु कोपकारणं सकृदयात्मगतं स्मराम्यहम्।
प्रभुता रमणेषु योषितां न हि भावस्खलितान्यपेक्षते॥ (विक्रम.४.२६)
चीयते बालिशस्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषिः।
न शालेः स्तम्बकरिता वप्तुर्गुणमपेक्षते॥ (मुद्रा.१.३)

तैः अर्थः लिखितः- वप्तृगुणाधीना न भवतीत्याह इति। तस्मादत्र उपसृष्टधात्वर्थः प्रयोजनम् अर्थगणश्च इच्छार्थकः इति वक्तुं शक्यते। अनुरोधः आदरः आकाङ्क्षा प्रयोजनम्

ग्रन्थकारैः अपपूर्वक-ईक्ष-दर्शने-धातोः उदारहणम् प्रदत्तम्- **शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते (शिशु.२.८६)। इति। सम्पूर्णम् उदाहरणं तावत्-**

नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते॥ (शिशु.२.८६)

तैः अर्थः लिखितः- द्वयेनार्थो भवतीत्याह इति। तस्मादत्र उपसृष्टधात्वर्थः प्रयोजनम् अथवा आवश्यकता अर्थगणश्च इच्छार्थकः इति वक्तुं शक्यते।

अपपूर्वक-ईक्ष-दर्शने-धातोः **ग्रन्थकारैः** उदारहणम् प्रदत्तम्- **यतः शब्दो व्यञ्जकत्वेऽर्थान्तरमपेक्षते (सा.द.)। इति। तैः अर्थः लिखितः- अर्थान्तरसाकाङ्क्षं भवतीत्यर्थः इति। तस्मादत्र उपसृष्टधात्वर्थः प्रयोजनम् अथवा आवश्यकता अर्थगणश्च इच्छार्थकः इति वक्तुं शक्यते।**

२.४. ईक्षणार्थकः

ग्रन्थकारैः अपपूर्वक-ईक्ष-दर्शने-धातोः उदारहणम् प्रदत्तम्- **स्वर्यन्तो नापेक्षन्ते (शा.ब्रा.९.२.३.२७)। इति। तैः अर्थः लिखितः- इतस्ततो नेक्षन्ते इत्याह। अविवक्षितकर्मा ईक्षतिरिहाकर्मकः इति। तस्मादत्र उपसृष्टधात्वर्थः इतस्ततः दर्शनम् अर्थगणश्च ईक्षणार्थकः इति वक्तुं शक्यते।**

अपपूर्वक-ईक्ष-दर्शने-धातोः **ग्रन्थकारैः** उदारहणम् प्रदत्तम्- **अनपेक्षमाणोऽरण्यमभिप्रेयात् (श.ब्रा.१३.६.१.२०)। इति। तैः अर्थः लिखितः- उक्तोऽर्थः इति। तस्मादत्र उपसृष्टधात्वर्थः इतस्ततः दर्शनम् अर्थगणश्च ईक्षणार्थकः इति वक्तुं शक्यते।**

ग्रन्थकारैः अपपूर्वक-ईक्ष-दर्शने-धातोः उदारहणम् प्रदत्तम्- **एतां दिशमनवानन्त्सृत्वा कुम्भं प्रतीयानपेक्षमाणा एहि (श.ब्रा.१३.८.३.४)। इति। तैः अर्थः लिखितः- अनपेक्षमाणः पृष्ठतोऽनालोकयन् इति। तस्मादत्र उपसृष्टधात्वर्थः ईक्षणम् अर्थगणश्च ईक्षणार्थकः इति वक्तुं शक्यते।**

अपपूर्वक-ईक्ष-दर्शने-धातोः **ग्रन्थकारैः** उदारहणम् प्रदत्तम्- **अनपेक्षमेत्याप उपस्पृशन्ति (श.ब्रा.१२.५.२.१५)। इति। तैः अर्थः लिखितः- अनपेक्षमिति पृष्ठतोऽनालोक्येत्याह। एत्य आगत्य इति। तस्मादत्र उपसृष्टधात्वर्थः ईक्षणम् अर्थगणश्च ईक्षणार्थकः इति वक्तुं शक्यते।**

ग्रन्थकारैः अपपूर्वक-ईक्ष-दर्शने-धातोः उदारहणम् प्रदत्तम्- **अवधिष्म रक्षः (वा.सं.९.३६)। इत्यायन्त्यनपेक्षम् (का.श्रौ.१५.२.८)। इति। तैः अर्थः लिखितः- उक्तोऽर्थः। सूत्रग्रन्थेष्वत्रार्थे प्रतिर्बहुलं प्रयुज्यते। तस्मादत्र उपसृष्टधात्वर्थः ईक्षणम् अर्थगणश्च ईक्षणार्थकः इति वक्तुं शक्यते।**

२.५. क्षान्त्यर्थकः

अपपूर्वक-ईक्ष-दर्शने-धातोः **ग्रन्थकारैः** उदारहणम् प्रदत्तम्- **स (विष्णु) हि निर्व्याजभक्तानां नैवापदमपेक्षते (कथा.१७.१२)। इति। सम्पूर्णम् उदाहरणं तावत्-**

उत्तिष्ठ त्वत्कृते राजन् प्रहितो ऽस्मीह विष्णुना।
स हि निर्व्याजभक्तानां नैवापदम् उपेक्षते॥ (कथा.१७.१२)

तैः अर्थः लिखितः- द्रष्टुं न सहत इत्यर्थः इति। तस्मादत्र उपसृष्टधात्वर्थः सहनम् अर्थगणश्च क्षान्त्यर्थकः इति वक्तुं शक्यते।

२.६. प्रतीक्षार्थकः

ग्रन्थकारैः अपपूर्वक-ईक्ष-दर्शने-धातोः उदारहणम् प्रदत्तम्- **सज्जो रथो भर्तुर्विजयप्रस्थानमपेक्षते (शा.)। इति। तैः अर्थः लिखितः- प्रतीक्षत इत्याह इति। तस्मादत्र उपसृष्टधात्वर्थः प्रतीक्षा अर्थगणश्च प्रतीक्षार्थकः इति वक्तुं शक्यते।**

अपपूर्वक-ईक्ष-दर्शने-धातोः **ग्रन्थकारैः** उदारहणम् प्रदत्तम्- **न स्वयं दैवमादत्ते पुरुषार्थमपेक्षते (हित.)। पादेन नापैक्षत सुरसुन्दरीणां सम्पर्कमाशिञ्जितनूपुरेण (कु.३.२६)। इति। सम्पूर्णम् उदाहरणं तावत्-**

काकतालीयवत् प्राप्तं दृष्ट्वापि निधिमग्रतः ।
न स्वयं दैवमादत्ते पुरुषार्थमपेक्षते॥ (हित.०.३५)
असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः स्कन्धात्प्रभृत्येव सपल्लवानि।
पादेन नापैक्षत सुन्दरीणां संपर्कमासिञ्जितनूपुरेण॥ (कु.३.२६)

तैः अर्थः लिखितः- उक्तोऽर्थः इति। तस्मादत्र उपसृष्टधात्वर्थः प्रतीक्षा अर्थगणश्च प्रतीक्षार्थकः इति वक्तुं शक्यते।

ग्रन्थकारैः अपपूर्वक-ईक्ष-दर्शने-धातोः उदारहणम् प्रदत्तम्- **नूनमस्यायमनपेक्षितास्मदवस्थो व्यापारः (मालती.९)। उदयापेक्षिणी पत्युः (कथा.१६.८६)। इति। सम्पूर्णम् उदाहरणं तावत्-**

उदयापेक्षिणी पत्युः सुप्तेवालक्षितस्थिता।
तदा वासवदत्ताभूद्दिवा कान्तिरिवैन्दवी॥ (कथा.१६.८६)

तैः अर्थः लिखितः- उदयापेक्षिणी उदयप्रतीक्षा इति। तस्मादत्र उपसृष्टधात्वर्थः प्रतीक्षा अर्थगणश्च

प्रतीक्षार्थकः इति वक्तुं शक्यते।

३. उपसंहारः

ग्रन्थकारैः अपपूर्वक-ईक्ष-दर्शने-धातोः ये अर्थाः उक्ताः ते तावत्- **अनुरोधः, आदरः, आकाङ्क्षा, प्रयोजनम्, इतस्ततः दर्शनम्, ईक्षणम्, सहनम्, प्रतीक्षा चेति।** उपसर्गार्थचन्द्रिका इत्येनं ग्रन्थमाश्रित्य शोधकार्यं कर्तुं महत्सौभाग्यमवाप्तम्। अभूतपूर्वः उत्तमशोधपूर्णोऽयं ग्रन्थः। प्रकृतशोधकार्यस्य महान् अवसरः प्राप्तः। कार्यकरणेन स्वयं समृद्धः सञ्जातः। इति शिवम्।

सङ्केताक्षरसूची

कथा.- कथासरित्सागरः, कि.- किरातार्जुनीयम्, कु.- कुमारसम्भवम्, भा.उ.- महाभारतम् (उद्योगपर्व), भा.द्रोण.- महाभारतम् (द्रोणपर्व), मुद्रा.- मुद्राराक्षसम्, वा.सं.- वाजसनेयी संहिता, विक्रम.- विक्रमोर्वशीयम्, शा.- अभिज्ञानशाकुन्तलम्, शा.ब्रा.- शतपथब्राह्मणम् (माध्यन्दिनीयम्), शिशु.- शिशुपालवधम्, सा.द.- साहित्यदर्पणः, हित.- हितोपदेशः

परिशिलित-ग्रन्थसूची :-

1. अमरसिंहः। २०१३। अमरकोषः(सुधाव्याख्यासमेतः)। पणशीकरः, वासुदेवलक्ष्मणशास्त्री (सम्पा०)। दिल्ली : चौखम्बा-संस्कृत-प्रतिष्ठान।
2. पाणिनिः। २०१६। अष्टाध्यायी। पाण्डेयः, गोपालदत्तः (सम्पा०)। वाराणसी : चौखम्बा सुरभारती प्राकाशन।
3. भट्टः, कौण्डः। २०१३। वैयाकरणभूषणसारः। द्विवेदी, चन्द्रिकाप्रसादः (सम्पा०)। दिल्ली : चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान।
4. भट्टः, नागेशः। २०१३। परमलघुमञ्जुषा। दाहाल, लोकमणि (सम्पा०)। वाराणसी : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन।
5. भट्टः, नागेशः। २०१३। लघुशब्देन्दुशेखरः (प्रथमभागः)। बालशास्त्री (सम्पा०)। वाराणसी : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन।
6. शास्त्री, चारुदेवः। १९९७। उपसर्गार्थचन्द्रिका।वाराणसी : भारतीय-विद्या-प्रकाशनम्।

पत्रिका में शोध-लेख/आलेख प्रकाशन के नियमावली

1. आपके द्वारा प्रेषित शोध–लेख/आलेख मौलिक हो, स्तरीय हो, प्रकाशन के योग्य हो एवं अप्रकाशित हो, तथा आपके द्वारा **आलोचन दृष्टि** द्वारा जारी किया गया **लेखक का घोषणा–पत्र** फार्म अवश्य भरा होना चाहिए।

2. अपने शोध–लेख/आलेख (हिन्दी व संस्कृत के Kruti Dev 10 में और अंग्रेजी के Times New Roman Font में) की वर्ड एवं पीडीएफ फाइल बनाकर सीडी या डीवीडी में हार्ड कॉपी के साथ **आलोचना दृष्टि, कार्यालय** के पते में प्रेषित करें। आपको यदि अपने शोध–लेख/आलेख का **स्वीकृत पत्र** चाहिए तो एक लिफाफे में अपना नाम, पता पिन कोड सहित लिखकर, आवश्यक स्पीड पोस्ट की डाक टिकट लगाकर भेजें और 3–4 महीने तक अनावश्यक कोई कॉल किसी भी **आलोचना दृष्टि** के प्राधिकारी से न करें। यदि किसी पदाधिकारी से बात करने की जरूरत पड़े तो शाम 6.00–8.00 के बीच संपर्क करें।

3. **शोध–लेख/आलेख में मोबाइल नंबर, ई–मेल एवं पता अंकित होना चाहिए।**

4. शोध–लेख/आलेख की जांच **संपादक मंडल** एवं **आलोचन–दृष्टि–परिवार** के द्वारा की जाएगी उसके उपरांत ही शोध–लेख/आलेख को प्रकाशित किया जायेगा, जिसमें **संपादक मंडल** का **निर्णय** अंतिम और सर्वमान्य रहेगा।

5. शोध लेख **यूजीसी** के मानक के अनुरूप होने चाहिए और **संदर्भ–सूची** में पुस्तक का नाम, लेखक का नाम, प्रकाशन का नाम, संस्करण–वर्ष एवं पृष्ठ संख्या तथा पत्रिका के संदर्भ हेतु, उसका अंक, वर्ष, पृष्ठ संख्या– निश्चित रूप से अंकित होने चाहिए। ऐसा न होने पर लेख की **संदर्भ–सूची** को भ्रामक माना जाएगा।

6. पत्रिका के प्रकाशन हेतु लेखकों, पाठकों एवं आलोचकों से आर्थिक सहयोग भी अपेक्षित रह सकता है, क्योंकि पत्रिका को अभी कोई अनुदान या अंशदान नहीं प्राप्त हो रहा।

7. हिन्दी एवं संस्कृत के शोध–लेखों/आलेखों के लिए 2000–3000 और अंग्रेजी के शोध–लेखों/आलेखों के लिए 2000–2500 शब्द–सीमा निर्धारित की गई है, अतः शब्द–सीमा का ध्यान रखें।

संपादक

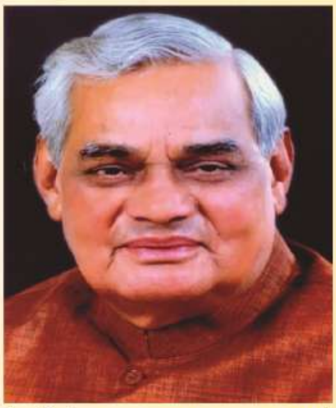

(25 दिसंबर 1924 – 16 अगस्त 2018)

'भारत रत्न' के सम्मान से विभूषित पंडित **अटल बिहारी बाजपेई** त्रिभाषाई साहित्य से स्नातक करने के बाद समाज एवं राजनीति की रपटीली राहों की ओर निकल पड़ते हैं। इन रपटीली राहों में भी, वे अपने उद्देश्य से कभी नहीं भटकते, बल्कि भटके हुए उद्देश्यों को भी, राह पर ले आने का प्रयास करते हैं। उनकी यह दूरदृष्टि भारत के तमाम आकाँक्षात्मक सपनों की, साकार प्रतिमा सिद्ध होती चली गई। उनके जीवन में, इनके लेखन में, उनके विचारों में, दूर तक कोई अंतर्विरोध जल्दी नजर नहीं आता। स्वाधीन भारत की राजनीति का यह भीष्म पितामह, कभी अपने विचारों में डिगता नज़र नहीं आया।

25 दिसंबर, 1920 को अटल–जयंती का मनाना– एक नई पहल है, जो स्वागत करने योग्य है। ऐसे तमाम कार्य करने की जरूरत भी है। अटल जी की इस जयंती पर 'आलोचन दृष्टि'–परिवार, उनको तथा इस कार्यक्रम को सफल बनाने वालों को, सादर नमन करता है और अटलजी की आकांक्षा, जो कि उनकी कविता '**स्वप्न देखा था कभी**' में व्यक्त हुई है, का समर्थन भी। यह कविता लगभग 20 वर्ष पहले लिखी गई है, पर आज भी हमारे अंदर ऊर्जा एवं उत्साह का संचार करती है और प्रेरणात्मक शक्ति भी प्रदान करती है। प्रस्तुत है उनकी कविता **स्वप्न देखा था कभी....**।

–डॉ. सुनील कुमार मानस

स्वप्न देखा था कभी

स्वप्न देखा था कभी, जो आज हर धड़कन में है।
एक नया भारत बनाने का इरादा मन में है।।

एक नया भारत, कि जिसमें एक नया विश्वास हो,
जिसकी आँखों में चमक हो, एक नया उल्लास हो,
हो जहाँ सम्मान हर एक जाति, हर एक धर्म का,
सब समर्पित हों जिसे, वह लक्ष्य जिसके पास हो
एक नया अभिमान अपने देश के जन–जन में है।
एक नया भारत बनाने का इरादा मन में है।।

बढ़ रहे हैं हम प्रगति की ओर, जिस रफ़्तार से,
कर रहा है नमन, यह विश्व भी उस पार से,
पर अधूरी है विजय जब तक गरीबी है यहाँ,
मुक्त करना है हमें अब देश को इस भार से,
एक नया संकल्प–सा अब तो यहाँ जीवन में है
एक नया भारत बनाने का इरादा मन में है।

भूख जो जड़ से मिटा दे, वह उगाना है हमें
प्यास न बाकी रहे, वह जल बहाना है हमें,
जो प्रगति से जोड़ दे, ऐसी सड़क ही चाहिए
देश सारा गा सके वह गीत गाना है हमें,
एक नया संगीत देखो आज कण–कण में है।
एक नया भारत बनाने का इरादा मन में है।।

–अटल बिहारी वाजपेयी

संपादकीय / प्रकाशकीय पता :–

आलोचन दृष्टि प्रकाशन

आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर, उ0प्र0–212635

ई–मेल : aalochan.p@gmail.com

दूरभाष : 09580560498 / 09451949951 / 7376267327